मुमुक्षु - समीक्षा

"सम्यग्दर्शन होता है"

(1) योग्यता से ?

(2) तलवे चाटने से ?

(3) आत्म श्रद्धान से ?

(4) तत्व श्रद्धान से ?

(5) देवशास्त्र गुरु के श्रद्धान से ?

लेखक

मुनि श्री 108 सरल सागर जी महाराज

प्रकाशक

- शिखर चद जी सोधिया महाराजपुर (देवरी)
- सकल दिगम्बर जैन समाज, जूना (रहली)
- सकल दिगम्बर जैन समाज, पठारी (विदिशा)

प्रेरक - वर्तमान परिस्थिति

ग्रथ - मुमुक्षु समीक्षा

प्रणेता - मुनि श्री 108 सरल सागर जी महाराज

सस्करण - प्रथम प्रतिया 2000

वीर निर्वाण स 2523 सन 1997

प्रकाशक - श्री मान शिखर चद जी मोधिया महाराजपुर

प्राप्ति स्थान - श्री मानशिखर चद जी माधिया महाराजपुर (दवरी)

मु पो महाराजपुर तह दवरी (सागर) म प्र Pin-470230

मूल्य - डाक व्यय मात्र

मुद्रक - रवि प्रिटिग प्रेस, जबलपुर फोन 21684

कम्पोजिग - विजन कम्प्यूटर्स जबलपुर फान 23291

लेखक की अन्यकृतिया -

(1) पचकल्याण गजरथ समीक्षा

(2) आचाय समीक्षा

(3) नगनत्व समीक्षा

(4) श्रावक समीक्षा

(5) निशाचर समीक्षा

(6) समाधी समीक्षा (अप्रकाशित)

अपनी बात और आशीर्वाद

प्रस्तुत समीक्षा के अतिरिक्त अभी तक की लिखित/प्रकाशित समीक्षाओ मे "अपनी बात और आशीर्वाद" के अन्तर्गत एक ही बात पर जोर दिया गया है कि अन्य द्रव्यो की तरह शास्त्र दान देने-लेन की वस्तु है, क्रय-विक्रय की नही। विचारणीय है कि इसके क्रय विक्रय का कारण क्या है और यह कब से प्रारम्भ हुआ ? मै अपने व्यक्तिगत विचार से कहू कि यह दान धर्म के विरुद्ध कृत्य का कारण पडित है। जब से पण्डित परम्परा चली तभी से या कुछ समय बाद मे ग्रथो का क्रय विक्रय प्रारम्भ हुआ है।

लेखन, सम्पादन या हो अनुवाद पाठको के हाथ मे आने तक लेखक, सम्पादक एव अनुवादक को इस समय बहुत से सहयोग या सहयोगियो की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिये प्रधान सम्पादक सहसम्पादक प्रबध सम्पादक प्रकाशक एव द्रव्य दाता।

लेखक स्वय सम्पादक भी हो यह कोई आवश्यक नही है हो भी सकते है होते भी है अभी तक की कृतियो मे किसी सम्पादक की आवश्यकता नही पडी-यह तो उदाहरण के रूप मे है ही। लेखक आदि निर्ग्रथ (परिग्रह त्यागी) हो तो निश्चित है कि वे प्रबध सम्पादक प्रकाशक द्रव्यदाता तो हो ही नही सकते लेकिन लेखक आदि गृहस्थ हो और लेखक आदि ही उनकी आजीविका का साधन हो और जिनसे द्रव्य सहयोग लिया जा रहा हो वह दाता नही दुकानदार व्यापारी हो या साहूकार हो तब शास्त्रो पुस्तको के क्रय-विक्रय को कौन रोक सकता है।

पत्रिका प्रकाशित करने वालो को तो होती ही है उपरोक्त सम्पादको की आवश्यकता साथ ही किसी पहुचे हुए आचार्य आर्यिका मुनि एव ऐसे ही पडितो का अभिनन्दन ग्रथ का प्रकाशन होना हो तो उन्हे भी अनेक सम्पादको की आवश्यकता होती है। कुछ तो पैसे के लिये सम्पादक बन जाते है और कुछ तो पैसा मिले तो ठीक अन्यथा नाम के लिये सम्पादक बनने की कोशिश करते है अथवा पहुचे हुए हो तो ग्रथ आदि की प्रमाणिकता के लिये सम्पादक बना लिये जाते है या पडितो को खुश करके अपने पक्ष मे करने तरीका है।

एक आर्यिका को एक प्रतिष्ठाचार्य पण्डित से शिकायत कर रही थी कि पण्डित जी हमसे नाराज है। पण्डित जी कहने लगे आप नाराज है हमसे। कैसे ? हमे अभिनदन ग्रथ की सम्पादक मडली मे शामिल क्यो नही किया गया। आर्यिका ने कर्मचारियो को डाटते

हुए कहा-क्यो तुम लोगो ने पडित जी का नाम नहीं रखा और तत्काल पन्ना अलग करके पडित जी का नाम सहित पन्ना जोडा गया और सम्पादक के नाते पाच हजार रुपये पाये, चले आये। अब इनका मुह हमेशा के लिये बद हो गया आर्यिका की स्वच्छता पर कुछ कहने के लिये। इस प्रकार के अनावयश्यक खर्च का बोझ ग्रथ की कीमत बढा देने से अखरता नहीं है।

ग्रथ का प्रकाशन किसी सस्था से हो या व्यक्तिगत रुप से प्राय सर्वाधिकार सुरक्षित रख लिया जाता है अर्थात् हमारे अतिरिक्त दूसरा कोई पुन प्रकाशित नहीं कर सकता, यदि करता है तो अपराधी/दण्डनीय है। ऐसा करना भी ग्रथ दान के लिये नहीं व्यापार के लिये है। कोई दूसरा प्रकाशित करे तो पहले प्रकाशक का नाम गौण हो जाने का भय भी रहता है। कोई पुन. प्रकाशन करना भी चाहे तो लेखक, सम्पादक, अनुवादक को कमीशन देना होगा।

किसी भी सस्था से प्रकाशित ग्रथ कितना भी जन उपयोगी क्यो न हो, सर्वाधिकार सुरक्षित रख लेने वालो के कारनामो से जिज्ञासु वचित रह जाते है। इन्हीं कारणो को दृष्टि मे रखते हुए ''पचकल्याण गजरथ समीक्षा'' मे ''अपनी बात और आर्शीवाद'' के अतर्गत छूट दी गई है कि कोई भी पुन प्रकाशित करवा सकता है उसमे कुछ भी परिवर्तन किये बिना। देखा तो यहा तक गया है कि जैसे जैसे कागज, छपाई की कीमत बढती जाती है और प्रकाशक प्रकाशित पुस्तको आदि की कीमत मे वृद्धि के रुप मे परिवर्तन करते जाते हैं। इतना ही नहीं- किसी ने भेट स्वरुप ग्रथ आदि प्रकाशित किये तो दुकानदार उन्हे बुलवाकर कीमत रखकर बेचा करते है जो कतई उचित नही है। यह हुई अपनी बात।

सहयोगी कितने एव कितने प्रकार के भी हो, होना चाहिये ख्याति पूजा, लाभ से परे/रहित। इस ''मुमुक्षु समीक्षा'' के प्रकाश मे प्रकाशक के रुप मे स्व समय सागर जी का कार्य सम्हाला क्षु विवेकानद सागर जी ने। एव ब्र अरुण जी का कार्य भार सम्हाला ब्र दिनेश एव नरेश जी ने। इनके साथ सक्रिय सहयोगी श्री आजाद कुमार (अज्जू भईया) भी आर्शीवाद के अधिकारी है जो सभी प्रकाशनो मे आगे रहे हैं। आगे भी रहेगे।

द्रव्य के रुप मे सहयोग देने वाले श्री शिखर चद जी सोधिया (जैन) का कहना है कि आप कुछ भी लिखे प्रकाशन के रुप मे मुझे ही आशीर्वाद निरन्तर मिलता रहे प्रतिवर्ष। अधिक से अधिक पुस्तको का प्रकाशन हो ऐसी भक्तो की भावना को देखते हुए इस समीक्षा के प्रकाशन मे सहयोग के रुप मे श्री राजकुमार जैन पठारी (विदिशा) वालो का अर्थ (राशि) शामिल किया गया है।

प्रकाशकीय

धर्मकाज कीन्हें बिना,

मोहि कहां विश्राम ।।

ठीक ही तो है, क्रान्तिकारी विचारो का प्रतिनिधित्त्व करने वाली युगान्तकारी कृतिया, जो निर्भीक सत की सशक्त, सुदृढ, ओजस्वी वाणी, जो आदमी की मरती हुई आदमीयत को जगाने, धर्म के नाम पर पनप रही कुरीतियो को जड से उखाड फेकने के लिए, धर्म शक्ति का प्रतीक मुनि श्री सरल सागर कटिबद्ध है।

युवा खून खौल उठा है। महावीर के शासन काल मे, नर्मदा की माटी मे जन्मा यह महावीर ''समय-सार'' मे विवेकानद सागर के साथ गोते लगाकर मोती निकाल रहा है। गाव-गाव, डगर-डगर से लालो को चुन-चुन कर उनमे मोती बिखेर रहा है। ''मासो वाली अकर्मण्य लाशो मे, प्राण फूक रहा है।

अल्पवय के इस महान चितक के गभीर, सारगर्भित और तार्किक विचारो को ''जाँबाज सिपहसालार'', कठोर चर्याधारी मुनि श्री 108 ब्रह्मानद सागर और सिपाही देवरी का लाल विवेकानद सागर तीखे प्रहारो वाले प्रवचनो से, बढ रहीं कुरीतियो से समाज से सचेत करते हुए सोचने को विवश कर रहे हैं। बीसो घटे स्वाध्याय मे रत गरीबी रेखा के नीचे, लगभग सेतीस किलोग्राम वजनी समवशरण मे बीसवे तीर्थकर मुनि सुब्रतनाथ के शुभ आशीर्वाद से बीस के अक की अद्‌भुत छटा बिखेर रहा है। जन्म सन् 57, वैराग्य पथ पर सन् 77 मे प्रतीक्षारत बीस के ही अक मे लेखनी उठाई।

परमपूज्य आचार्य श्री 108 मुनि विद्यासागर का यह शिष्य अपने शिष्यो के साथ ''कुन्द-कुन्द'' को हर ''देहरी'' तक पहुचाने मे पागल है। लोग भी पागल कहते हैं। वे ठीक ही तो कहते हैं। भक्त पागल ही होते हैं। ''मीरा'' गोपाल के लिए ''महात्मा गाधी'' देश के लिए, और ''सरल सागर'' धर्म की ओट मे ''ढोगी'' जीवन व्यतीत करने वाले श्रावकों' ओर ''श्रमणो'' का बेनकाब करने के लिए। लडते हैं शहसवार, मैदाने जग मे, वे तिफ्ल क्या लडेगे, जो घुटनो के बल रेगते हैं। कुन्द-कुन्द का यह भक्त आपकी चुनौती स्वीकार रहा है, और निवेदन सहित आगम के आधार पर चुनौती दे रहा है। आपकी शकाओ के समाधान हेतु।

राजीव गाधी का सपना, इक्कीसवीं सदी मे पहुचने वाले, भौतिक वादियो, विचार करो, विज्ञान भी स्वीकृति नहीं देता रात्रि भोलन की, अनछना पानी पीने की, और गिद्ध भोजन करने की, हम अहिसा वादी हैं। ''समय सार'' रूपी टानिक का सेवन करिए। हम कानून की निगाह से तो बच सकते हैं। किन्तु कर्मो की निगाह से नहीं बच सकते। धन सुविधा दे सकता है, सुख नही दे सकता।

जाको राखे साइया, मारि सकै नहीं कोय।

आलोचको की परवाह किए बिना, निर्भीक विहार करते हुए लेखनी को निरतर गति दे रहा है। साधु स्वभाव से सरल और विचारो से कठोर है। अपनी शुद्धता के लिए निदक सुअर समान है। जिन्हे पास रहने का आमंत्रण दे रहा है।

दहेज जैसी कुप्रथा, सुरसा जैसा विकराल रूप धारण कर समाज को निगल रही है। 'निशाचर समीक्षा' से। अष्ट द्रव्यो से की जाने वाली वीतरागी देव की पूजा मे झूठ और कजूसी का सहारा लिया जाता है। साधु चितित है कि क्या इक्कीसवीं सदी मे जिनेन्द्र भगवान की पूजा जैनेत्तरो के हाथ मे होगी ? पूजा समीक्षा स।

क्या श्रावक धर्म महान है, नहीं मायाचारी के साथ चलती रहती जबान है। क्या श्रावक धर्म महान है ? नहीं कुछ आचार्य शैतान हैं। श्रावक समीक्षा से।

मुमुक्षुओ की उत्पत्ति। मुमुक्षु समीक्षा से।

आत्मोत्थान मे रत, सयम की धार पर चलने वाले निस्पृही श्रमण के चितन पर रग चढा है। *अनुभूतियाँ गहराई हैं, वेदना बलवती हुई है। उपजी खीझ को उष्मा मिली है।* समाज की कुरीतियो पर गहरी चोट करने का उबलते खून को साहस मिला है। समन्त भद्र से।

"गेदा" की गोद का लाडला, जिसमे मानवता की कसमसाहट के बोझ को सम्हालने की दृढता आ गई है। "बाबू" जीवन का यह तमाशा देख आश्चर्य चकित हैं। भावना भाने लगे, सु-मरण के लिए, सुमरण करो।

सत लेखक की कृतिया पठनीय, मननीय, व चितनीय हैं। आदर्श समाज गढने की अपूर्व सभावनाए सक्षमताए है। इन्हे पढिए, गुनिए, सवरिये और समाज को भी सवारिये। युग निर्माण करने वाली ऐसी कृतियो को हृदयगम कीजिए।

युवा सत लेखक को समाज का साधुवाद। चरणो मे हृदय से नमन्, प्रतिनमन, त्रैवार नमोस्तु। चरण रज का आकाक्षी

प्रस्तावना

न रागान्न स्तोत्रं भवति भवपाशच्छिदि मुनौ

न चान्येषु द्वेषादपगुण कथाभ्यास खलता।

किमु न्याया न्यायप्रकृत गुण दोषज्ञ मनसां

हितान्वेषोपाय स्तव गुण कथा सङ्गदित· (64) युक्त्यनुशासन।

''अर्थ- हे नाथ । हमारा यह स्तोत्र भाव पाश (रस्सी) के छेदक आप (जैसे) मुनि के प्रति राग भाव को आश्रित कर प्रवृत्त नहीं हुआ है और न इस स्तोत्र की उत्पत्ति में अन्य एकान्त वादियो के प्रति द्वेष ही कारण है। क्योकि द्वेषवश दूसरो के दोषो को कहने का अभ्यास खलता-दुर्जनता मानी जाती है। तब इस स्तोत्र की उत्पत्ति का कारण क्या है ? उत्तर है- जिसका मन न्याय और अन्याय को जानने के लिये उत्कठित है एव प्रकृत पदार्थों के गुण और दोषो को जानने के लिए जिसके मन मे जिज्ञासा जाग्रत हुई है उसके लिये यह हिताहित की खोज का उपाय आप की गुणगण कथा के साथ कहा गया है। विचारणीय है कि युक्त्यनुशासन ग्रथ के लिखने के उद्देश्य को स्पष्ट करने वाली यह कारिका, प्रस्तुत समीक्षा के लेखक के उद्देश्य मे कितनी लागू होती है पाठक स्वय समझने का प्रयास करे समीक्षा पढकर।

जन्म से लेकर करीब बीस वर्ष तक के समय में इतना तो अवश्य सुन रखा था कि हजार वर्ष मे कलकी और पाचसौ वर्ष बाद उपकलकी पैदा होते हैं, लेकिन जिसकी बिना नाम लिये समीक्षा की गई है उसके बारे मे बीस वर्ष मे भी गौर नहीं किया था कि कलकी और उपकलकी का प्रतिनिधित्व करने वाला पैदा हो चुका है। अन्तर इतना ही है कि वे स्पष्ट रूप से धर्म के विध्वसक होते हैं और यह छद्मभेष धारण करके धर्म का नाशक था। ऐसा किसी से समझा ही नहीं, अपितु उन्नीस वर्ष का कटु अनुभव कहता है, जिसको कटु शब्दो मे समीक्षा के रूप मे प्रस्तुत किया गया है। पचम काल के अत मे कलकी मुनियो से टेक्स लेकर उनका अस्तित्व मिटा देगा चिरकाल के लिए, लेकिन यह दोषारोपण करके असमय मे ही अस्तित्व मिटा देना चाहता था। अग्रेजो की भूमिका निर्वाही कि व्यापार के बहाने भारत मे अपना प्रभुत्व जमा कर भारतीय को भारतियो से पिटवाया और इसने दिगम्बर आम्नाय मे आकर दिगम्बरो को दिगम्बरो से लडवा दिया और नारदों या असुरों की तरह आनद लेता रहा।

शका हो सकती है कि उसका इस समीक्षा मे नाम क्यो नहीं लिया गया एवं सर्वनाम शब्दो का प्रयोग करके भी आदर सूचक शब्दों का प्रयोग नहीं किया गया ? समाधान यह है कि गुरु मुख से हमने उसका कभी नाम भी नहीं सुना। उनका मानना है कि ऐसे पापी व्यक्ति का नाम लेना भी उसका ,उसके दुष्कृत्यों का समर्थन है। ऐसी स्थिति में सम्मान सूचक शब्दो का प्रयोग करना कहा तक उचित है। अधिकाश विरोधी विद्वानों को देखा, सुना, पढा है कि वे उसका विरोध उसके नाम के आगे ''श्री'' और पीछे ''जी'' जैसे

शब्दो का प्रयोग करके विरोध करते हैं।

हम इन विद्वानो से पूछना चाहते हैं कि वह "श्री" जैसे शब्दो से सम्बोधन के योग्य था तो उसका विरोध कैसा। लौकिकता मे भले ही विरोधियो के लिए उपरोक्त शब्दो का प्रयोग किया जाता है लेकिन धार्मिक क्षेत्र मे हमारे व्यक्तिगत विचार से हम उचित नहीं समझते। कहा जा सकता है कि सर्वसाधारण लोग कैसे समझेगे की यह समीक्षा उसीकी की गई है। "पच कल्याण गजरथ समीक्षा" मे उसका नाम लिये बिना ही सक्षिप्त समीक्षा की गई है, लेकिन लोगो को समझते देर नहीं लगी कि किसकी है। इस समीक्षा मे उसकी 'सभोग से समाधि' मानने वाले के साथ तुलना की गई है। इस मान्यता के आधार पर उसका परिचय स्वय मिल जाता है इसी प्रकार इसके दुष्कृत्यो के उल्लेख से उसका परिचय भी मिलना कठिन नहीं है।

न्याय ग्रथो को पढने से पहले लगता था कि यह कोई नया मत खडा हुआ है, लेकिन पढ लेने के बाद लगा कि नया कुछ भी नही है। मतान्तरो मे और इसमे अन्तर इतना ही है कि वे अपने आपको जैन नही मानते/कहते और ये अपने को जैन कहते है।

हौआ भी तो समझ मे आ रहा था , लेकिन न्याय शास्त्र के अभ्यासियो की सिह गर्जना के सामने इनकी स्थिति गीदडो जैसी है। बहुमान की दृष्टि से कहे तो अकलक देव के सामने बौद्ध साधु जैसी जिनका एक ही प्रश्न सुनकर लडखडा गई थी उसकी जिव्हा।

तथा कथित मुमुक्षु अपने गुरु की प्रशसा करते हुए एक मुनि भक्त से कहने लगा- हमारे गुरु का बडा उपकार है उन्होने लाखो अजैनो को जैन बनाया। मुनि भक्त गरम मिजाजी था। कहने लगा- उसका बाप भी नहीं बना सकता, जब "एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं करता" मुमुक्षु कहने लगा- यह बात यहाँ नही लगाई जाती। उसने कहा- दो और दो चार ही होते हैं, होगे, हुए हैं। कभी-कभी कम बढ नहीं होग, न हुए, न होगे। कटु शब्दो का प्रयोग करने से लोगो को बुरा तो लगता ही हे ? समाधान यह है कि जो पुण्य-पाप मे किसी अपेक्षा से भेद मानते है, उन्हे बुरा मानना/लगना उचित भी है कर्म सिद्धात के अनुसार, लेकिन जा प्रवृत्ति मे होते हुए भी एकान्त से दोनो को एक मान रहा हे उसे बुरा लगने का सवाल ही पैदा नहीं हाता। फिर भी बुरा लगता हे तो उसका दोनों को एकान्त से मिथ्या कहना स्पष्ट रूप से मिथ्या है।

जीव राग द्वेष या पुण्य-पाप को करता है- यहाँ कर्ता से तात्पर्य परिणमन से है "परिणमन एव कर्तृत्व" इस व्युत्पति के अनुसार उपादान की दृष्टि स कर्ता, कर्म मे भेद नहीं होता जैसा कि निमित- नैमित्तिक सबध मे होता है, कुम्हार घडे का कर्त्ता की तरह। प्रशसा सुनने से अच्छा लगना ही पुण्य को उपादेय मानना है और निन्दा सुनने पर अच्छा न लगना ही पाप को हेय मानना है फिर कर्म सिद्धात का जानकार कैसे स्वीकार कर लेगा की दोनो समान हैं। निरुत्तर होने की स्थिति मे कहा जाता है कि श्रद्धा में तो दोनो हेय ही होते हैं, तब सर्वथा हेय कहना मिथ्या सिद्ध हुआ। क्योकि तुम्हारे ही अनुसार आचरण में

उपादेय सिद्ध हुए। जो बात सभी के सुनने, समझने, देखने मे स्पष्ट रूप से आ रही है फिर भी न मानी जाये वह प्रतीति का अपलाप है तर्कानुसार।

जब से उसने इस आम्नाय मे आकार धर्म एव लोक विरुद्ध चलना प्रारम्भ किया तभी से उसका विरोध होना स्वाभाविक है अत विद्वानो द्वारा काफी कुछ लिखा जा चुका है, लिखा जा रहा है और हमारे व्यक्तिगत विचार से आगे भी लिखा जाना चाहिए। उसी श्रृखला मे यह समीक्षा भी आपके हाथो मे है। साधु भी पीछे नहीं रहे लिखने और बोलने मे। देव, गुरु, शास्त्र के अनन्य भक्त साधु भी हुआ करते हैं।

इसमे सदेह नहीं है कि किसी व्यक्ति के किसी कार्य के विरोध के साथ-साथ उसका प्रचार भी होता हैं नहीं चाहते हुए भी। प्रचार के भय से उसका विरोध न किया जाये, इस बात को हर कोई स्वीकार कर ले यह कोई जरूरी नहीं है। किसी गलत कार्य का विरोध न किया जाये तो ''मौन सम्मते लक्षण'' के अनुसार उसका समर्थन ही है। विरोध न करने पर भले ही हमारे द्वारा प्रचार न हो, लेकिन वह स्वय अपनी ओर से तो प्रचार करेगा ही। विरोध न होने पर भी वह स्वय तो समझेगा ही कि मैं जो कर रहा हूँ वह शत प्रतिशत सत् है। साथ ही अज्ञानी लोग भी समझेगे कि जब ऋषि-मनीषी लोग विरोध नही कर रहे हैं तब यह कार्य सही होना चाहिए। ऐसी स्थिति मे उस कार्य का अनुकरण करने लग जाये यह बात असम्भव नहीं है।

भक्तो को तो होता ही है, लेकिन साधु पद के स्वाभिमान का ध्यान जितना साधुओ को स्वय को होता है उतना किसी अन्य को नहीं, अत स्वाभिमान मे ठेस लगने का प्रसग उपस्थित होने पर एव न के बराबर भक्तो को छोड का शेष माध्यस्थता धारण करलें और साधु प्रवृत्ति मे होकर भी चुप रह जाये तो वह भी साधु पद की अवमानना का समर्थक है। किसी भी बात को चाहे सीधी-सीधी कही जाये या तुकतान से, किन्तु दोनो के अर्थ मे अन्तर नहीं होते हुए श्रोताओ के गले उतार देने मे अन्तर होता है। सीधी-सीधी बात सुन लेने की अपेक्षा को तुकतान (गाकर) से सुनने वालो की सख्या हमेशा मे अधिक रही है। यही कारण है कि आचार्यों ने पद्य का ही अधिक प्रयोग किया गद्य मे लिखन की अपेक्षा। 'पच कल्याण गजरथ समीक्षा' के पूर्वार्ध एव 'आचार्य समीक्षा' को छोडकर शेष समीक्षाओ के शीर्षको तुकतान के साथ ही रखा गया है। इनसे मात्र श्रोताओ का मनोरजन ही होता हो सो भी बात नहीं हैं, अपितु प्रत्येक शीर्षक के विषय का उसमे सार भार होता है, सूत्रो की तरह। अधिकाश पाठको ने शीर्षको के समर्थन मे अपना विचार व्यक्त किया है कि ये शीर्षक मजबूर कर देते हैं समीक्षा को आदि से अत तक पढने के लिए। कुछ पाठको का कहना है कि शीर्षक मात्र पढ लेने पर अटपटा सा लगता है। लेकिन जब विषय पढ लेते हैं तो स्पष्ट हो जाता है शीर्षक का अभिप्राय। विषय पढ लेने पर भी शीर्षक का अर्थ समझ मे न आये तो लेखक से सम्पर्क कर लेना चाहिए प्रत्यक्ष या पत्र आदि के माध्यम से, जब तक लेखक जीवित है अन्यथा तो विषय समझ लेना मात्र पर्याप्त है।

देखा भी जाता है अधिकांश लेखक विषय के आधार पर शीर्षक दिया करते हैं जैसे 'समयसार' आदि ग्रथ, लेकिन कुछ तो अपने नाम से ही पुस्तक या शास्त्र का नाम (शीर्षक) रख लिया करते हैं जैसे 'अमिगति श्रावकाचार' आदि। ''नग्नत्व समीक्षा'' के शीषको पर आपत्ति जताते हुए पत्रकार पत्रिकाओ मे समीक्षा के रूप मे लिखते हैं कि तुकतान के होते हुए भी उनमे शालीनता का अभाव है। ऐसा होते हुए भी वे सार्थक हैं मनोरजन के साधन नहीं। इसमे भी सदेह नहीं है कि सम्पूर्ण समीक्षा को अध्याय, काण्डो, शीर्षक, उपशीर्षको मे विभाजित कर देने पर विषय को समझना पाठको के लिये सुलभ हो जाता है, लेकिन मेरे जैसे अधिकाश पाठक जिस किसी शीर्षक से पढना प्रारम्भ कर देते हैं यह पाठको की गलती है। हालाकि शास्त्रो मे इस प्रकार से पढने का निषेध नही है, लेकिन अनभ्यासी विषय को समझ नहीं पाते यदि विषय क्रमानुसार दिया गया हो। विषय विभाजित हो जाने पर पाठको को तो सुविधा हो जाती है लेकिन लेखक के लिये कितना कठिन है लेखक ही जानते है। यह लेखक की कमी समझना चाहिए कि जो पुनरावृत्ति के बिना विषय को स्पष्ट न कर पाये।

प्रस्तुत समीक्षा मे 113 शीर्षक हैं जो दो अध्यायो और सात काण्डो मे विभाजित हैं। आचार्यो ने जिस क्रम से स्वाध्याय/अध्ययन करने का उपदेश अपने ग्रन्थो मे दिया है उसके अभाव मे अर्थात् क्रम से स्वाध्याय न करने के कारण या न कराने के कारण ही लोग भ्रमित हो जाते हैं अर्थात् तत्त्व का सही-सही स्वरूप न समझने के कारण स्वच्छदी हो जाते है। जिस प्रकार स्वाध्याय के अगों मे धर्म उपदेश भी एक अग है, जो वाचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा एव आम्नाय के आश्रित है। कुशल उपदेशक वही हो सकता है जो पिछले अगों का उचित तरीके से पालन करता हो, लेकिन इन अगों का पालन करना तो दूर उन्हे हेय समझ ले तब वह धर्मोपदेश चाहते हुए भी नहीं कर सकता। उसी प्रकार भावार्थ को समझने एव उसे समझाने के लिये शब्दार्थ, मतार्थ, आगमार्थ एव नयार्थ को समझ लेना अनिवार्य है। जिसमे समझने वाले की अपेक्षा समझाने वाले को तो अत्यधिक अनिवार्य है। जिसे दूध नही पचता वह मावा, घी, दही एव इनसे तैयार-चीजे पचा सकेगा क्या ? उसी प्रकार जिसे शब्दार्थ आदि से समझना या समझाना कठिन हो उसे खाली भावार्थ से समझना सहज है क्या ? नहीं। जो समझे अथवा समझाया जाये वह अपवाद समझना चाहिये। कठिनाई के कारण शब्दार्थ आदि के पढने मे रुचि न ले एक अलग बात है, लेकिन पढना प्रारम्भ करने से पहले ही हेय कहने, समझने लगे तो उसका बहुत बडा दुर्भाग्य समझना चाहिए। वह तो उस चालाक लोमडी से चालाकी मे दो कदम आगे समझना चाहिए जिसने प्रयास तो किया, लेकिन सफलता न मिलने पर अगूरों को खट्टा कह दिया था। चतुर्विध सघ आया था गाँव में। आर्यिकाओ से प्रभावित होकर एक लडकी साथ हो गई। दस-पाँच दिन रही। कठिनाई का अनुभव हुआ। तथा कथित मुमुक्षु बन गई अर्थात् चारित्र हेय है।

कुछ ही शीर्षको का अर्थ स्पष्ट कर दिया जाये तो सभी का अर्थ समझने मे सुविधा हो जायेगी। इससे पहले इतना और कहना आवश्यक है ''शब्दार्थ काण्ड'' के प्रथम और अन्तिम शीर्षक मे विषय के अनुसार शब्दार्थ के स्थान पर ''मुमुक्षु शब्द एव स्वाध्याय शब्द'' रखा गया है शेष मे ''शब्दार्थ'' शब्द ही। प्राय बचपन मे ही नामकरण कर दिया जाता है। बड़ा होने पर नाम के अनुसार गुण नहीं हुए तो सुनने पर दूसरो को बुरा लगता ही है, उसे स्वय भी बुरा लगता है शर्म आती है। ''नाम बड़े और दर्शन छोटे'' कहकर उपास किया जाता है। ''मुमुक्षु शब्द का शाब्दिक अर्थ छोडने का इच्छुक'' जो इस अर्थ का अनुकरण न करे और अपने आप को नाम निक्षेप से मुमुक्षु माने या टिनोपाल मे तले (रगे) कपडे पहन कर मुमुक्षु माने उसकी दृष्टि में 'मुमुक्षु शब्द' महान नहीं हो सकता। जिनके सिद्धात मे त्याग कोई चीज नहीं है फिर भी अपने को मुमुक्षु कहने, कहलवाने मे शर्म नहीं आती। जो व्याकरण पढने को हेय समझे उसके लिये शब्दार्थ महान नही हो सकता।

''मतार्थ काण्ड'' मे दूसरे शीर्षक को छोडकर शेष समान है। न्याय ग्रथो को पढना जिन की दृष्टि मे समय बर्बाद करना हो उनकी दृष्टि मे मतार्थ महान नहीं हो सकता।

''आगमार्थ काण्ड'' मे आगमार्थ के स्थान पर ''जिनागम शब्द'' का प्रयोग किया गया है जो अपनी रुचि के अनुसार सभी को चलाना चाहे उसकी दृष्टि मे आगम महान नहीं हो सकता। साथ ही इनेगिने शास्त्रो को ही आगम माने उसकी दृष्टि मे भी आगम महान नहीं है। इस छोटी सी समीक्षा मे सैद्धातिक चर्चा बहुत कम की गई है अत सैद्धातिक भूलो को सुधारने के लिये तथाकथित मुमुक्षुओ को ''व्यक्तित्व और कृतित्व'' यह सकलन ग्रन्थ अवश्य पढना चाहिए, प्रत्येक व्यक्ति को पढना चाहिए ताकि कुतर्क का सतर्क जबाव दिया जा सके।

''नयार्थ काण्ड'' मे आदि के सात एव अन्तिम शीर्षक को छोडकर नय-अर्थ के स्थान पर उपचार विनय शब्द का प्रयोग किया गया है। वैसे नयार्थ समझने के लिये बहुत से ग्रन्थ हे लेकिन प्रसग मे शब्द शास्त्र के आधार पर निश्चय व्यवहार का अनुकरणीय, चिन्तन ''जिनशासन मे निश्चय और व्यवहार'' इस पुस्तक मे प्रस्तुत किया हे अन्यत्र हमे देखने मे नहीं आया, लेकिन उस विषय को समझने के लिये होना चाहिए व्याकरण का अभ्यासी। वशीधर व्याकरणाचार्य जी के द्वारा रचित साहित्य से ज्ञात होता है कि इन्होने अपने समय मे काफी सघर्ष किया है इन तथा-कथित मुमुक्षुओ से, विकाऊ पडितो से। यहा शका हो सकती है ''नयार्थ काण्ड'' मे उपचार विनय को क्यो लिया गया। समाधान यह है कि व्यवहार नय को हेय कहने वाले उपचार विनय को व्यवहार कहकर हेय कहा करते हैं, लेकिन वे किसी न किसी रूप मे उसका सहारा लेते हैं। जैसे मूर्ति को नहीं मानने वाले व्यवहार चलाने के लिये फोटू का सहारा लेते हैं। उपचार विनय का किस रूप मे सहारा लेते हैं इसका विस्तृत विवेचन इस काण्ड मे किया गया है।

भावार्थ काण्ड मे सभी शीर्षकों मे भावार्थ शब्द का ही प्रयोग किया गया है। भावार्थ का जो अर्थ शास्त्रो मे किया गया है उसकी यहा समीक्षा नहीं की गई है, अपितु इन तथा-कथित मुमुक्षुओं के द्वारा जो भावार्थ किया गया है या किया जाता है उसकी समीक्षा की गई है। ''मुनि व्रतधार अनन्त बार ग्रैवक उपजायो'' इस पक्ति का भावार्थ किया जाये तो ज्ञान की महिमा बताई गई है, ऐसा अर्थ निकलता है, लेकिन इनके द्वारा निकाले गये भावार्थ मे मुनि पद धारण की निरर्थकता बताई जाती है। ''आण ताण कछु न जाण सेठ वचन परमाणं''। इसमें नि शकित अग की महिमा बताई गई है। लेकिन कोई प्रमादी इसका भावार्थ करे कि शुद्ध णमोकार मत्र पढने की भी आवश्यकता नहीं है, यह भावार्थ मिथ्या है। ''भावार्थ काण्ड मे दान का प्रकरण भी लिया है जिसमे छह ढाला मे लिखी गई टिप्पणी की समीक्षा की गई है।

समीक्षा के दूसरे अध्याय मे केवल दो काण्ड है। ''दोषारोपण काण्ड'' मे ईर्ष्या के कारण होने वाले दोषारोपण पर विचार किया गया है।'' राजनीति काण्ड मे नेताओ के साथ तुलना करके समीक्षा की गई इनकी। साथ ही मोक्ष प्राप्ति के लिये बताये गये उपाय को ऐलोपेथिक इलाज कहा गया है। समीक्षा के अन्त मे परिशिष्टी भी सक्षेप मे दी गई है। ''तथा-कथित शब्द का अर्थ होता है- नकली। प्रसगवश आवश्यक समझे जाने से इस समीक्षा मै ''नग्नत्व समीक्षा'' एव ''आचार्य समीक्षा'' का कुछ विषय थोडा परिवर्तित करके लिया गया है।

अनुक्रमणिका

प्रथम अध्याय

शब्दार्थ काण्ड (1 - 24)

मतार्थ काण्ड (26 - 49)

आगमार्थ काण्ड (50 - 73)

नयार्थ काण्ड (74 - 99)

भावार्थ/विशेषार्थ काण्ड (100 - 118)

द्वितीय अध्याय

दोषारोपण काण्ड (119 - 130)

राजनीति काण्ड (131 - 140)

प्रथम अध्याय

मंगलाचरण

वीर आदि जिननाथ के चरनन् रखता माथ।
'मुमुक्षु समीक्षा' मैं लिखूँ, सिर पर रख दो हाथ (1)
किञ्चित भय मुझे है नहीं, कुन्द कुन्द हैं साथ।
समंत भद्र गुरुदेव जी पकडो मेरा हाथ (2)
निर्ग्रन्थो के हेतु ही लिखा जाये यह ग्रथ।
पाकर के सग्रथता हो जाये निर्ग्रन्थ (3)

शब्दार्थ काण्ड

1. क्या मुमुक्षु शब्द महान ? नहीं, टिनोपाल के कपड़े मुमुक्षु की पहचान।

लौकिक या धार्मिक किसी भी क्षेत्र मे व्याकरण (शब्द शास्त्र) का क्या महत्व होता है इसे शब्द शास्त्र ज्ञाता ही जानता है/ जान सकता है। इसकी महत्ता को दृष्टि मे रखकर मनीषी कहते है, ''अव्याकरणमधीत, भिन्न द्रौण्या तरगनी तरण, भेषजमपथ्य सहित त्रयमिद कृत वर न कृत'' अर्थात् जिस प्रकार फूटी नाव मे बैठकर नदी पार करना व्यर्थ, जिस प्रकार अपथ्य सहित (परहेज के बिना) ओषधि सेवन करना व्यर्थ है उसी प्रकार बिना व्याकरण के अध्ययन करना व्यर्थ है।

''मुमुक्षु'' शब्द के शाब्दिक एव रूढ अर्थ से अपरिचित जिज्ञासु पूछने लगा- महाराज ! ''मुमुक्षु'' इस शब्द का क्या अर्थ है ? हमने कहा उपरोक्त दोनो अर्थो मे कोन-सा-अर्थ जानना चाहते हैं ? कहने लगा - दोनो ही अर्थ। मुमुक्षु शब्द का रूढ अथ- टिनोपाल मे तले धोती, कुर्ता, पायजामा और टोपी पहनने वाले। मतलब यह है कि ऐसे भेषधारियो को मुमुक्षु कहा जाता है या उपरोक्त भेषधारी के सामने आते ही मुमुक्षु होने का अनुमान लगा लिया जाता है। जिन तथाकथित मुमुक्षुओ की यहाँ समीक्षा की जा रही है, जो ऐसे नहीं हैं, उन्हे भेष के आधार पर वेसा समझ लेने पर या कह देने पर उसी प्रकार बुरा लगता है जिस प्रकार जो वेतन सेवी पुजारी नहीं हैं उसे वैसा समझ लेने या समझकर वैसा कहने पर उसे बुरा लगता है।

'मोक्तु इच्छु मुमुक्षु' इस व्युत्पत्ति के अनुसार ''मुमुक्षु'' शब्द का अर्थ जो छोडने का इच्छुक है और जो भोगने का इच्छुक हे वह बुभुक्षु है, भोगतुम् इच्छु बुभुक्षु इस व्युत्पत्ति के

अनुसार जिनकी दृष्टि में या सिद्धात मे छोडना कोई चीज नहीं हैं, क्योंकि उनकी आत्मा (पुरुष), साख्य मत की मान्यता की तरह हमेशा से शुद्ध है। आगे कहीं जाने जाने वाली इनकी श्रद्धा, ज्ञान एव चरित्र हीनता इन्हे मुमुक्षु नहीं बुभुक्षु सिद्ध करती है। ऐसी स्थिति में इन्हें अपने आप को मुमुक्षु कहना और कहलवाना "आखों के अधे नाम नयनसुख" तीनों पन गरीबी में गुजरे नाम अमीरचन्द "कोयला जैसे काले नाम गोरे लाल।" इनके आधार पर नाम रखे जाने वाले की तरह उपहास के ही पात्र हैं। जिस व्यक्ति को इस समीक्षा मे खलनायक बना कर उसकी और उसके अनुयायियों की मुख्य रूप से समीक्षा की जाने वाली है उसके दिगम्बर आम्नाय मे आने से पहले, मैं समझता हूँ मुमुक्षु शब्द का कोई रूढ अर्थ प्रचलन मे नहीं था। आगे चल करके यह "मुमुक्षु" शब्द "पाखडी" शब्द की तरह गाली के रूप मे बोला जाने लगेगा ऐसी सम्भावना से नकारा नहीं जा सकता। अत "मुमुक्षु" यह रूढ अर्थ की अपेक्षा महान नहीं हो सकता।

2. क्या शब्दार्थ महान ? नहीं, चार अंगुल की लकड़ी श्वेताम्बर की पहचान।

"पाप खण्डयति इति पाखण्डी" अर्थात् जो पापो का नाश करे वह पाखण्डी, इस आधार पर समतभद्राचार्य ने इसका "गुरु" अर्थ किया है, लेकिन रूढ अर्थ के अनुसार कोई किसी साधु को कहकर देखे पाखण्डी लंड मरेगे भक्त लोग कि मेरे गुरु को धूर्त, ठग, मायाचारी इत्यादि कह रहा है, क्योकि यह शब्द ऐसे ही कुकृत्य करने वालो के लिये रूढ हो चुका है। कुकृत्य का अर्थ- कहना कुछ करना कुछ, करना कुछ कहना कुछ। उपरोक्त खलनायक का यह कृत्य एक विद्वान से ज्ञात हुआ। कहने लगे- महाराज श्री ! पुण्य को, पुण्य भाव का, पुण्य की क्रियाओ को एकान्त से हेय कहने वाल, निमित्त नैमित्तिक सबध को नही मानने वाले। तीर्थयात्रा, जो पुण्य क्रिया है, करते हुए मेरे निवास स्थान/ गाव मे आये। उनसे कुछ देर चर्चा हुई। उस बीच मे वे हर दो-तीन मिनिट के अन्तराल मे सूघनी सूघ लेते थे। हमने पूछा- यह क्या है और क्यो सूघते है ? कहने लगे-पण्डित जी! जगह-जगह का पानी पीना पडता है जुखाम हो जाता है। इसे सूघते रहने से नहीं हो पाती। मैंने कहा- आप ऐसा मानते कहाँ है जैसा कह/कर रहे हैं। वे कहने लगे-कहना अलग बात है ओर करना अलग बात है। मैंने कहा-आप वही कहो जो करते हो और वही करो जो कहते हो। वे तर्क सुनकर चुप रहे गये।

पण्डित जी ! वे चुप तो उस समय भी रह गये थे जब शान्ति सागर महाराज ने पूछा था- तुमने श्वेताम्बर आम्नाय को छोडा दिगम्बर आम्नाय मे आये यह तो अच्छा किया, लेकिन उस सम्प्रदाय में कमी क्या थी ? महाराज ने जब उन्हे चुप देखा तो यह कहकर वहा से चल दिये कि यह दिगम्बर आम्नाय के साथ छल किया जा रहा है। दिगम्बरत्व से

जन्म जात द्वेषी होने की बात उसके श्वेताम्बर आम्नाय में पैदा होने से स्वय सिद्ध है। बाह्य में दिगम्बर आम्नाय मे आकर भी श्वेताम्बर आम्नाय में उपादेय बुद्धि पास में आठ या चार अगुल की लकडी रखने से स्वय सिद्ध होती है। यह बात भी उसी के द्वारा एक विद्वान से ही ज्ञात हुई। अर्थात् उसने कहा था- शास्त्री जी यह जो मेरे पास लकडी है बहुत चमत्कारी है। पण्डित जी को भाव सग्रहादि ग्रथ से पढ़कर ज्ञात हुआ कि उपरोक्त लकडी प्रत्येक श्वेताम्बर साधु-साध्वी के पास हुआ करती है। निम्नलिखित घटना उस समय की है जब बारह वर्ष का उत्तर भारत मे अकाल पढा था। सकाल आ जाने के बाद आचार्यों ने साधुओ को आदेश दिया कि अब हम पुन. दिगम्बर भेष मे आ जाये। अधिकाश साधु तो मान गये बात, लेकिन कुछ साधुओ ने नहीं मानी। एक आचार्य के अत्यधिक बाध्य करने पर उन्होने उन्हे एकान्त पाकर मार डाला। आचार्य मरकर व्यतर हो गये और मारने वालो को सताने लगे। साधुओ ने अपनी गलती स्वीकार की और कहा- हम क्या करे ? व्यतर ने आदेश दिया कि ये लकडी है इसे वे ही आचार्य हैं ऐसा मानकर पूजा करो, तब से श्वेताम्बर साधु उसे श्रद्धा से रखते हैं। जो ऐसी मूढता को छोडने का इच्छुक नहीं था वह मुमुक्षु ही कैसे हो सकता है।

श्वेताम्बर भाईयो से ज्ञात हुआ कि उसे समयसार ग्रथ पढने को मिल गया। वह उसी आधार पर दिगम्बरो के अनुकूल भाषण करने लगा। लोगो को चिन्ता हुई, उन्होने रोका। वह माना नहीं। लोगो ने उसे जान से मारने की योजना बना ली। उसे मालूम पडने पर वहाँ से भागा। लोग वहीं पहुँच गये। मरने से बचने के लिये उसने लोगो से कहा आप लोग निश्चित रहे हम श्वेताम्बर आम्नाय की कुछ भी क्षति नहीं होने देगे, अपितु दिगम्बरो मे ही फूट डालेगे। इसके लिये पर्याप्त धन की आवश्यकता पडेगी वह आप लोगो से चाहिए, क्योकि बिना प्रलोभन दिये लक्ष्य सिद्धि हो नहीं सकती। लोगो ने स्वीकार किया और नाटक चालू हो गया।

इसी के विषय मे एक दिगम्बर आम्नाय के सज्जन के द्वारा एक श्वेताम्बर साधु से पूछे जाने पर उन्होने कहा- दिगम्बरी बड मूर्ख हैं। कैसे ? जिस महिला के साथ चरित्र हीनता के कारण उसका श्वेताम्बरो ने बहिष्कार किया। दिगम्बरियो ने उसे "शब्द ज्ञानी हैं" इस कारण अपना लिया। तीर्थंकर भगवान बना लिया भविष्य का। जैसे शकर/रुद्र पहले दिगम्बर साधु थे। चरित्र से भ्रष्ट हुए हिन्दुओ ने उन्हे भगवान बना लिया। विद्याओ का बल था, इसलिए। विष्णु कुमार मुनी ने कारणवश वेष छोडा हिन्दुओ के विष्णु भगवान बन गये। कारण, चमत्कार। एक दिगम्बरी ने श्वेताम्बर से पूछा- क्यो भाई ! हमारे यहाँ पचकल्याण वगैरह शादी-विवाह जैसे हो रहे हैं, आप लोगो के यहाँ नहीं होते ? वे उपरोक्त व्यक्ति का नाम लेते हुए कहने लगे- तुम्हारी आम्नाय मे पहुँचकर वे जो कुछ भी निर्माण कार्य करवा रहे हैं वह एक दिन हमारा ही होना है अत हमे कुछ करने की आवश्यकता ही नहीं है। लगता है वह व्यक्ति पहली वाली घटना से परिचित था।

3. क्या शब्दार्थ महान ? नहीं, एक द्रव्य दूसरे...करता, कौआ ले गओ कान।

वैसे तो इस शीर्षक का विषय "मतार्थ काण्ड" का है, लेकिन सम्पूर्ण समीक्षा का आधार होने से इसे "शब्दार्थ काण्ड" मे दिया जा रहा है। इस बात से तो प्राय· सभी स्वाध्यायी परिचित होगे। श्वेताम्बर स्त्री मुक्ति मानते हैं, लेकिन "एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं करता" यह दिगम्बरो नहीं श्वेताम्बरो का ही मत है ऐसे बहुत कम ही लोग हैं जो जानते हो। अत किसी बात का समर्थन करने से पहले शब्दार्थ के साथ साथ मतार्थ का भी ज्ञान होना आवश्यक है। दिगम्बर आम्नाय मे आकर सीधे-सीधे तो कह नहीं सकते कि स्त्रियो को भी मुक्ति होती है, क्योकि सीधा-सीधा कहने पर यहाँ से भी लतया दिये जाते, क्योकि दिगम्बर तो कट्टर विरोधी हैं, स्त्री मुक्ति के। अत इसके समर्थन का एक दूसरा ही तरीका अपनाया "एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं करता" अर्थात् निमित्त नैमित्तिक सबध कोई चीज नहीं है। लोक मान्यता है कि एक असत्य को सत्य सिद्ध करने के लिये अनगिनते असत्यो का सहारा लेना पडता है। असत्य को सत्य सिद्ध करने वाला असत्यो के मकड जाल मे ऐसा फस जाता है कि उसमे से सुरक्षित निकलना कठिन ही नहीं असम्भव भी हो जाता है, मकडी के समान।

बुन्देल खण्ड मे एक कहावत है- "एरे तोरो कान कौआ ले गओ" एक धूर्त ने एक भोले भाले व्यक्ति से कहा। उसने भी कान तो देखा नहीं और कौए के पीछे दौड पडा। "एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं करता" ये धूर्त के ही बोल हैं जिन्हे, शास्त्रो का क्रम से अध्ययन किये बिना, इन भोले-भाले दिगम्बरियो ने प्रमाण मान कर स्वीकार कर लिया है और उसी धूर्त के अनुसार चल रहे है। शास्त्रो मे देखा नहीं कि लिखा है या नहीं। एक व्यक्ति एक आचार्य से कहने लगा-महाराज ! एक द्रव्य दूसरे का कुछ नहीं करता" ऐसी मेरी मान्यता है। आप से भी जानना चाहता हूँ कि आप क्या मानते हैं एव जान कर समाधान चाहता हूँ। महाराज ने कहा- आपकी शका का समाधान हमसे हो जायेगा ? कहने लगे-क्यो नहीं आप तो बहुत विद्वान हैं। उन्होने कहा-शका करने वाला द्रव्य अलग हैं और समाधान करने वाला द्रव्य अलग हैं फिर आप ही के अनुसार समाधान हो ही नहीं सकता। उसे समझ मे आ गया कि धूर्त के द्वारा ठगाया गया था। कौए के पीछे दौडाने वाले धूर्त का अपना कोई प्रयोजन नहीं था सिवाय बेवकूफ बनाने क, लेकिन इस धूर्त का प्रयोजन दिगम्बरो मे स्त्री मुक्ति का प्रचार करना था। दिगम्बर से श्वेताम्बर होने वाले और अपने आपको मुक्ति का अधिकारी मानने वाले साधुओ पर निश्चित रूप से आक्षेप हुआ होगा कि वस्त्र धारियो को मुक्ति होने लगे तो स्त्रियो को भी होना चाहिए। एक असत्य को सत्य सिद्ध करने के लिये अर्थात् वस्त्रधारियो को मोक्षसिद्ध करने के लिये स्त्रियो को मोक्ष का विधान किया और इस असत्य को सत्य सिद्ध करने के लिये मल्लिनाथ तीर्थंकर को

मल्लिकुमारी स्त्री सिद्ध किया। तीर्थंकरो को कवलाहारी सिद्ध करना ऐसे ही किसी आक्षेप का परिणाम है। उसी प्रकार एकान्त से "एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं करता" ऐसा कहने वाला अनगिनत आक्षेपो से बच कैसे सकता है।

कोई कहे- मेरी मा बाझ है, ऐसा सिवाय निराठ मूर्ख के और कौन कहेगा। आक्षेप तो होगा कि तूँ पैदा कैसे हो गया जब तेरी मा वैसी है तो। उसी प्रकार "एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं करता" ऐसा उपदेश दे रहा है श्रोताओ को। उपरोक्त मूर्ख मे और इसमे क्या अतर है ? श्रोताओ की मूर्खता तो देखो कि वे सुन भी लेते हैं। कह नहीं सकते कि व्यर्थ का परिश्रम क्यो किया जा रहा है, जब सामने वालो का कुछ बनने बिगडने वाला ही नही है।

4. क्या शब्दार्थ महान ? नहीं, बंदर के हाथ कहीं लग गई कृपाण।

असयम के साथ साथ मिथ्यात्व भी हो तो "एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं करता" इसके आक्षेप मे कुछ भी बोल देने/उत्तर देने मे आगे-पीछे सोचा नहीं जाता कि इसमे जिन, जिनवाणी, गुरु, धर्म, देवो का अवर्णवाद कर रहा हूँ और मिथ्यात्व के आश्रव का कारण अवर्णवाद (दोषारोपण) की पुष्टि के लिये अध्यात्म ग्रथो ने बदर के हाथ मे तलवार का काम किया।" जिसकी समीक्षा चल रही है उसके कृत्यो से ज्ञात होता है कि उसके हाथ मे समयसार ग्रथ ने बदर के हाथ मे तलवार का काम किया। अध्यात्म ग्रथो मे निश्चय एव व्यवहार नय के कथन की मुख्यता है, लेकिन उपरोक्त मान्यता मे व्यवहार नय बाधक सिद्ध हुआ अत उसे हटाने/झुठलाने/ एकान्त से असत्य सिद्ध करने का निरर्थक/ निष्फल प्रयास किया, जा रहा है। यो कहना चाहिए कि अद्वैतवादियो का अनुकरण किया अर्थात् ये वादी दूसरो को अपनी मान्यता सिद्ध करके नहीं बता सकते किसी उपाय से। यदि करते हैं तो अद्वैत खण्डित होता है। साध्य-साधन द्वैत की आपत्ति आयेगी ही। उसी प्रकार निश्चय को ही सत्य सिद्ध करने लिये और व्यवहार को एकात से असत्य सिद्ध करने के लिये इनके पास उपाय क्या है ? निश्चय तो गूगा है वह न अपने बारे मे कुछ कह सकता है न व्यवहार के बारे मे। रहा व्यवहार सो वह असत्य होता हुआ सत्य को कैसे सिद्धकर सकता है और न अपने को ही असत्य सिद्ध कर सकता है। शून्याद्वैतवादी आदि शून्याद्वैत आदि को सिद्ध करने के लिये कहते हैं- आप द्वैतवादी तो साधन को मानते हैं, अत उसी से अपने अद्वैत की सिद्धी कर लेगे। द्वैतवादी कहते हैं- पहली बात तो तुम्हारे अनुसार तुम्हारे अतिरिक्त दूसरा कोई है ही नही, यदि मानते हो तो अद्वैत की मान्यता समाप्त होती है।

दूसरी बात, हम द्वैतवादियो द्वारा मान्य साधन यदि समीचीन है तो उनकी सभी मान्यताए स्वीकार करना चाहिए। उसी प्रकार निश्चय को ही उपादेय मानने वाले व्यवहार को भी उपादेय मानने वालो से कहे कि आप लोग व्यवहार को सत्य भी मानते हैं अत

कुछ समय के लिये आप से उधार ले लेंगे और निश्चय नय को ही उपादेय सिद्ध करके वापिस कर देंगे। इनसे पूछना चाहिए कि हमारे द्वारा मान्य व्यवहार को हेय मानकर उधार लेगे या उपादेय मानकर ? पहला पक्ष तो ठीक नहीं है, क्योकि हेय से तो उपादेय की सिद्धि नहीं हो सकती। दूसरा पक्ष स्वीकारते हो तो अर्थात् उपादेय मानकर स्वीकारते हो तो तुम्हारी एकान्त मान्यता समाप्त हो गई की व्यवहार हेय ही होता है अत व्यवहार उधार नहीं हम अपनी उदारता से दान मे ही दे देते हैं जिससे विवाद का अत ही हो जाये।

जब "एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं करता", तब देव, गुरू शास्त्र एव जीव द्रव्य, जीव तत्व, जीव पदार्थ, जीवास्तिकाय के अतिरिक्त शेष द्रव्य, तत्त्व, पदार्थ एव अस्तिकाय के ऊपर श्रद्धान करने से सम्यग्दर्शन हो कैसे सकता है क्योकि वे पर है ? यह भी एक असत्य है जिसका इन्हे सहारा लेना पडा। दूसरा असत्य आत्मा को ही देव, गुरु, शास्त्र कहने का दु साहस करना पडा और उसी पर विश्वास करना सम्यग्दर्शन है। जिस असयमी को ये सत् गुरु कहते है उसके ऊपर विश्वास करना भी सम्यग्दर्शन नहीं है। और कोई उसकी आलोचना करे इन्हे बुरा लगता है। जब किसी के ऊपर विश्वास करना सम्यग्दर्शन (धर्म) नही है तब उसके विषय मे कोई कुछ भी कहे इन्हे अन्तर नही पडना चाहिए। इनके स्वय के विषय मे कोई कुछ कहे माध्यस्थ रहना चाहिए। आत्मा दिखता नहीं कह कैसे सकता है कोई कुछ उसके विषय मे।

5.क्या शब्दार्थ महान ? नहीं, झूठ बोलने में राजा वसु के समान।

"एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं करता" इस मान्यता मे द्रव्यानुयोग को छोडकर शेष अनुयोग बाधक सिद्ध होते हैं। आत्म श्रद्धान मात्र को सम्यग्दर्शन, इसी द्रव्यानुयोग के माध्यम से सिद्ध करने की भरसक कोशिश की जाती है। सम्यग्दर्शन को अनेक प्रकार का मानना भी उपरोक्त मान्यता मे बाधक है। सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति, विषय एव विशुद्धि के आधार पर शास्त्रों मे उसके भेद का कथन मिलता है। फिर इसे एक प्रकार का कहने मे इन्हे आगम विरुद्धता का ख्याल नहीं है। इन लोगो का कुतर्क है कि क्षयोपशम की अपेक्षा से भले ही भेद हो, लेकिन उपशम एव विशेषकर क्षायिक सम्यग्दर्शन की अपेक्षा से भेद नहीं है सिद्धो एव चतुर्थ गुणस्थानवर्ती जीवो के सम्यग्दर्शन मे, क्योंकि दर्शन मोह का सर्वथा और सर्वदा के लिये अभाव हो चुका है। पहली बात तो यह है कि पर के ऊपर श्रद्धान करना ही सम्यग्दर्शन नहीं है, तब सिद्धो के साथ अपने सम्यग्दर्शन की तुलना करना समीचीन नहीं है एवं अपने मत्र का खण्डन करना है। क्योकि उससे पराश्रायता आती है। दूसरी बात, जब कर्म का उदयादि भी जीवो के उत्थान-पतन का कारण नहीं है, तब सम्यग्दर्शन मे क्षायिक आदि उपाधिया लगाने का अधिकार ही नहीं है। तीसरी बात, किसी भी कार्य की उत्पत्ति मे योग्यता की शरण लने वालो के यहा भी उपाधियाँ नहीं लगती।

चौथी बात, बारहवें गुणस्थान मे अनन्त सुख का विनाशक मोह कर्म का सर्वथा नाश हो जाता है फिर वहाँ अनन्त सुख की अनुभुति क्यों नहीं होती ? क्या यहाँ भी योग्यता की शरण लेनी होगी ? नहीं। कहना होगा वहाँ शेष तीन घातिया कर्म बैठे हुए हैं, अतः सिद्ध होता है कि बहुत से ऐसे आनुसगिक गुण होते हैं जो अन्य कर्मों के अभाव से प्रगट होने वाले गुणो की अपेक्षा रखते हैं। क्षायिक सम्यग्दर्शन भले ही उत्पत्ति की अपेक्षा सिद्धो के साथ सादृश्यता रखता हो, लेकिन विषय और विशुद्धि की अपेक्षा दोनों के सम्यग्दर्शन मे जमीन आसमान का अन्तर है। सम्यग्दर्शन को एक प्रकार का मानने वाले, अनेक प्रकार के मानने वालो को मिथ्या दृष्टि कहते हैं। ऐसे लोगो से जब कोई चारित्र लेने की बात करता है। तब अपने और दूसरो के विषय मे ऐसा कहते हुए सुने जाते हैं कि पहले सम्यग्दर्शन प्राप्त करना चाहिए, यदि प्राप्त है तो उसे दृढ बनाना चाहिए। पूर्वापर विरुद्ध बोलने वालो के उपरोक्त कथन से ही सिद्ध है कि सम्यग्दर्शन ढीला/कच्चा भी होता है। ''दोदा बडो के लवार'' बुदेलखड मे एक कहावत है। सम्यग्दर्शन को एक मानने वालो के सामने उपरोक्त तर्क रखा जाता है तो उन्हे चुपचाप अनेक प्रकार का स्वीकार कर लेना चाहिए, लेकिन ऐसा न करके वे कुतर्क करके दोदा तो कहलाते ही हैं, साथ ही ''सबरे लबरा मर गये इन्हे बुखार तक ने आओ'' यह कहावत भी लागू होती है अर्थात् पापानुबधी पुण्य का उदय होने से राजावसु के समान झूठ का सहारा लेने वाले भी शास्त्र गद्दी पर बैठकर असत्य भाषी भी तत्काल गद्दी सहित जमीन मे धस नहीं पाते। इसका मतलब यह कि वे वसु जैसे गति को प्राप्त नहीं होगे।

कुन्द-कुन्द स्वामी ने कहा है- जब तक दर्शन, ज्ञान, चरित्र जघन्य भाव से परिणत रहते हैं, तब ज्ञानी भी कर्म बध को प्राप्त होता रहता है। इनकी दृष्टि मे जब सम्यग्दर्शन मे भेद नहीं है तो सम्यग्ज्ञान मे भी भेद नहीं होना चाहिए। लेकिन ज्ञान मे भेद स्वीकारते है। तत्त्वार्थ सूत्र मे अवधिज्ञान के छह भेद किये हैं। इन भेदो की व्याख्या करते हुए पूज्य पाद स्वामी लिखते हैं कि सम्यग्दर्शन की विशुद्धि की हीनाधिकता से अवधिज्ञान के विषय मे हीनाधिकता आती है। जैसे कोई जीव वर्धमान अवधिज्ञान लेकर पेदा हुआ है तो सम्यग्दर्शन की विशुद्धि से उसका विषय क्षेत्र बढता जाता हैं और कहीं हीयमान अवधिज्ञान को लेकर पैदा हुआ है तो सम्यदर्शन की विशुद्धि की हानि से विषय क्षेत्र घटता जाता हैं। इससे सिद्ध होता है कि विशुद्धि की हीनाधिकता से सम्यग्दर्शन अनेक प्रकार का है।

6. क्या शब्दार्थ महान ? नहीं, रहते हिन्दुस्तान में अच्छा पाकिस्तान।

आत्म श्रद्धान को सम्यग्दर्शन मानने/कहने वाले यह बतायें कि ये परोक्ष पदार्थों के अस्तित्व को किस आधार पर स्वीकारते हैं। चारवाक् नास्तिक के समान सर्वथा अस्वीकार तो कर नहीं सकते, न किया है, न करते ही हैं। यदि कहा जाये-परोक्ष पदार्थों के अस्तित्व

को स्वीकार करना सम्यग्दर्शन नहीं है, तब तो आत्म श्रद्धान मात्र भी परोक्ष ज्ञानियो को सम्यग्दर्शन नहीं हो सकता, क्योकि आत्मा परोक्ष ज्ञान का विषय नहीं है। यदि ज्ञान क्षायिक है तो सम्यग्दर्शन क्षायिक होगा ही, लेकिन क्षायिक सम्यग्दर्शन के साथ ज्ञान क्षायिक ही हो कोई जरूरी नहीं है। कहने का मतलब है कि प्रत्यक्ष ज्ञान के साथ भी सम्यग्दर्शन की आवश्यकता होती है जिसे परमावगाढ कहा गया है और इसमे जितनी विशुद्धि, स्पष्टता, विषयता एव दृढता होती है परोक्ष ज्ञान के साथ होने वाले सम्यग्दर्शन मे उतनी नहीं होती, न हो सकती है। इतना ही नहीं, साव्यवहारिक ज्ञान के साथ होने वाले सम्यग्दर्शन मे जितनी दृढता होती है उतनी अन्य परोक्ष ज्ञानो मे नहीं। शाब्दिक ज्ञान, अग्नि ज्ञान, धुए से होने वाले ज्ञान और नेत्र इद्रियजन्य अग्नि ज्ञान के साथ होने वाले श्रद्धान की दृढता मे क्रमश बहुत अन्तर होता है यह अनुभव की बात है।

द्रव्य सग्रह के टीकाकार लिखते हैं- जब कोई भव्य आत्मा समाधि से शरीर छोडकर स्वर्ग पहुचता है। विक्रिया से नन्दीश्वर आदि द्वीप मे अकृत्रिम चैत्यालयो की वदना करता है और विचार करता है कि मैंने पूर्व भव मे शास्त्रो मे जिनके विषय मे पढा था उन्हे आज मे प्रत्यक्ष देख रहा हूँ। उस समय उसका वह श्रद्धान और भी दृढ हो जाता है। इस शास्त्रोक्त कथन से विशुद्धि की अपेक्षा सम्यग्दर्शन मे अनेकता सिद्ध है।

आश्चर्य तो उस समय होता है कि जब गुरु पद पर स्थित पिच्छीधारी व्यक्ति कहते हैं- देव, गुरु शास्त्र के ऊपर श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन नहीं है। तब क्या इनकी सेवा करने वाले इन पर अश्रद्धा रखकर इनकी सेवा करते होगे और ये करवाते होगे, या इन्हे करवाना चाहिए। दूसरी आश्चर्य की बात यह है कि ऐसे गुरुओ को वे लोग भी मान्यता देते हैं, जो देवादि के ऊपर श्रद्धान करने को सम्यग्दर्शन नहीं मानते। जब ऐसे लोग ऐसे ही गुरुओ के प्रवचन सुनने के लिये पहुचते हैं, तब बडे गर्व के साथ कहते हुये सुने गये हैं कि देखो, मेरे उपदेश सुनने के लिए भी ऐसे लोग आते है। ऐस लोग भी मुझे आहार देते हैं ऐसा कहते हुए नहीं सुने गये। हम समझत हैं कि ये गुरु हिसा एव मास भक्षण का समर्थन करने लगे तो इनके उपदेश मे हिन्दू और मुसलमान एव ईसाई भी आने लगे, तब तो इन्हे अपने ऊपर गर्व की कोई सीमा नहीं होगी। तीसरी बात आश्चर्य की यह भी है कि जरूरत से ज्यादा शिथलाचारी गुरु किसी कारण वश इनकी मान्यता का समर्थन करने लगे तो उसे किसी न किसी रूप मे मान्यता देने लगते हैं। ''कारणवश'' इसलिए कि अभी एक ऐसे साधु हैं जो लुहरी सेन (दस्सा) समाज से साधु बने हुए हैं। बीस पथी साधुओ न उनकी उपेक्षा की वे उपरोक्त मान्यता का समर्थन करने लगे और ये उनके आदरणीय हो गये, जो उनके ऊपर श्रद्धान को सम्यग्दर्शन नहीं मानते। ऐसा लगा जैसे दो भटके हुओ को आपस मे सहारा मिल गया। इनकी दशा तो उन भारतीय मुसलमानो के समान है जो रहते भारत मे हैं, जन्मे यहीं है पल यहीं रहे हैं, मरेंगे भी शायद भारत मे, लेकिन पक्ष लेते हैं, अच्छा मानते है

पाकिस्तान को। उसी प्रकार इनका ज़ीवन निर्वाह उन्हीं के बल पर हो रहा है जो देवादि की श्रद्धा को सम्यग्दर्शन मानते हैं। हिन्दुस्तानी मूर्ख लोगों की तरह गुरुओं के ऊपर श्रद्धा रखने वाले मुनि भक्त कितने मूर्ख हैं जो उपरोक्त साधु की सेवा आख बद करके करते हैं और ऐसे साधुओ भी उनसे सेवा कराने में शर्म नहीं आती जो इन्हीं की दृष्टि मे मिथ्यादृष्टि हैं।

विचारना यहाँ पर यह है कि जिनकी मान्यता मे ''एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं करता'' उन लोगो को जिनबिम्ब के दर्शन करने का क्या औचित्य है, लेकिन इन लोगों के द्वारा भी दर्शन, पूजन, स्वाध्याय, विधान, पचकल्याण अर्थात् जिनबिम्ब प्रतिष्ठा भी की जाती है। यहाँ तक की सूर्य मन्त्र देने के लिये स्वय निर्वस्त्र हो जाते हैं। उस समय विचारणीय हो जाता है कि ये साधु हैं या नहीं। हैं भी तो सच्चे हैं या ढोगी। किसी के द्वारा आक्षेप होने पर कहा जाता है- ''यह सब हम हेय बुद्धि से करते हैं। कभी-कभी किन्हीं-किन्हीं लोगो के सामने ऐसी पारिवारिक परिस्थितिया आती हैं कि साधुओ को आहार देने की कतई इच्छा नहीं होते हुए भी देना पडता है। ऐसे समय मे हेय बुद्धि से देने की सलाह मिली है। ऐसे लोगो के बारे मे ज्ञात होने पर साधुओ को उनमे आहार लेना चाहिए ? नही। लेकिन ऐसे लोगो से आहार लेने और उन्हें देने पर साधु अपने आप मे गौरव का अनुभव करते हैं। उनके द्वारा की जाने वाली प्रतिष्ठाओ मे शामिल होकर सूर्यमत्र देते हैं। इन्हे भी तथाकथित मुमुक्षुओ की श्रेणी मे गिना जाना चाहिए।

7. क्या शब्दार्थ महान ? नहीं, पण्डितों की दशा सांप छछूंदर समान।

हेय बुद्धि से किये जाने वाले पचकल्याण प्रतिष्ठा जैसे आयोजनो को करवाने के लिये तथाकथित मुमुक्षु पण्डित प्रतिष्ठाचार्यों को ही आमत्रित किया जाता है। इनकी सबसे पहली शर्त होती है कि आयोजन मे जो भी आय होगी वह हमारी सस्था की होगी। दूसरी शर्त, आप लोग इस आयोजन मे किसी साधु सत को तो नहीं बुला रहे है। यदि बुला रहे हैं और वे आ रहे हो तो हम नहीं आयेगे। आयोजक उन्हे अपनी समस्या बताते हैं कि इतना बडा आयोजन सभी के सहयोग बिना नहीं हो सकता और जिनके सक्रिय सहयोग के बिना होना सम्भव नहीं है उनका कहना है कि आप लोग अमुक आचार्य सघ को आमत्रित करने नहीं जायेगे तो हमारा सहयोग नहीं मिल सकता। हो सकता है, वे उसी तिथि मे अपने कार्यक्रम को फीका बनाने के लिये किसी विधान का आयोजन कर ले। यह कोई जरूरी नहीं है कि किसी आचार्य को आमत्रित करे और वे आ ही जाये। और फिर पहुँचे हुए आचार्य हैं उनके आने मे आपको आपत्ति क्या है ? सूर्य मत्र देने की समस्या भी हल हो जायेगी। उत्तर मिला- आपत्ति तो कुछ नहीं, लेकिन उन्हे नमस्कार करना पडेगा यही एक आपत्ति है। पडित जी ! जब हम यह आयोजन हेय बुद्धि से कर रहे, तब आप भी उन्हे हेय बुद्धि से नमस्कार नहीं कर सकते। इसी वर्ष मुनि भक्तो ने पर्युषण मे एक विद्वान को

बुलाया था। उन्होने हमारे गले उतारने लायक एक तर्क सगत बात कही थी। उन आचार्य और ग्रथ का नाम याद तो नहीं रहा उसका आधार लेकर कहा था- किसी को वर्तमान साधुओ के ऊपर श्रद्धा न हो, उन्हें कुन्द-कुन्द जैसे साधुओं का निक्षेप करके नमस्कार कर लेना चाहिए, तब से मैं तो वैसा ही कर लेता हूँ। आप लोगो के निर्देष अनुसार आहार भी दे देता हूँ। समय-समय पर आप लोग समाधान करते रहते हैं कि नमस्कार करना ही पडे तो शास्त्र हाथ मे लेकर उनके सामने झुक जाना चाहिए, वे समझेगे कि मुझ नमस्कार किया, लेकिन भाव से करना शास्त्रो को। अधिकाश जगह तो मुनि भक्तो ने, शास्त्र की गद्दी के पास एक पहुचे हुए आचार्य की फोटो लगा रखी है। नियम बनाया है कि गद्दी पर वही बैठ सकता है, जो बैठने से पहले उन्हें नमस्कार करे। अपने अधिकाश पण्डित उपरोक्त तरीका ही अपनाते हैं, नमस्कार करने का, क्योकि आप लोग ही कहते हैं- कुछ भी करना पडे, लेकिन अपनी बात श्रोताओ तक पहुचा ही देना चाहिए। अपने इन आयोजनो का एक ही तो लक्ष्य है कि लोगो के सामने अपनी बात कहना, क्योंकि इन क्रिया काण्डो मे अपन विश्वास रखते कहाँ है, लेकिन जो इन क्रिया काण्डो मे विश्वास रखते हैं उन्हे इन क्रिया काण्डो का प्रदर्शन किये बिना आकर्षित भी तो किया नहीं किया जा सकता। फिल्मी दुनियाँ के माने गये गीत एव सगीतकारो को बुलवाते हैं, लाखो रुपये खर्च करके। जैन-जैनेतर दोनो ही दौडे आते हैं उसी बीच हम अपनी बात रख देते हैं। प्रतिवर्ष जहाँ-कहीं भी हम शिक्षण शिविर का आयोजन करते हैं। श्रोताओ को वहाँ तक बुलवाने के लिए एक ओर या दोनो ओर की आने-जाने की टिकिट व्यवस्था, उनके रहने और खाने-पीने की व्यवस्था के खर्च के लिये धनवानो के हाथ जोडने पडते हैं, फिर भी लोग वहाँ पर्याप्त सख्या मे नहीं पहुचते। पहुचते भी हैं तो अपने पक्ष के लोग, लेकिन पचकल्याण के साथ साथ गजरथ चलवा दिया जाये तो दोनो पक्ष के लोगो का जमघट लग जाता है अतः आपको स्वीकृति देना ही चाहिए।

8. क्या शब्दार्थ महान ? नहीं, गिरगिट जैसा रंग बदलते हैं विद्वान।

पडित जी कहने लगे-भाई ! तुम्हारा कहना ठीक है, लेकिन आचार्य के आने पर हमे/हमारी सुनेगा कौन ? पडित जी ! आचार्य जी तो दिन मे ही बोल सकेगे और वह भी अधिक से अधिक एक घटे। शेष दिन-रात का समय तो हमें ही मिलेगा। भाई ! अभी तक के आयोजनो मे हम लोग बोलते आये हैं कि पचम काल मे न तीर्थकर हैं न मुनि/साधु। अब तुम्हारे आयोजनो मे पहुचकर वहाँ उनके सामने क्या कहेगे ? वहाँ इससे विरुद्ध कहा या हुआ तो अपने पक्ष के लोग भी अवसरवादी कहेगे। तब क्या पण्डित जी हमे उसी पक्ष के प्रतिष्ठाचार्य को लाना होगा। फिर हम अपनी बात खुलकर कैसे कह सकेगे। भाई ! खुलकर तो हम अपनी बात आचार्य के सामने भी नहीं कह सकते। साधुओ के पीठ पीछे

उनके विरुद्ध बोलना एक अलग बात है और उन्हीं के सामने उन्हीं के विरुद्ध बोलना एक अलग बात है। इतना ही नहीं अपने पक्ष के लोगो के बीच मे उनके विरुद्ध बोलना एक अलग बात है और विपक्ष या दोनो पक्ष के बीच मे विरुद्ध बोलना अलग बात है। हमारे छोटे-छोटे नये सीखा पण्डित हम लोगो का अनुकरण करने लगते है या थे। श्रोताओ को पहचाने बिना साधुओ के विरुद्ध बोलते हैं और पिटते हैं। पर्युषण मे दस दिन के लिये भेजे जाते हैं और बीच मे से ही भगा दिये जाते हैं। इसलिये तो हमे प्रतिबध लगाना पडा कि कोई भी पण्डित किसी भी साधु के विरुद्ध कुछ भी न बोले। णमोकार मत्र जपना पाप है/ गलत है ऐसा कहकर किसी के गले उतार देना भी एक कला है जो हर किसी के पास नहीं होती। पण्डित जी! यह तो अवसर वाद है। हाँ, अवसर वाद तो है।

पण्डित जी ! जिन आचार्यों को हम लोगो ने आमन्त्रित किया है, वे आचार-विचारो से काफी सुलझे हुए हैं। हमने सुना है- मुनियो की चर्या देखकर उच्च कोटि के विद्वानो ने यह धारणा बना ली थी कि पचम काल मे मुनि नहीं होते, लेकिन उपरोक्त आचार्य को जब से उन्होने देखा अपनी धारणा बदल दी। भरी सभा मे उन्होने कहा था- लोग हम पण्डितो को बदनाम करते हैं। कहते हैं- ये पण्डित मुनियो को नही मानते। मानते क्यो नहीं, हाँ तो ऐसे (आचार्य की ओर इशारा करके) मुनि जो पिच्छी, कमण्डल, शास्त्र के अलावा कुछ नहीं रखते। पण्डित जी कहने लगे- सुना तो हमने भी है, लेकिन ये पण्डित कहाँ कब, क्या कह जाये कुछ कहा नहीं जा सकता। हमारे ही पक्ष के लोगो ने जब से अपने गुरु की प्रतिमा स्थापित की है, तब से न जाने कितने लोग हम से कट गये। इनमे पण्डित भी शामिल हैं। लगता है जैसे अलग होने का बहाना मिल गया हो। आयोजक कहने लगे- जिन्हे श्रद्धा से नहीं, अपितु पैसे एव सम्मान देकर जोडा गया हो उनमे स्थिरता रह ही नहीं सकती। छोटा सा बहाना पर्याप्त है। तारण पथियो के कट जाने का मूर्ति ही तो कारण है। खेर आप तो हमे स्वीकृति दे। हो सकता हे आप लोगो की भी धारणा बदल जाये। धारणा बदलना ही न हो तो अलग बात है।

आप लोग कहते है- हमे चतुर्थ काल के साधु चाहिए। ऐसा चाहते भी हैं, ऐसा तो कह नहीं सकते, क्योकि वर्तमान साधुओ को नहीं मानने का यह एक बहाना हो सकता हे या है ही, ऐसा लोगो का मानना है। हम आप ही लोगो से कहने लगे- हमे आप जैसे वक्ताओ की जरूरत नही है और न आप जैसे प्रतिष्ठाचार्यो की। हमे तो चतुर्थ काल के वक्ता और प्रतिष्ठाचार्य चाहिए। मूर्तियो को मान्यता न दे। कहे कि हमे तो साक्षात् भगवान चाहिए, तब क्या यह आप लोगो और मूर्ति का अपमान नहीं हैं ? है। हमारे कहने और चाहने से वैसा हो सकता है ? नहीं। पण्डितो के आचरण को देखकर श्रोता कहते हैं। आक्षेप करते है, तब हमारे पक्ष के पण्डित लोग कहते हैं- हम लोग कैसे हैं, क्या करते हैं यह मत देखो, अपितु क्या कहते हैं वह सुनो। एसा तो साधु भी की कह सकते हैं कि हम

क्या कर रहे हैं, कैसा कर रहे हैं एवं कैसे हैं यह सब देखने की आवश्यकता नहीं है। आप लोगों का कर्तव्य हमारी सेवा करने का है। इस तर्क का हमारे पास जबाव नहीं है।

पडित जी कहने लगे- आपने कहा- वर्तमान मुनियों में पूर्व मुनियों का निक्षेप कर लेना चाहिए जैसे पत्थर मे भगवान का कर लेते हैं, लेकिन इन दोनों निक्षेपो में बहुत अन्तर है, क्योकि सदोष साधुओ में निर्दोष साधुओं की स्थापना कर लेना उचित समझ में नहीं आता। आयोजक कहने लगे- पण्डितजी ! प्राचीन या नवीन किसी मूर्ति को नमस्कार करते समय यह विचार किया कि निर्दोष पत्थर में निर्दोष मूर्तिकार के द्वारा निर्मित निर्दोष प्रतिष्ठाचार्यों द्वारा भगवान की स्थापना की है ? नहीं। पण्डितजी कहने लगे- प्रतिष्ठा पाठों में निर्दोष पत्थरो का विधान है, लेकिन सभी पत्थर सदोष होते हैं यह कोई जरूरी नहीं है। पण्डितजी ! पत्थर भी तो पचम काल के ही हैं ? हाँ, तब तो पत्थर के समान पंचम काल का प्रत्येक साधु सदोष ही होता हो ऐसा भी जरूरी नहीं है। प्रतिष्ठित मूर्तियो को सूर्य मत्र देने का अधिकार साधुओ को ही है और आपके अनुसार पचम काल मे मुनि नहीं होते, तब मूर्ति प्रतिष्ठित कैसे होगी ? कहने लगे- हम लोग स्वय नग्न हो जाते हैं, तब क्या आप उस समय के लिये अपने को साधु मान लेते हैं ? यदि मान लेते हैं तो यह मानना गलत हो गया कि पचम काल मे मुनि नहीं होते। यदि नहीं मानते तो मूर्ति प्रतिष्ठित नहीं मानी जायेगी। दूसरी बात, मूर्ति प्रतिष्ठा, मे कपडे बाधक हैं, तब "एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं करता।" यह मान्यता फेल हो जाती है। कहने का तात्पर्य यही है कि जो साधु ऐसे आयोजको के द्वारा आयोजित आयोजनो मे, मजबूरी मे बुलाये जाने पर भी शामिल होकर अपने आपको गौरव का अनुभव करते हैं। इन्हे भी तथार्कथित मुमुक्षुओ की श्रेणी मे ही गिना जाना चाहिए, परमार्थ दृष्टि से।

9 क्या शब्दार्थ महान ? नहीं, साधुओं की शिथलाचारी इन्हें है वरदान।

"एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य का कुछ नही करता" ऐसा मान कर भी मुनि मात्र को चोर सिद्ध करने के लिये एक ऐसे कथानक का सहारा लिया जाता है, जो उपरोक्त मान्यता के बिल्कुल विरुद्ध हे। उस कथानक मे यह सिद्ध किया गया हे कि आहार का प्रभाव मन के ऊपर कितने जल्दी पडता है कि साधुओ का मन भी आहार करते करते ही चोरी जैसे कृत्य से दूषित हो जाता हे। सुनार की चौर्य वृत्ति का प्रभाव अग्नि के ऊपर पडता है और अग्नि का प्रभाव भोजन पर पडा और भोजन का प्रभाव मुनि श्री के मन पडा और मन विकृत हो गया और जैसे ही भोजन का प्रभाव कम हुआ उसी समय अपने आपको धिक्कारने लगे और अगूठी वापिस कर दी। इस घटना की समीचीनता को बताए बिना मुनियो को चोर सिद्ध करने का जो भाव है, वह नग्नत्व के प्रति अनत द्वेष को सिद्ध करता है। पहले भी कह आये है कि इनकी दृष्टि मे देव, गुरु, शास्त्र के ऊपर श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन नहीं है, लेकिन द्वीपायन मुनि इनकी दृष्टि मे मिथ्या दृष्टि थे, क्योकि उन्हे

नेमिनाथ भगवान की वाणी पर विश्वास नहीं था कि बारह वर्ष बाद द्वारिका जलेगी इसलिए तो उन्होने उनकी वाणी को असत् सिद्ध करने के लिये प्रयास किया था। यहाँ उन्हे इनकी दृष्टि मे सम्यग्दृष्टि होने के लिये जिनवाणी (शास्त्र) पर श्रद्धान होना चाहिए था। वे मिथ्या दृष्टि थे या नहीं, लेकिन ये उन्हे वैसा मानकर मुनि मात्र को मिथ्या दृष्टि मानते हैं।

नग्नत्व के जन्मजात द्वेषी का उसके अनुयायियो पर ऐसा जबर्दस्त प्रभाव है कि पूछो ही मत। वर्तमान मुनियो की शिथलाचारी तो है ही पूर्व मुनियो की कमियाँ भी इनके लिये वरदान हैं इन्हे मनमाना कहने और स्वच्छदी होने मे और इनके लिये अभिशाप हैं उनकी अच्छाइयाँ, जैसे चोरों को चांदनी। जब निर्दोष साधुओ की प्रशसा होने लगे तो विषय बदल दिया जाता है या अनसुना कर दिया जाता है अथवा कान बहिरे हो जाते हैं अच्छाई न सुनने के नाम से और मुँह गूगा सा हो जाता है अच्छाई कहने के नाम से। अच्छाई चश्मा लगाने पर भी नहीं दिखती और बुराई देखने के लिये चश्मा की भी आवश्कता नही पडती। जिन ग्रथो मे स्वच्छद साधुओ को रास्ते पर लाने के लिये, उनकी स्वच्छद प्रवृत्ति की आलोचना की गई है उन ग्रथो को ये लोग बहुत महत्व देते हैं/प्रमाण मानते है, लेकिन जहाँ प्रशसा की गई है, वे इनकी दृष्टि मे महत्वहीन हैं। अष्टपाहुड एक ऐसा ही ग्रथ हे जिसमे द्रव्य एव भावलिगी कुछ मुनियो का उनके नामो का उल्लेख करके प्रशसा ओर आलोचना दोनो की है। ये अपने उपदेशो मे द्रव्यलिग का अर्थ एकान्त से मिथ्यादृष्टि एव भाव लिग का अर्थ सम्यग्दृष्टि किया करते है। वर्तमान साधुओ को ये द्रव्यलिगी के रूप मे देखते है। द्रव्यलिग का अर्थ यदि एकान्त से मिथ्या दृष्टि ही किया जाये तो बाहूबली स्वामी भी वैसे ही सिद्ध होंगे, क्योकि अष्टपाहुड मे उन्हे भी द्रव्यलिगी की श्रेणी मे गिना है, लेकिन ऐसा नहीं हे। वे तो आदिनाथ और भरत के समान सर्वार्थसिद्धि से तीन सुज्ञानो को लेकर पैदा हुए थे। छहढाला कार ने बहिरात्मा शब्द का प्रयोग मिथ्यादृष्टि के लिये किया है। कुन्द कुन्द स्वामी ने बहिरात्मा शब्द का प्रयोग उम समय तक के लिये किया हे जब तक साधु बाह्य आलबन छोड अपने को ही ध्यान का विषय नहीं बना लेता। उनकी दृष्टि मे बहिरात्मा का अर्थ एकान्त से मिथ्यादृष्टि नहीं है। उसी प्रकार द्रव्य लिग के विषय मे समझना चाहिए। धवला ग्रथ मे सिद्धो को भी बहिरात्मा कहा हे अष्ट कर्मो से बहिर हो जाने के कारण। शब्दो के अर्थ और प्रसग और व्याकरण को जानने वाला ही समीचीन रूप से निकाल/लगा सकता हे।

10. क्या शब्दार्थ महान ? नहीं, पुण्य-पाप की कथनी से मुमुक्षु अनजान।

धनजय कवि पूज्यपाद स्वामी के विषय मे लिखते हैं- इन जैसा वैयाकरण (व्याकरण का रचयिता) इस कलिकाल मे दूसरा कोई नहीं हो सकता। सर्वार्थसिद्धी टीका शब्द शास्त्र की मर्मज्ञता का ही परिणाम है। पुण्य-पाप की व्याकरण से सिद्धि करते हुए लिखते हैं- ''जो आत्मा को पवित्र करता है, वह पुण्य है या जिससे आत्मा पवित्र होती है वह पुण्य है। जो आत्मा की शुभ से रक्षा करता है वह पाप है। जिन्हे इन पुण्य-पाप के

शाब्दिक अर्थ का ज्ञान एवं श्रद्धान नहीं है अथवा जो जानकर भी अनजान हैं वे दोनों को एक ही डण्डे से हाका करते हैं अर्थात् दोनो कर्म हैं इस आधार पर दोनो को समान मानते हैं। पुण्य-पाप इन दोनो शब्दों से प्राय आबाल वृद्ध, जैन जैनेतर सभी परिचित हैं, लेकिन इनमे प्रत्येक मे भेद हैं ऐसा बहुत कम लोग जानते हैं। इन दोनो के मिले-जुले चार भेद हैं- 1 पुण्यानुबधी पुण्य, 2 पापानुबधी पुण्य, 3 पुण्यानुबधी पाप, 4 पापानुबधी पाप। एक दिन इन चारो पर सक्षिप्त व्याख्यान चल रहा था। एक तथा कथित मुमुक्षु प्रमुख श्रोता ने पूछा- "पुण्यानुबधी पुण्य" इस शब्द का शाब्दिक अर्थ क्या किया जाये ? सबसे पहली बात तो यह है कि उपरोक्त चारो का अर्थ न समझने के कारण पुण्य को एकान्त से पाप के समान अथवा पुण्य मात्र को हेय समझ बैठे हो। दूसरी बात अनन्तानुबधी कषाय का आप क्या अर्थ निकालते हैं ? कहने लगे आप ही स्पष्ट कर दीजिए। 'अनन्त' मिथ्यात्व को कहा है अनन्त ससार का कारण होने से। और अनन्त के साथ जिसका गठबध/सबध है उसे अनन्तानुबधी कहते हैं। उसी प्रकार पुण्यानुबधी पुण्य आदि के विषय मे समझ लेना चाहिए। कहने लगे- आप द्वारा लिखित समीक्षाओं मे आपने प्रसग वश इनका स्पष्टीकरण ता किया है, लेकिन हम आपके मुखारबिन्द से सुनाना चाहते हैं, क्योकि पढने मे और उसी लखक के मुख से सुनने मे, बहुत अतर होता है अत आप उदाहरण सहित समझाये तो अच्छा होगा। पहली बात तो यह बताईये कि अपने लिये सुनना/समझना चाहते हैं या दूसरो के लिये ? कहने लगे, मतलब ? यदि अपने लिये सुनना चाहते हैं तो पुण्यानुबधी पुण्य हाथ लगेगा अन्यथा पापानुबधी पुण्य।

एक व्यक्ति अधा था। घर मे अकेला था। पैसे वाला था, अत सेवा के लिये एक सवक रख लिया था। जीवन सुख से गुजर (बीत) रहा था कि अचानक सेवक के पापानुबधी पाप का उदय आ गया। साथ मे अधे का पुण्यानुबधी पाप का उदय। सेवक सोचने लगा- इतना सारा धन इस अधे के क्या काम का, यह तो मेरे पास होना चाहिए, लेकिन अधे को मारे बिना तो मिलने वाला नहीं। एक दिन कहने लगा- मालिक आप गाव बाहर जा रहे। मुझे भी आज बाहर जाना है इसलिए आप जल्दी आ जाना। अधे ने कहा- देर हो सकती हे अत भोजन बनाकर रख जाना और अपने हिस्से का खाकर चले जाना। नौकर को जेसे स्वर्ण अवसर मिल गया हो। साप मारकर ले आया और दाल मे डाल दिया। अपना काम करके चला गया। अधा आया, स्नान किया भजन किया और भोजन करने के लिये थाली मे परोस लिया। दाल चूल्हे मे रखी तेज आच मे खोल रही थी। उसने जैसे ही ढक्कन हटाया कि भाप उसकी आखो मे लगी आखे खुल गई, आखों मे दिखने लगा। दाल मे साप पढा था। उसे समझते देर नही लगी कि रहस्य क्या है। नौकर वापिस आया। अधे को जीवित देखकर अधमरा सा हो गया। पापानुबधी पाप का उदय था अत असत् पुरुषार्थ से भी सफलता नहीं मिली। अधे का पाप उपादेय था जिसके कारण जीवन

ही नहीं आंखे भी मिल गई। नौकर का पाप एकांत से हेय है जिसके उदय में धन ही नहीं नौकरी भी चली गई। मालिक ने उसे अहितकारी नहीं उपकारी समझा क्योंकि वह ऐसा नहीं करता तो ससार नहीं देख सकता था अत: उसने नौकर से कहा-भाई ! मुझे दिखने लगा इसलिये मैं अपना काम स्वय कर लूँगा। तू अपना वेतन ले और जहाँ चाहे जा सकता है। इस घटना से सिद्ध होता है कि पुण्य ही नहीं पाप भी उपादेय होता है, अन्यथा चन्दना के यहाँ महावीर नहीं आ सकते थे।

एक मुनि महाराज जंगल में शिला पर बैठे तप कर रहे थे। एक व्यक्ति बाजार से मक्खन खरीद कर घर लौट रहा था। साधु महाराज को देखते ही उसने वह मक्खन उनके सिर पर रख दिया। यही सोचकर कि उन्हे कुछ राहत मिलेगी ऐसी भीषण गरमी मे। उसके जाते ही वह मक्खन सारे शरीर मे फैल गया और चींटी लग गई। कुछ समय बाद एक व्यक्ति बाजार से गन्ना खरीद कर चूसता हुआ चला आ रहा था। पहले गाली दी, उपहास किया। छिलके चूस कर साधु के ऊपर फेंकने लगा। हुआ यह कि मिठास के कारण चीटियाँ काटना छोड छिलको मे लग गई। विचारे, उपकारी कौन था ? इन दोनो घटनाओ से सिद्ध होता है कि कभी-कभी किन्हीं किन्हीं जीवो को पाप भी उपादेय हो जाता है तब पुण्य एकान्त से हेय (त्याज्य) ही कैसे हो सकता है।

11. क्या शब्दार्थ महान ?नहीं, पुण्य हेय है फल में सुअर हैं व श्वान।

इन तथाकथित मुमुक्षुओ मे मुख्य रूप से पापानुबधी पुण्यात्मा एव पापानुबधी पापात्मा ही हुआ करते हैं। पहले प्रकार की आत्माओ में काफी अकड होती है। खासकर ये उनके सामने शेखी बताते हैं जो पुण्यानुबधी पापात्मा मुनि भक्त हुआ करते हैं। कहते हुए सुने जाते हैं कि देखो हम तो पुण्य को हेय कहते हैं, उसे ठुकराते है, विष्ठा कहते हैं, लेकिन वह हमारा पीछा नहीं छोडता। एक मुनि भक्त का व्यापार मे घाटा लग गया। ऐसी स्थिति मे कर्जदार हो जाना या आर्थिक समस्या आ जाना स्वाभाविक है। उसने अपने ही बुआ के लडक (भाई) से, जो पुण्य को हेय कहता था, सहयोग के लिये निवेदन किया। उसने कहा देख मैं तेरे से बारबार कहता हूँ कि तूँ हमारे ही पक्ष मे आजा अर्थात् तथाकथित मुमुक्षु बन जा। देख नहीं रहा मेरे पक्ष का चमत्कार। तूँ जिसके पीछे पडा रहता है वह तुझे ठुकराता हे। मुनि भक्त ने कहा-भईया ! तेरे पक्ष के अधिकाश लोग मुझे से भी बद्तर स्थिति मे जीवन जी रहे हैं और जिस पक्ष मे हूँ उस पक्ष के अधिकाश लोग, पुण्य को कदाचित् उपादेय मानते हुए तेरे से भी कई गुनी अच्छी जिदगी जी रहे हैं, फिर तेरे पक्ष मे आकर पुण्य मेरे पीछे ही पड जायेगा कैसे विश्वास करूँ। देख भी तो रहा हूँ कि जिन्हे तुम जैसे लोगो ने आर्थिक सहयोग देकर अपने पक्ष मे किया है वे भी इस समय अच्छी स्थिति मे नहीं हैं। वे कुछ डाटते हुए से कहने लगे- तूँ तो तर्क करता है समझने की कोशिश नहीं

करता। किसी दिन आना मैं तुझे एक शास्त्र पढकर सुनाऊगा। तुझे सब कुछ समझ मे आ जायेगा। वह कहने लगा। भईया यह तो बता- पहले पुण्य भाव को छोड़ना चाहिए या पुण्य की क्रियाओ को या पुण्य फल को ? अभी तूने और तेरे पक्ष के लोगो न तीनो को नहीं छोडा और न जिस अवस्था मे हैं उस अवस्था मे छोडे भी जा सकते हैं चाहते हुए भी। मैंने तो तेरे जैसे सैंकडो लोगो के मुख से सुना है- पुण्य छोडो, पुण्य छोडो, लेकिन पुण्य के फल को छोडो ऐसा किसी के मुख से नहीं सुना। अरे इसे छोडना तो दूर, उसके बटोरने मे न न्याय देखा जाता है और न अन्याय। न दिन दिखता है और न रात। पुण्य की तरह सर्वथा पुण्य के फल को छोडने की बात की जाये या छोडना चाहे तो एक पल जीना मुश्किल हो जाये, श्वास लेना कठिन हो जाये। आयु कर्म पुण्य का फल और श्वास लेना उसका कार्य। तेरे गुरु ने पुण्य के फल रूप मनुष्य पर्याय को सुरक्षित रखने के लिये कितना घिनौना कार्य किया जो किसी से अज्ञात नहीं है। अभी तूने भी तो कुछ ही वर्षों पहले छापा डालने वालो को पुण्य का फल करोडो की विभूति बचाने के लिये नगद एक लाख रुपये रिश्वत् जैसे कृत्य के रूप मे दिये। भईया ! जिसने पुण्य को वास्तव मे हेय समझ लिया हो वह पुण्य के फल इतना आसक्त नहीं हो सकता कि धर्म एव लोक दोनो के विरुद्ध कार्य करे। दूसरी बात जिसे पुण्य के फल मे अत्यासक्ति है उसने पुण्य को हेय समझा ही नहीं। हेय कहना तो रटन्त है। भईया ! तू और तेरे पक्ष के लोग मोक्ष कभी नहीं जा सकते। क्यो ? क्योकि जब ये एकान्त से पुण्य भाव, पुण्य क्रियाओ को हेय कहते हैं उन्हे पुन. मनुष्य पर्याय प्राप्त नहीं होगी, क्योकि मनुष्य पर्याय पुण्य का फल है धर्म का नही धर्म का फल तो उत्तम सुख है। दूसरी बात, आप लोग को मोक्ष की आवश्यकता ही कहाँ है जब आपके ही अनुसार आत्मा कर्मो से बधा ही नहीं। मोक्ष बध पूर्वक होने का नाम है।

12. क्या शब्दार्थ महान ? नहीं, छूटे न फल, चक्रवर्ती समान।

एक बात और बता-पुण्य छोडने एव छुडवाने का जो भाव है वह पुण्य भाव है या पाप भाव ? प्रवृत्ति मे तीसरा भाव तो नहीं हो सकता दो के अतिरिक्त। पाप भाव तो कह नहीं सकते, अत पुण्य भाव ही कहना होगा और पुण्य को एकान्त से हेय कहा जाय तो पुण्य को छोडो ऐसा कहने का अधिकार ही नहीं रह जाता। अत. समझना चाहिए कि साधु जब निवृत्ति मे पहुच जाते हैं तब वह पुण्य भाव स्वय छूट जाता है, लेकिन पुण्य बध और उसके फल का छुटकारा अर्हत् दशा मे भी नहीं मिल पाता। पुण्य को हेय कहने से पहले, पुण्य के फल को हेय समझकर ठुकराया जाये जिसमे आसक्ति पाप बध एव उसके फल भोग मे कारण है। पुण्य को ठुकराने से पुण्य का फल पीछे नहीं पड़ता, अपितु पुण्य के फल को ठुकराने से पुण्य पीछा नहीं छोडता और मोक्ष फल की प्राप्ति मे सहायक बन जाता है।

पहले तो वे खीजते हुए कहने लगे- तुझे सहयोग के रूप में पुण्य का फल मागते ही नहीं दिया इसलिये लंबी चौडी बातें करने लगा। कहाँ से सीख आया यह सब। दूसरी बात, मेरी स्थिति तो, चौदह रत्न नौ निधि के स्वामी भरत जैसी है "जल से भिन्न कमल की तरह"। लोगो को दिखता अवश्य है कि पुण्य के फल का भोग और उपभोग करता हूँ उसे उपादेय समझता हूँ, लेकिन श्रद्धा मे वे हेय ही हैं जो लोगो को दिखने मे नहीं आता। भईया! भरत चक्रवर्ती के विषय मे कहाँ से जाना ? जहाँ से भी जाना हो वहाँ यह भी लिखा है कि वे प्रतिदिन द्वार पर खडे होकर पात्रो की प्रतीक्षा किया करते थे। पात्र लाभ होने पर उन्हे आहार दिया करते थे इस विषय मे उनका अनुकरण क्यो नहीं करते ? वे तो उपादेय मानकर किया करते थे तू और तेरे पक्ष के लोग श्रद्धा मे हेय समझ कर लिया करे (व्यग्य)। कहने लगे हो तो वैसे साधु जैसो को वे आहार देते थे। उसने कहा-वैसे साधु होने लगे तब क्या यह पुण्य क्रिया श्रद्धा मे उपादेय हो जायेगी और श्रद्धा सहित आहार आदि देने की क्रिया होने लगेगी ? यदि कहा जाये होने लगेगी, तब तो आप लोगो का जो यह कहना है कि जो भी शुभाशुभ क्रियाये है वे श्रद्धा मे हेय ही होती हैं वह मिथ्या ठहरा। यदि कहा जाये कि वैसे मुनि, मिलने पर भी श्रद्धा मैं उपादेयता नहीं होगी, तब तुम्हारा यह कहना मायाचार/बहाना ही है बौद्धो के समान कि "हो तो वैसे मुनि"। बौद्ध तत्त्व को अवाच्य मानते हैं। आचार्य पूछते हैं- तत्त्व को कहने की सामर्थ्य किसी मे नहीं है इसलिये अवाच्य है या उसका ज्ञान नही इसलिए अवाच्य है तुम्हारे ही अनुसार दोनो कारणो से अवाच्य हो नहीं सकता। फिर बहाना क्यो करते हो स्पष्ट कहो कि तत्त्व कोई चीज नहीं है। उसी प्रकार भईया। तुम लोगो को भी स्पष्ट कहना चाहिए कि साधुओ को हम मानते ही नहीं। ऐसे नहीं वैसे होना चाहिए ये सब बहाने हैं।

चक्रवर्ती जैसे विभूति है तुम्हारे पास ? नहीं, क्योकि वैसा पुण्य तुम्हारे पास नही। इस बात को आप स्वीकार करते हैं तो यह भी स्वीकार करना चाहिए कि वैसे निर्दोष साधु वेसे ही पुण्य से प्राप्त होत है, अत साधुओं का ही नहीं अपने आप को दोषी ठहराना चाहिए कि वेसा पुण्य कमाकर नहीं लाये। यह लोगो की महती मूर्खता ही कहना चाहिए कि निर्दोष साधुओ की प्राप्ति पुण्य का फल हे वह तो चाहिए, लेकिन जिस पुण्य से/पुण्य क्रिया से वह प्राप्त होता है वह हेय हे। ऐसी स्थिति मे वे कभी वैसे साधु पा सकेगे ? नहीं। अपनी कमी साधुओ पर ही थोप रहे है कि वैसे साधु नहीं है। हम पूर्ण रूपेण निर्दोष हैं। (व्यग्य)।

चक्रवर्ती जैसा पुण्य का फल तुम्हारे पास नहीं है क्योकि उन जैसा पुण्य तुम्हारे पास नहीं है। इसके बाद भी तुम इस घटिया पुण्य के फल को हेय या उपादेय कैसा भी मानकर उपयोग करते हो। उसी प्रकार चक्रवर्ती के पुण्य से उनके समय मे वेसे साधु थे वैसे साधु

तुम्हारे समय में नहीं हैं, क्योंकि वैसा पुण्य तुम्हारे पास नहीं है, फिर तुम्हारे घटिया पुण्य से प्राप्त वर्तमान साधुओ की हेय या उपादेय मानकर सेवा करने में आना-कानी क्यों करते हो। इनसे कतराना नहीं छोड सकते, तब घटिया पुण्य से प्राप्त भोग्य एव उपभोग्य फलों से भी कतराना चाहिए कि हम इन घटिया चीजों का उपयोग नहीं करते। किन्तु नहीं कतराते। देख तो रहे है तुम्हारे लडको की दशा व्यसनो मे लिप्त हैं, लेकिन इसके बाद भी तूँ उनसे नहीं कतराता, अपितु उनके दुर्गुणो को प्रगट होने की स्थिति मे उपगूहन करता है, स्थितिकरण करता है, क्योकि तूँ उन्हे अपने पुण्य-पाप का ही फल समझ रहा है, लेकिन साधुओ से कतराता तो है ही, उनकी बाल की खाल भी खींचता है, पत्रिकाओ के माध्यम से, क्योकि तूँ समझ रहा है कि मेरे पुण्य-पाप से उनका कोई सबध नहीं।

13. क्या शब्दार्थ महान ? "चूहे की दौड़ बढ़ेरी लो" कहावत के समान।

क्यो भईया ! भरत चक्रवर्ती के समय मे उनके ही अनुज बाहूबली भी हुए हैं। उनको आदर्श बनाकर उन्हीं का अनुकरण क्यो नहीं करते तुम और तुम्हारे साथी। जो आदिनाथ से पच्चीस (25) धनुष बडे थ। षटखण्ड विजेता भरत को जीत कर राज्य के अधिकारी हा गये थे ओर उसे भी ठुकराकर अर्थात् पुण्य के फल को ठुकराकर मोक्ष जो पुरुषार्थ का फल हे उसे पाने के लिये एक वर्ष तक एक स्थान पर अडिग होकर खडे रहे और वह भी कवल ज्ञान की प्राप्ति प्रतिज्ञा लकर। केवल ज्ञान प्राप्त कर आदिनाथ से आदि मे पुरुषार्थ का फल मोक्ष प्राप्त कर लिया ? कहने लगे- बाहूबली का अनुकरण क्यो करे। हम तो उन्हीं का अनुकरण करेगे जिन्हे अन्तर्मुहुर्त मे केवल ज्ञान प्राप्त हो गया। जिन्हे न अनुव्रत की आवश्यकता पडी न महाव्रत की। कपडे उतारते ही काम हा गया अर्थात् व्रत के भाव ही नही हुए। उसने कहा भईया ! तेरे जैसे विचारो के लोगो का हजारो वर्ष पहले भी सद्भाव रहा अन्यथा ब्रह्म देव सूरि को इन विचारो का खण्डन क्यो करना पडता कि भरत जी का केवल ज्ञान होने मे पूव व्रत लेने क भाव हुए थे, जो अज्ञानियो की दृष्टि मे नहीं आये। दूसरी बात, आप लोग ऐसा समझ रहे हो कि भरत जैसी योग्यता (पुण्य) हमारे पास भी हे इसलिए उन्ही का अनुकरण कर रहे। यह ता स्पष्ट बहाना हे। पुण्य का फल न छूटे इसलिए।

सभी अपने-अपने बारे मे इस समय यह भी तो नहीं कह सकते हैं कि हमारा कर्म भार भरत जैसा हलका हा गया हे। हो सकता हे-आदिनाथ एव बाहूबली से भी कई गुना भार आत्मा पर चढा हो। कहने लगे- यह सब अपनी योग्यता से तब फिर भरत जी का अनुकरण क्यो और फिर यह योग्यता है क्या चीज पूर्व कर्म, भाग्य, देव उसके इन पर्याय वाची शब्दो के अतिरिक्त। ऐसा दार्शनिक आचार्य अकलक देव का कहना है। समतभद्र

आचार्य ने उनका खण्डन किया है जो मात्र भाग्य से अथवा अकेले पुरुषार्थ से ही कार्य सिद्ध होना मानते हैं क्योकि दोनो की सापेक्षता के बिना किसी भी कार्य की सिद्धि नहीं हो सकती। तुम लोग जिसे गुरु मानते है हो उसने तो दोनो को ही झुठलाने का निष्फल प्रयास किया। यहाँ पुण्य को हेय कहकर भाग्य की उपेक्षा कर दी और दूसरी ओर चारित्र पालने से कुछ नहीं होता है, कहकर पुरुषार्थ की उपेक्षा कर दी। अब इसके अतिरिक्त योग्यता क्या चीज है इनकी दृष्टि मे सिवाय कल्पना के। यह तो साख्य मान्यता की तरह एक कूटस्थ नित्य वस्तु सिद्ध होती है। जिसमे लौकिक एव अलौकिक किसी भी कार्य की सिद्धि नही हो सकती।

स्वामी जी कहते है - पुरुषार्थ से भाग्य का निर्माण होता है और पुरुषार्थ की सफलता एव असफलता भाग्य पर निर्भर करती है। हमे चाहते हुए भी मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो रही है इसका मतलब है कि हमने पूर्व मे मोक्ष सबधी पुरुषार्थ किया ही नहीं इसलिये वैसा भाग्य साथ मे लेकर नही आय जिससे मोक्ष प्राप्ति की योग्यता हो सके/किया जा सके। आदिनाथ भगवान ने पुरुषार्थ मे कमी की थी इसलिये तो उन्हे भरत जी एव बाहूबली से भी अधिक पुरुषार्थ करने की आवश्यकता पडी और बाहूबली को भरत जी से अधिक पुरुषार्थ किया, लेकिन भरत जी को न के बराबर पुरुषार्थ करने की आवश्यकता हुई, क्योकि उन्होने पूर्व जीवन मे बहुत पुरुषार्थ किया था। लोकिक कार्यो की सफलता एव असफलता मे भी पुरुषार्थ की विविधता देखी जाती है। विचार करो, उपरोक्त तीनो महापुरुषो मे अधिक भाग्यवान कौन था ? सर्वथा किसी को एक दूसरे से कमजोर नहीं कहा जा सकता। बाहूबली इसलिये दोनों से भाग्यवान है कि दोनो से पहले मोक्ष प्राप्त किया। भरत जी इसलिये श्रेष्ठ हैं दोनो से कि दोनो की अपेक्षा न के बराबर पुरुषार्थ करना पडा और आदिनाथ इसलिये श्रेष्ठ थे दानो से कि दोनो की अपेक्षा जनकल्याण इन्ही से हुआ तीर्थंकर जैसी पुण्य प्रकृति के बल पर। भाग्य ओर पुरुषार्थ को छोडकर जिस योग्यता की कल्पना कर ली गई है उसमे इस प्रकार की विविधता बन नहीं सकती। बुदेलखण्ड मे एक कहावत है "चूहे की दौड बडेरी लों" अर्थात् चूहे का कोई आपत्ति/खतरा समझ मे आता है तो ज्यादा से ज्यादा छप्पर तक ही शरण लेता हे/ले सकता ह। उसी प्रकार तथाकथित मुमुक्षुओ की मान्यता पर जब जबर्दस्त आक्षेप होते है तब वे योग्यता के ही हाथ जोडते है कि अन्यथा शरण नास्ति योग्यता शरण मम।

14. क्या शब्दार्थ महान ? नहीं, पुण्यात्मा अपर नाम विष्ठात्मा की पहचान।

जिस व्यक्ति की यहाँ समीक्षा की जा रही है वह पुण्यात्मा था जो उससे परिचित है सभी जानते हैं, लेकिन कृत्यो को देखते हुए कहा जाये कि वह पापानुबधी पुण्यात्मा था

ऐसा बहुत कम लोग जानते हैं। उस व्यक्ति ने पूछा-क्यों भईया। तेरा गुरु पुण्यात्मा था ? वह बडे गर्व से कहने लगा - हाँ। उसने पुण्य को विष्ठा भी कहा है ऐसा सुना है क्या यह सत्य है ? कहने लगा - हाँ कहा है। तब तो उसे पुण्यात्मा की जगह विष्ठात्मा कहा जा सकता है। वह सुनकर लाल पीला होने लगा। उसने कहा-भाईया। क्रोधित होने की बात क्या है। जब तुम्हारी ही दृष्टि से पुण्य विष्ठा का पर्यायवाची है, तब तेरे गुरु को ही नहीं जिस किसी भी पुण्यात्मा को विष्ठात्मा कहा जा सकता है। भाई-भाई में झगडा हो गया। छोटा भाई बडे भाई को बुरी-बुरी गाली दे रहा था। माँ समझा रही थी भईया को ऐसी गाली मत दे नहीं तो पाप लगेगा। वह गुस्से में तो था ही पाप को ही गाली देने लगा और तेरा गुरु पुण्य को गाली दे गया। पता नहीं उसका किससे झगडा हो गया था किसी के समझाने पर पुण्य को ही गाली दे गया। वह जितना पुण्य से भयभीत था पापो से नहीं इसलिये तो पुण्य छोडने पर ही जोर दे गया। पाप तो अनादि काल से छोडते आये हैं अब पुण्य छोडना है। उसकी और उसके अनुयायियो की दशा भारत में रहने वाले कृतघ्नी मुसलमानो जैसी है जो भारत मे जन्मे, यहीं पनपे, यहीं रह रहे हैं भारत के बल पर ही जी रहे है और शायद मरेगे भी यही, लेकिन भारत के पक्ष मे नहीं है। जिसका देश की उन्नति मे कोई सबध नही है ऐसे क्रिकेट जेसे खेल मे भारत के हारने पर खुशी मनाते हैं जीतने पर दु ख एव पाकिस्तान के हारने पर दु ख और जीतने पर खुशी मनाते हैं। दोनो देशो के बीच युद्ध छिडने पर इनकी मानसिकता क्या होगी। ये नमकहरामी करके भी निर्भयता से भारत मे रह रहे, इसे सैद्धातिक दृष्टि से पापानुबधी पुण्य का तीव्र उदय कहा जाता है। निर्भयता का दूसरा कारण - दोनो देशो के मुसलमानो के अतिरिक्त अन्य मुस्लिम राष्ट्रो का इन्हे बल प्राप्त है। शासक इन्हे भयभीत होकर दण्य नहीं देते इसका भी एक वही कारण है। उसी प्रकार ये तथाकथित मुमुक्ष जिसके बल पर पेदा हुए है पनपे हैं, उसी के बल पर सुख से जी रहे है (मनुष्यायु, गति, त्रसपर्याय पचेन्द्रिय जाति, उच्चकुल आदि पुण्य प्रकृतियाँ हैं) और ये उसी पुण्य को एकान्त से हेय (त्याज्य) कहकर नमकहरामी का परिचय दे रहे हैं। भोगी विलासी धनवान व्यक्तियो का इन्हे बल प्राप्त है, अल्पसख्यक होने पर भी निर्भयता का कारण यही है।

शास्त्रो का आधार लेकर अभी तक लोग कहते आये हैं, कह रहे हैं, कहते रहेगे कि सोलह कारण भावना से पुण्य रूप तीर्थकर प्रकृति के बल पर तीर्थकर बनते है, लेकिन तेरा गुरु मात्र योग्यता के बल पर तीर्थकर बनकर बता देगा। इसलिये तो उसने इस पुण्य को ऐसा लताडा कि विष्ठा तक कह डाला।

कुन्द-कुन्द स्वामी कह गये -'पुण्य फला अरहता' अर्थात पुण्य के फल से अर्हंत अवस्था प्राप्त होती है, लेकिन तेरा गुरु पाप के फल रूप अर्हंत बनकर बतायेगा, क्योंकि उसके अनुयायी अर्हंत अवस्था पाप का फल कहते हैं। उसे उनकी बात भी तो रखनी

होगी। किसी ने कहा, आखिर क्यो बनना चाहते थे ये तीर्थंकर ? क्या इसके बिना मोक्ष नहीं होता ? सामने वाले ने व्यग्य किया - उसके बिना अर्हंत अवस्था मे मजा ही क्या है। एक तथाकथित मुमुक्ष महिला एक मुनि भक्त से कहने लगी - हम भी आहार देना चाहते है, लेकिन गधोदक नहीं लेगे। उसने कहा - जब तुम्हारा गुरु किसी भव मे तीर्थंकर बने, तब उसे बिना गधोदक लिये आहार दे देना। दूसरे ने व्यग्य किया - वह तो योग्यता के बल पर तीर्थंकर बनेगा ऐसी स्थिति मे उसे आहार की आवश्यकता ही नहीं पडेगी। यदि पडी भी तो उसे आहार मिलने वाला नहीं, क्योकि उसने त्याग की भावना तो भाई नहीं, अपितु मुनियो को आहार देने पर प्रतिबध लगाया है।

15. क्या शब्दार्थ महान ? नहीं, निन्दा सुनते क्रोध उमड़ता, पुण्य-पाप समान।

तथाकथित मुमुक्ष कहने लगे - कुन्द कुन्द आचार्य ने समयसार मे - 'पुण्य को सोने एव पाप को लोहे की बेढी' कहा है, ऐसा कहकर दोनो को ही समान रूप से ससार का कारण कहा है। ऐसा क्यो, यदि पुण्य उपादेय है तो। उसने कहा - भईया ! जिनागम कुन्दकुन्दाचार्य तक ही सीमित नहीं है। पूज्यपाद स्वामी ने 'पुनाति आत्मान पूयते अनेन इति वा पुण्य' ऐसा सर्वार्थसिद्धि मे कहा है। इसमे किसी एक ही की बात तो मानी नहीं जा सकती, क्योकि हमारे लिये दोनो ही प्रमाण है अत दोनो मे सामञ्जस्य बनाना होगा। एक मे अध्यात्म और दूसरे मे आगम दृष्टि से कथन की अपेक्षा। अध्यात्म दृष्टि मे निमित्त कार्य की सिद्धि मे गौण होता है। जबकि आगम दृष्टि मे निमित्त को भी मुख्यता देकर कथन किया जाता है अर्थात् बिना पुण्य के मोक्ष हो ही नहीं सकता अत आगम दृष्टि से यह मुख्य है/ उपादेय है, लेकिन उसके सद्‌भाव मे मोक्ष हो ही जाये यह कोई आवश्यक नहीं है इसलिये गौण है। उदाहरण के लिये पहले सहनन के बिना मोक्ष नहीं होता। होने पर हो ही जाये यह कोई आवश्यक नहीं है, लेकिन उपादान के विषय मे ऐसा नहीं है। उसके होने पर तो होगा ही, मोक्ष। वरसाये दो प्रकार की होती हैं - एक रिमझिम और दूसरी जोर से। पहली से कीचड पैदा होता है। दूसरी से साफ हो जाता है। पापानुबधी पुण्य, पुण्यानुबधी पाप एव पापानुबधी पाप कर्मरूप कीचड के होने/बधने मे कारण है, पैसा पैसे को कमाता है इस युक्ति के.अनुसार कर्म कर्म को कमाता/बाधता है। लेकिन पुण्यानुबधी पुण्य कर्म के नाश मे कारण होता है, "लोहा लोहे को काट देता है" इस सुयुक्ति के अनुसार कर्म कर्म को काट देता है। यद्यपि कर्म होने की अपेक्षा दोनो मे समानता है, लेकिन कार्य की अपेक्षा दोनो मे बहुत अतर है। एक का कार्य दु ख रूप है और दूसरे का कार्य सुख रूप है। जैन सिद्धान्त अपेक्षा वादी है।

पहले भी कहा जा चुका है कि ये पाप से नहीं पुण्य से भयभीत है। यही कारण है कि इन्हे किसी से कुछ भी पापमय वचन बोलने मे थोडा भी भय नहीं है। एक मुमुक्ष महिला ने अपनी छोटी बहन से पूछा - क्यो तुम मुनियों को आहार देती हो ? उसने कहा - हाँ, देते हैं। कहने लगी - तुम सातवे नरक जाओगी। उसने कहा-तुम तो नहीं देती अतः अपनी भी बतादो तुम कौन से स्वर्ग जाओगी ? वह चुप रह गई। ऐसे लोगो के विषय मे गरम दल के लोगों का मानना है कि इन्हे बिना ठोके ये अपनी नीचता पेट मे दवाये नहीं रख सकते। इनकी ही दृष्टि मे पाप की तरह सर्वथा पुण्य भी हेय होता तो किसी से कोई क्रिया छुडवाने के लिये नरक जाने का भय दिखाने की तरह स्वर्ग जाने का भय क्यो नहीं दिखाया जाता कि ऐसा करते हो तो स्वर्ग जाओगे। प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि जब दान देने वाला नरक जायेगा तब लेने वालो की भी यही गति होगी ऐसी स्थिति मे इन तथाकथित मुमुक्षुओ का गुरु इन्हीं की दृष्टि से नरक गया होगा, क्योकि जीवन भर दान के बल पर ही तो पला है, क्योकि वह श्रमण था न श्रावक। देने वालो को भी साथ ले गया होगा या आगे-पीछे चले जायेगे। अत मे मुनि भक्त कहने लगा, भईया ! पुण्य के फल को *श्रद्धा मे हेय समझकर उसका सेवन कर लेते है, तब पुण्य की प्रत्येक क्रिया को अपनी-* अपनी अवस्था को देखते हुए श्रद्धा मे हेय या उपादेय कैसा समझकर कर लेना चाहिये ताकि सच्चे देव, शास्त्र, गुरु के उपासको मे अलगाव की स्थिति पैदा न हो। अन्यथा तो इस विवाद के रहते गाव-गाव घर-घर मे सघर्ष चल रहा है।

16. क्या शब्दार्थ महान ? नहीं, पत्थर लगने पर, कराहते भगवान ।

पाप से भय न होने के कारण पूर्वापर विरुद्ध बोलने का भी भय नहीं है। जहाँ एक ओर अपने आपको भगवान आत्मा का आलाप चलता है वहीं भक्त नहीं भगवान बनेंगे का नारा लगाया जाता है। अल्पज्ञ भी कह देगा कि जब आत्मा भगवान है ही तब भगवान बनने का सवाल नहीं उठता। एक ऐसा ही सिरफिरा कह रहा था - 'आत्मा सो परमात्मा'। हमने कहा - आपको व्याकरण का अच्छा ज्ञान है। कहने लगा - मैं व्याकरण याकरण कुछ नहीं जानता। हमने कहा - जानते होते तो 'आत्मा सो परमात्मा' कह कर अपनी मूर्खता का प्रदर्शन क्यो करते। हमने पूछा - आप अपने आप को परमात्मा मानते हैं ? कहने लगे - हाँ। तब तो इस मदिर की वेदी मे जगह खाली है विराजमान हो जाइये। कहने लगा - द्रव्य दृष्टि से आत्मा परमात्मा है। हमने कहा-द्रव्य दृष्टि से विराजमान हो जाइये। वह बगले झाँकने लगा। अभी आता हूँ, कहकर नौ-दो-ग्यारह हो गया।

एक पण्डित ने अपने साथी पण्डित की एक आचार्य जी से शिकायत की कि ये मंदिर नहीं जाते। वे कहने लगे, हम खुदइ (स्वय) भगवान हैं हम काए खे जायें मदिर। ऐसे ही लोगो की कोई किसी से शिकायत करे कि ये अपनी लुगाई के पास नहीं जाते, तब

क्या ऐसा कहते कि हम स्वय लुगाई हैं फिर क्यों जाये उसके पास ? नहीं। एक डॉ से ज्ञात हुआ एक मुमुक्ष महिला को पैर में चोट लग गई। मुझे उपचार के लिये बुलवाया गया। पहुँने पर देखा तो वह कराह रही थी। कह रही थी - हे भगवान आत्मा, हे भगवान आत्मा बहुत कष्ट है मुझे। डॉ ने कहा - णमोकार मत्र जपो कुछ शान्ति मिलेगी। कहने लगी - पर को स्मरण करने से थोडे ही शान्ति मिलती है। पर (भगवान) को स्मरण करना मौत को स्मरण करना है। डॉ ने पूछा - क्या लग गया ? कहने लगी पत्थर। यह कष्ट पत्थर लगने से हो रहा है या अपनी योग्यता से ? कहने लगी - हो तो अपनी योग्यता से रहा है, लेकिन कहने मे आता है कि पत्थर लगने से हो रहा है। थाने मे रिपोर्ट नहीं की योग्यता की या पत्थर की कि इनके कारण हमे कष्ट हो रहा है। ऐसा कैसे कह रहे हैं आप ? इसलिये कि णमोकार जैसे महामन्त्र का अनादर करने वालो को लोग पीटते हैं वे थाने पहुँच जाते हैं, उनको दण्डित करने के लिये। उस समय अपनी योग्यता को ही अपराधी क्या नहीं ठहराते और मारने वालो के साथ पत्थर जैसी माध्यस्थता क्यो नहीं बरतते। दूसरी बात, पत्थर आत्मा को लगा है या शरीर को एव तकलीप आत्मा को हो रही है या शरीर को ? यदि आत्मा को लगा और उसी को कष्ट हो रहा है तो भगवान आत्मा के स्मरण से शरीर को शान्ति कैसे मिलेगी, क्योकि वह शरीर से और शरीर उससे पर है और पत्थर आत्मा को लगा है और उसे ही कष्ट हो रहा है तो कष्ट का अनुभव उसे हो कैसे सकता हे ? यदि होता तो वह भगवान कैसा जो कष्ट का अनुभव कर दीनता प्रकट करे और हम जैसे डॉ को बुलाना पडे। यदि कहो कि पत्थर शरीर को लगा, तब कराह भी वही रहा होगा ऐसा स्वीकार किया जाये तो तुम्हारी भगवान आत्मा यदि शरीर को छोडकर चली जाती तब यह शरीर उसी प्रकार कराहता क्या ? नहीं। तब तो स्वीकारना होगा कि तुम्हारी भगवान आत्मा ही कराह रही हे। कहने लगी - द्रव्य दृष्टि से तो आत्मा भगवान आत्मा ही है अत उस दृष्टि से कराह ही नही सकती। पर्याय दृष्टि से ही कराह रही होगी। डॉक्टर कहने लगे - तब तो आप अपनी दृष्टि मे मिथ्यादृष्टि है इस समय, क्योकि आप लोगो की ही मान्यता है कि द्रव्य दृष्टि सो सम्यग्दृष्टि पर्याय दृष्टि सो मिथ्यादृष्टि । यह भी कर्म सिद्धात है कि भगवान के ऊपर किसी भी प्रकार का उपसर्ग नहीं होता अर्हत अवस्था मे शरीर हाते हुए। फिर भगवान आत्मा पर क्यो हो रहा है, जब दोनो मे कोई अन्तर नहीं हे। इसके बाद भी तुम्हारी शरीरधारी भगवान आत्मा पर उपसर्ग हो रहा है इसमे अपराध किस की योग्यता का है शरीर की कि आत्मा की ? कहना चाहिये दोनो की। ऐसी स्थिति मे तुम्हारे विवेक की बलहारी देखो कि योग्यता की अयोग्यता मे आत्मा को भगवान कहकर उसे स्मरण करती हो, विशेष रूप से दु ख आने पर और जो द्रव्य-पर्याय दोनो ही दृष्टि से शुद्ध है उनकी उपेक्षा करती हो उन्हे 'पर' कहकर। कहने लगी -णमोकार मत्र मे साधु, उपाध्याय, आचार्य को भी नमस्कार किया गया है इसलिये उसका स्मरण नहीं करते, तब क्या तुम्हे इन तीनो से शत्रुता है। कुन्द कुन्द, अमृतचन्द्र आचार्य ही थे जिनके आधार पर अपने आप को भगवान मान बैठे, लेकिन उन्हीं के स्मरण मे तुम्हे मोत के दर्शन होते हैं। तुम्हारे गुरु

की सहयोगनी जिसे हिन्दुओं की दृष्टि से गुर्वाणी कहना चाहिये को पिता के मरणासन्न होने की खबर मिली। उसने खबर भेजी की हमारा जीवन साथी परम पुरुष है उसका स्मरण करो। क्या उसके लिये वह पर नहीं था ? यह तो स्व-पर वञ्चक गुरु मूढता के अतिरिक्त कुछ नहीं है

17. क्या 'स्वाध्याय' शब्द महान ? नहीं, आजीविका का साधन, बनते हैं धनवान।

'स्वाध्याय' शब्द सुनते ही बहुत कम जैनी होगे जिनकी दृष्टि उसके रूढ अर्थ की ओर न जाती हो। अगूठा छाप भी समझ लेता है - पोथी को हाथ मे या चोकी पर रखकर पढने को खाध्याय कहते है, लेकिन 'स्वाध्याय' शब्द के शाब्दिक अर्थ को न के बराबर लोग समझते हैं। समझने वालो की दृष्टि भी शाब्दिक अर्थ की अपेक्षा रूढ अर्थ मे सहज ही चली जाती है। 'स्व' अपने 'अधि' निकट 'अय्' जाना। अर्थात अपने निकट जाना यह स्वाध्याय का शाब्दिक अर्थ है। 'स्व' का अर्थ धन भी होता है अत धन के निकट जाना यह भी स्वाध्याय का शाब्दिक अर्थ है। दुकान के प्रचार-प्रसार के लिए व्यक्तिगत रूप से जगह-जगह के मदिरो मे भेट वितरित की जाने वाली चौकियो पर तो प्राय लिख ही रहता है - 'स्वाध्याय परम तप '। तथाकथित मुमुक्षुओ को सम्यग्दर्शन की सिद्धि के लिये अमोघ मत्र है अर्थात निष्फल नहीं जाता। स्वाध्याय के करने एव कराने को आजीविका का साधन बनाये हुए हे उन्हे स्वाध्याय का रूढ अर्थ परम तप नहीं हो सकता। इस विषय का विशेष स्पष्टीकरण घटना क माध्यम से आगे करेगे।

कुन्द कुन्दाचार्य ने साधुओ के षड् आवश्यको मे 'सामायिक' शब्द के स्थान पर 'समता' का प्रयोग किया है और यह समता पूर्णता को प्राप्त उस समय तक नहीं हो सकती जब तक मन, वचन एव काय की क्रिया से कोई निवृत नहीं हो जाता। दोनो का शाब्दिक दृष्टि से अर्थ समान होते हुए भी इस समय प्राय समता की जगह सामायिक शब्द का ही प्रयोग किया जाता हे। 'सामायिक' शब्द भी रूढ हो चुका है खडगासन, पद्मासन अर्धपद्मासन से सामायिक करने के लिये। जैसे स्वाध्याय का उपरोक्त अर्थ मे। इसी की तरह सामायिक शब्द कानो मे पडते ही या उपयोग मे आते ही राग-द्वेष से रहित समता मे लीन होने की अपेक्षा दृष्टि रूढ अर्थ की ओर सहज ही चली जाती है। स्वाध्याय करने वाले को शास्त्र सामने रखकर पढने से कुछ उपलब्धि समझ मे आती है कि कुछ ज्ञान प्राप्त हुआ लेकिन पद्मासन आदि से बैठने पर वैसी कुछ उपलब्धि समझ मे नहीं आती अत स्वाध्याय के लोलुपी तथा कथित मुमुक्षुओ को सामायिक के रूढ अर्थ से ही नहीं, सामायिक इस शब्द से ही चिढ हैं। अत वे उसे करने को व्यर्थ तो बताते ही हैं साथ ही सामायिक से पूर्व की जाने वाली चतुर्दिग्वदना को पहलवानो की कसरत कहते हैं। जबकि

स्वाध्याय एव सामायिक दोनो क्रियाये परपरा से समता की साधक हैं। एक सिद्धाताचार्य शब्दज्ञानी पडित आहार के उपरात एक आचार्य जी से चर्चा कर रहे थे। समय होते ही उन्होंने कहा - अब हम सामायिक करेगे। पण्डित महोदय कहते हैं - भाव सामायिक छोडकर अब ये द्रव्य सामायिक करेगे, ऐसा व्यग्य किया। अर्थात् तत्त्वचर्चा (स्वाध्याय) करना इनकी दृष्टि मे भाव सामायिक है और मन, वचन, काय से समता मे लीन होना द्रव्य सामायिक है। ऐसे ही होशियार गधा पंडितो के कारण इन तथाकथित मुमुक्षुओ को कुछ भी बोल देने मे बल मिला है। उपरोक्त पडित का नाम लिये बिना उसकी क्षुद्रता का उल्लेख उन आचार्य ने उस समय किया जब तथाकथित मुमुक्षुओ से प्रभावित, सामायिक को जडकी क्रिया कहकर, करने वालो को व्यर्थ मे समय बर्बाद करना कहने वाले एक ऐलक ने मुनि भक्तो की शिकायत की कि ये लोग निरतर स्वाध्याय करने वालो से कहते हैं कि आखे फूट जायेगी किसी दिन इन स्वाध्यायियो की। सामायिक शब्द के रूढ अर्थ को दृष्टि मे रखकर सामायिक करने वालो का मजाक करने वालो को उपरोक्त आक्षेप सुनना पडे तो इसमे आश्चर्य क्या है। स्वाध्याय एव सामायिक शब्द के दोनो अर्थों को जानने एव उपादेय मानने वाले स्वाध्याय की कमी उपेक्षा नहीं कर सकते जैसे स्वाध्याय मूढी सामायिक की करते हैं।

18. क्या मतार्थ महान ? नहीं, "लकीर के फकीरों को" व्यर्थ शंका समाधान।

जिस समय हम विद्वानों के माध्यम से न्याय शास्त्रो का अध्ययन करते थे, तब हमारा पीठ पीछे उपहास होता ही था, सामने आकर भी कहा करते थे- इस समय इन्हे पढने की आवश्यकता क्या हैं, जब शत्रार्थ नहीं होते। मोक्ष मार्ग मे इनकी उपयोगिता भी तो नहीं हैं? ऐसे वे ही लोग होते थे जिन्हे रुचि नहीं होती न्याय, व्याकरण जैसे शास्त्रो की को पढने की या जटिल/ कठिन होने के कारण जो इन्हे पढने मे असमर्थ हैं। हमारे स्वय के अनुभव की बात है कि न्याय एव व्याकरण जैसे ग्रथो का अध्ययन कर लेने से बुद्धि इतनी तीव्र विलक्षण एव तार्किक हो जाती है कि चारो अनुयोगो का विषय पढना सुलभ/सहज और प्राय स्वाधीन हो जाता हैं। एक विद्वान पूछ रहे थे -व्याकरण (शब्द) शास्त्र किस अनुयोग का विषय हैं? उत्तर मिला- कारण मे कार्य का उपचार करके कहा जाये तो चारो अनुयोग का शास्त्र है, क्योंकि व्याकरण एव भाषा के बिना किसी भी अनुयोग का विषय पढा नहीं जा सकता। दूसरी बात, इन शास्त्र को पढने की जितनी आवश्यकता और उपयोगिता हमे नही उतनी उन्हे है जो "लकीर के फकीर" हैं एव भटके हुए है। जो द्रव्यानुयोग को ही उपयोगी समझ बैठे हैं, भावार्थ/विशेषार्थ को ही ग्रथ समझ बैठे हैं। "एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं करता" इस मान्यता मे कितने मिथ्या मतो का समर्थन है इसे न्याय ग्रथो को पढे बिना नहीं समझा जा सकता। "विग्रह गतौ कर्म योगा" इस सूत्र पर कोई आक्षेप करे कि उमास्वामी ने यह सूत्र गलत लिखा हैं, क्योकि आत्मा जब व्यापक हैं, तब उसकी गति होना सभव नही है जैसे आपके यहाँ धर्म, अधर्म द्रव्य व्यापक होने से निष्क्रिय हैं? क्या उत्तर देगे मात्र समयसार को पढने वाले? क्या यह कहकर पीछा छुडा लेंगे की मोक्ष मार्ग मे ऐसे आक्षेप- समाधान प्रयोजनीय नहीं हैं? नहीं। धर्म निर्पेक्ष इस प्रजातत्र मे शास्त्रार्थ नहीं होते तब क्या न्यायशास्त्रो का पडना अनुपयोगी हो जायेगा। सबसे पहले बात तो यह है कि किसी भी विषय का ज्ञान वाद विवाद, जय- पराजय के लिये प्राप्त नहीं किया जाता, किन्तु वाद- विवाद की स्थिति कब पैदा हो जाये कहा भी नहीं जा सकता। एक विद्वान से ज्ञात हुआ कि विगत पचास- साठ वर्ष पूर्व हिन्दु पण्डितो ने जैनो से शास्त्रार्थ करने के लिये कहा। कहते ही दोनो पक्ष के विद्वान इकट्ठे हो गये। सभापति किस पक्ष का होगा इसी मे विवाद होने लगा। जैनों मे एक विद्वान सभाकुशल थे। उन्होने हिन्दुओ से कहा- आप अपने ही पक्ष का बना लीजिये, लेकिम बनायेंगे हम। सबने स्वीकार कर लिया, तब उन्होंने हिन्दुओ के प्रमुख विद्वान को सभापति बना दिया। दूसरी समस्या खडी हो गई। भाषा की। हिन्दु कहने लगे- सस्कृत भाषा में शास्त्रार्थ होगा और उन्होने उसी भाषा अपना पक्ष

रखकर उत्तर मागा जैनो से, लेकिन जैन संस्कृत बोलना जानते नहीं थे। उसी सभा मे एक बालक बैठा था उसने द्रव्य संग्रह की एक से लेकर दस गाथाएं बोल दी और कहने लगा - सस्कृत भाषा मे किये गये प्रश्न का उत्तर हमने प्राकृत भाषा मे दिया है और प्राकृत भाषा में किये गये प्रश्न का उत्तर दीजिए। वे मुँह ताकते रह गये जैसे जैनी ताकते रह गये थे सस्कृत मे प्रश्न सुनकर । उसी समय निर्णय हुआ कि शास्त्रार्थ हिन्दी भाषा मे ही होगा। जैन यही चाहते थे। हिन्दुओ का कमजोर पक्ष होता हुआ देखकर सभापति उनकी ओर से बोलने लगते थे, तब उन्हें जैन की ओर से सुनना पडता था कि आपको सभापति बनाया है अत. निष्पक्ष रहिये। जैनो ने अपने पण्डित्य से विजय प्राप्तकर ली। सभापति कहने-लगे सभापति बनाकर इस पण्डित ने हमे हराया है। विचारें- वह बालक अपनी चतुराई नहीं बताता तो जीत सकते? नहीं। इस घटना से सिद्व होता है कि भाषा और व्याकरण के साथ न्याय का अपने आप मे कितना महत्व है।

19. क्या समयसार महान ? हाँ, उससे पूर्व जिन्हें न्याय व्याकरण का ज्ञान ।

शास्त्रार्थ न होने के कारण जिस प्रकार न्याय शास्त्र अनुपयोगी नहीं होते उसकी प्रकार विभिन्न भाषाओ मे उपलब्ध शास्त्रो का हिन्दी मे अनुवाद हो जाने से सस्कृत, प्राकृत भाषा एव व्याकरण शास्त्र अनुपयोगी नहीं होते। समयसार जैसे अध्यात्म ग्रथो की भाषा प्राकृत है, जो बोल- चाल की भाषा नहीं है इस समय। इन्हीं ग्रथो पर लिखी टीकाएँ अर्थात् विशेष व्याख्यान हे वह भी बोल- चाल की भाषा मे नहीं है, सस्कृत मे है। सस्कृत - प्राकृत भाषाओ मे लिखे गये इन ग्रथो के समीचीन अर्थ का हृदयगम करने के लिये उमी भाषा मे पढना होगा, लेकिन ऐसा करने के लिये समय ओर श्रम की आवश्यकता है, किन्तु लोग न श्रम करना चाहते है न उतना समय ही है लोगो के पास। लोगो की ऐसी मानसिकता को देखत हुए पण्डितो ने उपरोक्त ग्रथा का प्रचलित भाषा मे अनुवाद किया, जिज्ञासुआ को समझने के लिये। लेकिन द्रव्यानुयोग जेसे अध्यात्म ग्रथो के रहस्य को एक अविरत विद्वान अल्पज्ञ समझ ही ले यह कोई आवश्यक नहीं है। ऐसी स्थिति मे जिसे जैसा समझ मे आया उसने उन ग्रथो/ टीकाओ का वैसा अनुवाद किया लेकिन इसके बाद भी लोगो को समझ मे नहीं आया अत भावार्थ/ विशेषार्थ लिखने की परपरा चल पडी। परिणाम यह हुआ कि सारे ग्रथ के रहस्य को मात्र भावार्थ पढकर समझा जाने लगा। समय और श्रम से बचने के लिये जोर भी भावार्थ पढने पर दिया जा रहा है। अब तो स्थिति यह हे कि भावार्थ को ही मूल ग्रथ समझकर कहा जाता है कि अमुक ग्रथ मे लिखा है। इतना विशेष है कि हिन्दी भाषा मे शब्दो की कमी है जिनकी पूर्ति सस्कृत भाषा के शब्दो से की

जाती है ऐसी स्थिति मे इनके अर्थ का ज्ञान कैसे हो उसके लिये भावार्थ लिख कर समझाया जाना उचित भी है, न कि शास्त्र विरुद्ध अपनी मान्यता को भावार्थ कहकर ग्रन्थ का रूप देना। धातु (क्रिया) एव शब्द सीमित हैं और अर्थ असीमित हैं। दूसरे शब्दो मे, शब्द सख्यात है और अर्थ अनन्त अर्थात एक क्रिया एव शब्द के अनेक अर्थ होते हैं। प्रसग मे किस समय किस का क्या अर्थ निकालना यह शब्दार्थ और मतार्थ के बिना सम्भव नहीं है। एक ब्राह्मण विद्वान से, छात्रो के माध्यम से पुछवाया गया कि "अवग्रेहावाय धारणा" इस सूत्र का क्या अर्थ हैं? उन्होने मतार्थ ज्ञान के अभाव मे अर्थ किया- हे अवग्रह ! ईहा और अवाय को धारण करो। जबकि जैन मत मे मतिज्ञान के ये चार भेद हैं।

अध्यात्म ग्रन्थ समयसार मे भी कुन्द कुन्द स्वामी ने प्रसंग वश मतो का उल्लेख किया है तथा कथित मुमुक्षुओ का कहना स्पष्ट रूप से असत्य हैं कि कुन्द कुन्द स्वामी न्याय शास्त्रो के ज्ञाता नहीं थे। न्याय ग्रन्थो का अध्ययन करने से पहले जब हमने समय सार पढा तब विशेष रूप से वह प्रसग पल्ले ही नहीं पडा कि साँख्य मत का उल्लेख करके स्वामी जी क्या कहना चाहते है, लेकिन जब न्याय ग्रन्थ पढे तो समयसार के ही नहीं *समयसार के माध्यम से अपनी रोटी सेकने वाला के अभिप्राय को भी समझ गया कि* " "सभाग से समाधि" मानने वाले मे और जिनकी समीक्षा चल रही है इनमे विषय पोष की अपेक्षा ओपन ओर क्लोज का ही अन्तर है अर्थात् वह खुलकर कह गया कि भोगो को भोगते हुए समाधि हो जायेगी, लेकिन यह ऐसा साहस नहीं कर पाया कहने का। क्रिया कलापो से देखा जाये तो यह उससे दो कदम आगे रहा है जिसे भोले भाले लोग समझ नहीं पाये। वह स्वमुख से कह गया कि स्त्री का समागम कर स्पर्शन इद्रिय सबधी भोग को मैंने भोगा हैं ससार के किसी भी व्यक्ति ने नहीं भोगा होगा। ओर इस से पूछा होता कि तुमने किस इद्रिय के विषय सेवन का रिकार्ड तोडा तो जबाव होता रसना इद्रिय के विषय का। उसे तो स्पर्शन इद्रिय के विषय का सेवन करने के लिये एकान्त खोजना होता होगा, लेकिन इसे तो शास्त्र गद्दी के ऊपर शास्त्र प्रवचन करते-करते जिस चीज के सेवन की इच्छा होती थी, सेवन कर लिया करता था। इशारा करने की ही तो आवश्यकता पडती थी, लेकिन लोक व्यवहार की महिमा दखो यह व्यभिचारी के रूप मे बदनाम नहीं था जैसा की वह बदनाम था दुनिया मे। "शब्दार्थ काण्ड" मे डॉक्टर और महिला के बीच हुई चर्चा को आगे बढाएँ ।

20. क्या मतार्थ महान ? नहीं, वहाँ से संभोग से समाधि यहाँ जिह्वा का ध्यान।

डॉ ने तथाकथित मुमुक्षु महिला के गुरु की तुलना "सभोग से समाधि" मानन वाले से की तो वह बड़े खीज कर कहने लगी- आप किसके साथ तुलना कर रहे हैं हमारे गुरु

की। वह तो दुनियाँ का सबसे चरित्रहीन/कामुक व्यक्ति था। डॉ ने कहा- अरे,खीजती क्यो हो। "एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं करता" तुम्हारे गुरु की इस मान्यता पर विचार करने वाले कहते हैं कि यह मान्यता मानव मे चरित्रहीनता का उल्लघन कर गई अर्थात् इस मान्यता के अनुसार भाईचारे का भेद नहीं किया जा सकता पशुओ के समान। उसका मानना था कि किसी भी इद्रिय के विषय को इतना भोगो, कि उससे विरक्ति हो जाये। तृप्ति हो जाये हमेशा के लिये, क्योकि अतृप्त अवस्था मे समाधि नहीं हो सकती। उसका अनुभव था कि स्त्री समागम के बाद कुछ समय के लिये उससे तृप्ति का अनुभव होता है। इसी तरह समय-समय पर निरतर समागम करते रहने से प्रत्येक समागम के बाद जो तृप्ति का अभ्यास होगा वह एक दिन पूर्ण तृप्ति मे कारण बन जायेगा और इसी का नाम तो समाधि है। उसका यह भी मानना था कि जिस समय जो इच्छा होती है उसे पूर्ण करो। जैसे तुम्हारे गुरु को उपदेश करते करते कोई जूश (रस) पीने की इच्छा होती तो तत्काल हाथ मे गिलास रख दी जाती थी। उसी प्रकार उसका कहना था कि आप कोई ध्यान वगैरह कार्य करने वाले हैं उस बीच कोई इच्छा जाग्रत हो जाये तो पहले उसे शान्त कर लो। नाचने की इच्छा हुई नाच लो, हस लो रो लो, सो लो, बैठ लो, घूम लो अन्यथा ध्यान मे बाधक बन सकती है।

कहने लगी- उस कामी से हमारे गुरु की तुलना तो नहीं करना चाहिए, क्योकि वे तो बाल ब्रह्मचारी थे। उस कामी की सभोग से समाधि तो नही, अपितु यौन सबधी रोग के कारण बडी बुरी मौत से मरा है। डॉ कहने लगे, क्या तुमने जरूरत से ज्यादा स्त्री समागम करने वालो को ही कामी समझ रखा। अरे, इस कामुकता की जड जिव्हा लम्पटता है। तुम्हारा गुरु उसके कारण ही उसी जैसी बुरी मौत मरा है। जिसका कोई इलाज नहीं था ऐसे केसर जैसे रोग से पीडित होता हुआ। वर्षो तडपता रहा। यहाँ यह भी तो नहीं कह सकते कि वह अपनी योग्यता से मरा अन्यथा उसे भी योन राग स मरा नही कह सकते। कहने लगी- उन्होने दिगम्बर जैन आम्नाय मे आकर जेन धर्म का बडा प्रचार किया। देश मे भी और विदेश मे भी। डॉ कहने लगे- इस प्रचार के विषय मे भी वह तुम्हारे गुरु से बहुत आगे रहा है। तुम्हारे गुरु को देश के कितने जेनेतर जानते है ? कहना चाहिए न के बराबर यहाँ तक अधिकाश जैनी भी नहीं जानते। जानने वालो मे भी अधिकाश उपेक्षा कर देते हैं कि ऊँ होगा कोई। कहने लगी-सुना है, जिस किसी नेता/महापुरुष के विरोध मे बोलने के कारण उसका इतना विरोध हुआ कि उसे भारत छोड अमेरिका भागना पडा था और वहाँ भी वहाँ के नियमो के विरुद्ध चलने एव राष्ट्रपति के विरोध मे कुत्ता कह देने से उन्होने उसे जेल मे डलवा दिया और अत मे उसे देश निकाला दे दिया अत वहाँ से भी उसे भागना पडा। इतना ही नहीं, जिस देश मे शरण लेने पहुचा वहाँ से भी बहिष्कार हुआ। डॉ कहने लगे-तुम्हारे गुरु को भी तो आगम विरुद्ध बोलने एव चलने और मुनियो का अपशब्द

बोलने के कारण लोगो ने काले झण्डे दिखाये । जगह-जगह से बहिष्कृत होकर अपमानित होना पडा। कहीं-कहीं तो इन्हें बीच कार्यक्रम में से यह कहकर भागना पडा था कि मैं अब यहाँ दुबारा कभी नहीं आऊगा यदि वह किसी अन्य सम्प्रदाय के साधु आदि के विरुद्ध या किसी नेता के विरुद्ध बोलता तो हो सकता है उसे भी उनसे बहिष्कृत एव भयभीत होकर भारत छोडना पडता, लेकिन इतना साहस नहीं था तुम्हारे गुरु मे, वह तो उन्हीं के खिलाफ बोलने का साहस कर पाया जिन्होने विरोधी हिसा का भी त्याग कर दिया है। चमीटा/त्रिशूलधारी हिन्दु नागा महात्माओ के बारे मे कहकर देखता उनके विरोध मे, वहीं से परलोक (अधोलोक) गमन हो जाता जसलोक मे जाने एव जसलोक से जाने की आवश्यकता नहीं पडती। कहने लगी-उनकी तो निर्विकल्प समाधि हुई है। डॉ ने कहा-साधु को निर्दोष रूप मे जीने और मरने के लिये तुम्हारी और उसकी दृष्टि मे निर्जन/निराकुल स्थान चाहिए और तुम्हारे गुरु बेहोश दशा मे तुम्हारे जैसे मूढ चेले निर्विकल्प समाधि कराने के लिये ऐसी जगह ले गये जिसे अनुभवी लोग नरक कहा करते हैं, जहाँ रोगी अपना रोना रोते ही रहते हैं। कहने लगी- आप लोगों को उनकी कमियाँ ही दिखती हैं अच्छाईयाँ दिखती ही नही। कितना प्रभाव था उनका, कितने लोग सुनने आते थे उन्हें। प्रभाव की दृष्टि से भी वह तुम्हारे गुरु से बहुत आगे था। सारे सम्प्रदाय के लोगो को प्रभावित किया उसने। विदेशियो पर तो जादूसा किया था उसने और तुम्हारे गुरु ने दोनो सम्प्रदाय के न के बराबर जैनो को। उसके पास तो लोग पैसा देकर सुनने जाते थे, लेकिन यहाँ तो वहाँ से विपरीत होता था। श्रोताओ की भीड इकट्ठी करने के लिये उन्हे मनाना पडता था। जहाँ भी शिविर लगाया जाता था वहाँ पर धनहीनो को आने-जाने-खाने-रहने की व्यवस्था का प्रलोभन देकर ही बुलाया जाता था। यहीं के एक व्यक्ति अपनी बीती सुना रहे थे कि मै अपने गृह कार्य के लिये वहाँ पहुँचा रहने के लिये कमरा मागा। उन्होने इस शर्त पर कमरा देना स्वीकार किया कि तुम्हे प्रवचन के समय प्रवचन सुनने आना पडेगा।

दूसरी बात यह है कि श्रोता जो चाहता है वक्ता के द्वारा उसकी पुष्टि हो जाये तो कौन प्रभावित नहीं होगा। वर्तमान मे कौन चाहता है पूजा, अभिषेक करना, कौन चाहता हे, साधु एव श्रावक बनना, कोन चाहता हे साधु जैसा मर्यादित शुद्ध भोजन करना, रात्रि भोजन त्याग करना और कौन चाहता दानादि देकर साधु सेवा करना। इन्हे आत्महित मे अनुपयोगी हेय कह दिये जाने पर उन्हे प्रभावित कर लेना और उनका प्रभावित हो जाना स्वाभाविक ही हे। अन्य सम्प्रदाय मे छाडिये, जैन सम्प्रदाय मे कितने लोग हैं, जो देव शास्त्र गुरु पर श्रद्धा रखते हो। नहीं रखने वालो से कह दिया जाये कि इन तीनो पर श्रद्धा सम्यग्दर्शन नहीं है, तब इनका भी प्रभावित होना स्वाभाविक है। जैसे उसने भोगी विलासी (ऐयाशियों) मासाहारियो को भोग विलास एव मास भक्षण को निर्दोष कहकर उन्हें अपने वाक्जाल से प्रभावित कर लिया।

21. क्या मतार्थ महानं ? नहीं, चारवाक्मीमांसक की पहचान।

कुन्द कुन्द स्वामी का अनुयायी होने का मुखोटा ओढकर चारवाक् मीमासक जैसे नास्तिको की चाल चलता था। चारवाक् और इसके विचारो मे अतर इतना है कि वह आत्मा, परमात्मा, स्वर्ग, नरक को नहीं मानता और यह मानता है, लेकिन विषय पोषण की अपेक्षा शत्रु का शत्रु मित्र के अनुसार गले मिले हुए है/था। चारवाक् का कहना है- तपासि यातनश्चित्रासयमो भोग वचक । अग्नि-होत्रादिक कर्म, बालक्री डेव लक्ष्यते। अर्थात् क्या रखा है तपस्याओं मे कष्ट के सिवाय और इससे मिलता ही क्या है। सयमपालने से लाभ ही क्या है, यह तो भोगो को लूटने वाला एक जबर्दस्त लुटेरा है। अग्नि होत्रादिक कर्म अर्थात् पूजनादिक शुभ कृत्य ये बालाको (अज्ञानियो) की क्रीडाए (खेल) जैसे प्रतीत होते हैं। इसका भी यही कहना था कि अणुव्रत, महाव्रत पाल‍ो से होता क्या है, ये तो जड की क्रियायें हैं। व्रत,उपवास,केश लोच आदि मूल गुण से सब काय क्लेश मात्र है, इनसे कुछ नहीं होता। विधान,पूजन,अभिषेक, पच कल्याण ये रूढि हैं।

उसका ऐसा भी मानना है-"यावत् जीवेत् सुखी जीवेत् ऋण ग्रहीत्वा घृत पिबेत्, भस्मी भूतस्य देहस्य पुनरागमन कृत" अर्थात् जब तक जियो सुख से जियो। सुख के साधन उपलब्ध नहीं हो रहे हो उधार ले लो और घी पियो, क्योकि नाश हो जाने वाली देह का मिलना हुआ न मिलना हुआ किसे पता। स्वर्ग-मोक्ष की आशा रखकर प्राप्त भोग्य पदार्थों की उपेक्षा करना सिवाय मूर्खता के और क्या है।

उसी प्रकार विषय पोषण की अपेक्षा मीमासको से भी मेल बैठ जाता है। अन्तर इतना ही हे कि मीमासको की दृष्टि मे पुरुष (आत्मा) कभी निर्दोष (शुद्ध) नहीं हो सकता। ऐसा नियम हे कि जो अनादि से अशुद्ध है वह कभी अनन्त काल तक शुद्ध नहीं हो सकता। यही कारण है कि जगत् की स्वभावत स्वच्छद वृत्ति होने से निकृष्ट हिसादिक अनाचार मार्गों मे प्रवृत्ति होती है- इसमे कोई दोष नहीं है। इसकी मान्यता है कि आत्मा हमेशा शुद्ध रहता है। शरीर से जो भी अनाचार होते हैं उससे आत्मा का कुछ भी नहीं बिगडता। इसी प्रसग मे एक निर्भीक निर्लज्ज का कुकृत्य स्मरण मे आ जाता है-

एक पिता अपनी जबान लडकी को उसके पति गृह से अपने घर ला रहा था। उसका सम्हला हुआ शरीर देखकर उसी पर कामासक्त हो गया। उसी समय लडकी लघु शका करने बैलगाडी से नीचे उतरी। उसने (पिता) नौकर से कहा- तूँ आगे चल। नदी पर गाडी रोकना। मैं बित्रा को लेकर आता हूँ । एकान्त पाकर उसने लडकी के साथ मुँह काला किया। लडकी ने मा से बताया। मा ने पचों से। पचों के पूछे जाने पर वह निर्लज्ज कहता है- मैंने ही पेड लगाया मैं ही उसका फल नहीं चख सकता क्या ? गाव वालो ने उसे गाव से निकाल दिया। इसमे और उस निर्भीक निर्लज्ज मे क्या अन्तर जो यह कह गया कि पुरुष (पति) के रहते पत्नि पर पुरुष के गर्भधारण करे तब भी कोई दोष नहीं है,

क्योकि पुद्गल से पुद्गल ही तो टकराता है चाहे पत्ति का हो या पर पुरुष का। आत्मा के स्वतत्र अस्तित्व को स्वीकार नहीं करने वाले, अपने लिग और उदर की पुष्टि से ही सतुष्ट बने हुए, लज्जा रहित एव निर्भय चार्वाको के द्वारा ये जगत के भोले भाल प्राणी ठग गये हैं ऐसा समत भद्र स्वामी युक्त्यनुशासन मे खेद व्यक्त करते हुए लिखते है।

22. क्या मतार्थ महान ? नहीं, वह ईसामसीह, चेले ईसाई समान।

इस समय ऐसा समझ मे आ रहा है या समझा जा रहा है कि जिस धर्म के अनुयायी अधिक हो वह धर्म समीचीन (सच्चा) अथवा सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। यही कारण है कि लोग जिस किसी तरह, अपने द्वारा मान्य देव, गुरु शास्त्र क अनुयायियो की सख्या बढाने म तन,मन,धन से लगे हुए हैं। सभी जानते हैं कि हीरा जैसी वस्तुएँ बहुत कीमती हाती हैं, लेकिन उसके पारखी कम ही हुआ करते हैं। कम सख्यक होकर भी यह कोई नहीं मानता कि हीरा घटिया वस्तु है और उसके पारखी या उसे चाहने वाले मूर्ख हुआ करते हैं। इतना अवश्य है कि जोहरियो को अपने अल्प सख्यक होने की चिन्ता नहीं होती और न वे सख्या बढाने का ही प्रयास करते हैं जिस किसी तरीके स। जाहरी बनना भी कठिन कार्य है। यही कारण है जिस किसी उपाय से नहीं बनाये जात हैं और न बनाये जा सकते हैं। वेसे ता जन धर्म की किसी चीज स तुलना नहीं की जा सकती फिर भी समझने के लिये उसे हम हीरा कह सकत ह प्रसग मे। जिसने इस धर्म का हीरा समझ लिया है ऐसे जोहरी को अपने अल्प सख्यक हान की चिन्ता नहीं हाती, अत उसका लक्ष्य जिस किसी तरह उस धर्म के अनुयायियों को बढान का नहीं हाती है। अपितु वह अपने आपका हीरा (जेनधम) मय बना देन का हाता है। यही कारण है कि वह तन मन धन एव वचन के बल पर किसी की किसी भी चीज मे कमजारी का नाजायज फायदा नहीं उठाता जैसे मुसलमानो ने तन अर्थात् शक्ति/डण्ड क बल पर उठाया था। ईसाइ पेसे एव ज्ञान के बल पर उठा रह है।

अन्न दान न दन के कारण विद्वान भी विपन्न दख जाते है। इनकी धनहीनता का नाजायज लाभ अल्पज्ञ धनवान उठाते हैं। अथात् धनहीन विद्वान लोक उपकारी लख अथवा पुस्तक लिखते हैं और ये धनवान उन्हे पसा देकर अपने नाम म प्रकाशित कर लेते हैं उधारी की विद्वता का प्रदशन करन एव लाक प्रतिष्ठा पाने क लिय। प्रमाण पत्र का युग है इसलिए इनकी मूर्खता छुपी रहती ह। वास्तविकता की छान बीन की जाये तो किसी के सामने मुँह दिखाने लायक भी न रह जाये। इतना ही नही उन विद्वानो के मुख से ही, पैसे एव सम्मान के बल पर उगलवा लेत है जा स्पष्ट रूप मे धम विरुद्ध हाता है जा करना नही चाहत वह करवा लत है। लिखना नहीं चाहते वह लिखा लते है। किसी भी कार्य मे धन की आवश्यकता तो अनिवाय है सो वह हथियाने के लिये सम्मान के बल पर धनवानो को मजबूर कर देते हैं। वाकपटुता भी तो एक उपाय है जो कृपण का भी मजबूर कर दता ह उदारता दिखान क लिये।

जिसकी यहाँ समीक्षा चल रही ह। उसे इस प्रसग मे इसा मसीह कहा जा सकता ह

क्या, और उसके अनुयायियो को ईसाई ? ईसा मसीह के विषय में मुझे विशेष जानकारी नहीं है, लेकिन ईसाईयो के विषय मे सक्षेप से जो कुछ भी लिखा जायेगा और विशेष रूप से उनके विषय मे बहुत से लोग जानते है। ईसाईयो के क्रिया कलापो से अनुमान लगाया जा सकता है कि ईसा मसीह कैसे रहे होगे। उसी प्रकार तथाकथित मुमुक्षुओ के, ईसाईयो के समान, क्रिया कलापो से अनुमान लगाया जा सकता है कि उनका प्रवर्तक कैसा रहा हागा। एक कहावत है "जहाँ के जैसे नदी नाले वहाँ के वैसे भरका और जेके जैसे माई बाप वैसे ओके लरका"। इतना अवश्य है कि जिस किसी ने किसी धर्म का प्रवर्तन किया उसके अनुयायी भक्त उसमे विकृति अवश्य लाये हैं। जैसे बुद्ध ने मारकर नहीं मरे मराये जीव का मास खाने का विधान किया। उनके भक्त बकरे आदि को खाना-पीना देना बद कर देत हैं मर जाने पर उसे खा लेते हैं। सफाई देते है हमने मारा नहीं।

23. क्या मतार्थ महान ? नहीं, व्रत हेय है, ब्रह्मचारी रूपवान।

तथाकथित मुमुक्षु और उनका गुरु "जैनधर्म" इस हीरे को हीरा नहीं समझ पाये अन्यथा अधिक से अधिक अनुयायी मेरे तैयार हो, इसके लिये ईसाईयो की तरह निम्नलिखित तरीके अपनाय है और अपना रहे है वे न अपनाये जाते। असली कस्तूरी की बिक्री के लिये उसके प्रचार-प्रसार की आवश्यकता नहीं है वह तो घर के अन्दर रहकर भी अपना परिचय अपनी सुगध के रूप मे स्वय देती है। उसी प्रकार जैन धर्म की सुगध श्रावक एव साधु के विशुद्ध आचरण से स्वय आती है। श्रावक एव साधु बने बिना मुँह से चिल्लाने से नही, फिर भी चिल्लाये वह जैन धर्म की न समझी का परिचय हे।

बात उस सयम कि हे जब हमारे सघ म एक अल्प वय का बालक ब्रह्मचर्य भेष मे साधना रत था। लग गई एक तथाकथित मुमुक्षु की आखे और सघस्थ माधु एव अन्य ब्रह्मचारी गण की आखे बचाकर वहाँ से भगाकर ले जाने जान का प्रयास जारी हो गया वहा जिस विद्यालय मे भक्त नही मीध भगवान वनाये जाते है। उम ब्रह्मचारी के द्वारा स्वय उसके कृत्य की शिकायत कर दने क कारण उसका वह कृत्य छुपा न रह सका। एक दिन जब वह उस ब्रह्मचारी को अनक प्रकार क प्रलाभन द रहा था, तब मघस्थ एक माधु ने उसे बुलाया ओर डाटते हुए कहा- क्या, जिसे तुम गुरु मान बेठे हो उसने तुम्हे यही सिखाया हे कि चारो की तरह किसी के घर मे घुसकर केसे सेध लगाई जाती हे। तुम्हार लडके को कोई तुम्हारी ही तरह फुसला कर अपने घर ले जाये अपना लडका बना ले क्या गुजरेगी तुम्हार साथ, क्या व्यवहार करोगे ? अथवा किसी ने ऐसा किया है ? गुरु के ऊपर आक्षेप होता हुआ देख एव लताड सुनकर उसने जो कुछ कहा स्पष्ट रूप से सफाई थी। वह मुमुक्षु तो एक उदाहरण है। उस जेसे न जाने कितने लोग मिलेंगे जो इसी ताक मे रहते हे कि कोई अल्पउम्र का ब्रह्मचारी मिल जाये और वहाँ भेज दें। और कहीं रूपवान के साथ साथ प्रतिभाशली हुआ तो क्या कहना हर हथकण्डे अपनाय जात हैं उसे भेजकर वाहवाही

पाने के लिये। इनके इन धर्म एव लोग विरुद्ध कृत्यों को करने के लिये ऊपर से ही प्रात्साहित किया जाता है एव भेज देनेपर सम्मानित।

अभी कुछ ही दिन पूर्व एक भूतपूर्व क्षुल्लक मुमुक्षु ने एक विद्यालय मे सेंध लगाई और वहा से दो-एक ब्रह्मचारी भेषधारियो को ले भागा। इन्हे पैसे नहीं सम्मानित करके अपना बनाया जाता है। पैसो की आवश्यकता पडे तो उसके लिये भी व्यवस्था पहले से ही है। इन्हे इस प्रकार के कुकृत्य करने मे जरा-सा भी भय इस लिये भी नहीं है कि अचौर्य व्रत है और व्रत होने के नाते हेय है। उपादेय होता तो उपरोक्त कृत्य करने मे भय होता। आश्चर्य की बात तो यह है कि एक ओर ब्रह्मचर्य भी व्रत है और व्रत होने के नाते हेय है, लेकिन बाल ब्रह्मचारी भेषधारियो को छल बल से अपना बना लेने मे गौरव का अनुभव करते हैं, अपने कृत्य की सफलता मानते हैं उतना किसी अन्य असयमी साधारण भेषधारियो का नहीं। पर्याप्त मात्रा मे इनका मिलना महज नहीं है अत इनके बाद उन प्रभावशाली सुकुमारमति बालको पर जिन्हे जेसा चाहे गढा जा सकता हो। वे मा-बाप तो बाध्य हो ही जाते हे जो आर्थिक दृष्टि स विपन्न हैं।

24 क्या मतार्थ महान ? नही, मानवों तक सीमित ईसाई एहसान।

इस कृत्य की दृष्टि से देखा जाये तो य ईसाईयो मे पीछे नही है। ईसाईयो के बारे मे सुना है कि मानव मात्र मे बडा स्नेह होता हे मेवा भाव भी होता है लेकिन पशु-पक्षियो क प्रति अशमात्र भी दया नहीं हाती क्याकि उन्हे धर्म परिवर्तन करके ईसाई नही बनाया जा सकता। विचार करे- जिनका मानव मात्र अथवा प्राणी मात्र क प्रति करुणा भाव नहीं है उनका मानव के प्रति स्नेह हे वह कितना नि स्वार्थ होगा ? मानवो मे भी उन्हीं के प्रति वात्सल्य/स्नेह है जिन्हे धर्म परिवर्तन करके ईसाई बनाया जा सकता हो। दूसरे शब्दो मे, उनमे बन जाने की आशा हा। जिनमे ईसाई बनने की आशा ही न हा उनके प्रति वात्सल्य नहीं उपक्षा हाती है।

हमारे ही साथ एक बार ऐसी ही घटना घटी- विहार करते हुए एक गाव जा रहे थ। भक्तो ने निवेदन किया महाराज ! रास्ता लबा हे अत बीच मे ही आहार करके चला जाये ता अच्छा है। ओर उन्हाने ईसाईयो द्वारा निर्मित एक आवास म रुकने आदि की व्यवस्था की उनके बिना पूछे। उन्हे जब ज्ञात हुआ तो वे उलाहना दने के लिये आ गये कि आपने हमारी बिना अनुमति के इन्हे यहाँ क्यो रोका और आप रुके ? भक्तो ने कहा- प्रयस तो बहुत किया, लेकिन आप समय पर नहीं मिल अत मजबूरी मे वैसा करना पडा अत क्षमा चाहत हैं लेकिन उन्हे इतने पर भी सतोष नहीं हुआ क्योंकि वे जानते थे कि निम्नजाति के धनहीनो को छोडकर जेन, हिन्दु (ब्राह्मण, क्षत्रिय वेश्य) सिक्ख मुसलमानो को ईसाइ

बनाना "टेढी खीर" है। जिन्हे ईसाई बनाने की आशा होती और वे अपनी बारात भी इनके पूछे बिना रोक लेते तो क्या इनको कोई आपत्ति या असंतोष होता ? नहीं। उसी प्रकार इन तथाकथित मुमुक्षुओ को ज्ञात हो या ज्ञात हो जाये कि अमुक कट्टर मुनि भक्त है और इसे अपने पक्ष मे लेना बहुत कठिन है तब उसे एक गिलास पानी पिलाने मे कतराते हैं। यदि कोई निकट या दूर का सबधी न हो तो। एक मुनि भक्त कहने लगे महाराज ! हमारे काका जी तथाकथित मुमुक्षु बना लिये गये थे, लेकिन जब ये मुमुक्षुओ के द्वारा ही दुतकार के भगा दिये गये, तब से जहा के तहा आ गये, अन्यथ । आपके आहार कैसे हो सकते थे। बात उस समय की है जब मूर्ति सबधी विवाद को लेकर इन तथाकथित मुमुक्षुओ मे आपस मे विभाजन हुआ था। जो श्वेताम्बर आम्नाय से तथाकथित मुमुक्षु हुए थे वे गुजरात की ही सस्था से जुड गये और जो दिगम्बर आम्नाय से तथा कथित मुमुक्षु हुए थे वे राजस्थान की सस्था से जुड गये। इस समय ये ही तीर्थ हैं इनके लिये। विभाजन ताजा था उसी समय हमारे काका जी गुजराती सस्था (तीर्थ) मे पहुचे दशनार्थ। पूछने पर परिचय दिया कि हम तथाकथित मुमुक्षु है मध्यप्रदेश के। व्यवस्थापको ने दुतकारते हुए कहा- यहॉ जगह नहीं है भगो यहाँ से। काई मुनि भक्त होता तो हो सकता है- मारपीट कर निकाल देते। आखिर है तो श्वेताम्बर की पेदाइश।

ईसाई धनहीन जेन को भी ईसाई नही बना पाये या पाते, इसमे दो कारण हे। पहली बात तो यह हें कि जेनी हिन्दुओ की तरह बिखरे हुए नहीं हे, अपितु मुसलमानो की तरह प्राय सगठित है। धार्मिक दृष्टि से तो जुडे ही हैं लोकिक दृष्टि से भी जुडे हे। प्रतिकूलताओ मे जिम तरह स एक दूसरे का सहयोग करत हुये जेन देख जाते हे वेसा हिन्दू एक दूसरे का नही। दूमरी बात आचार विचारा पर विशेष रूप से गौर किया जाता हे। यहॉ आचार मे तात्पर्य- राटी-बटी का व्यवहार से हे। जेनी प्राय शुद्ध शाकाहारी होते हे और बेटी व्यवहार भी प्राय सजाति मे ही किया करत हे लेकिन निम्नजाति के हिन्दुओं की अग्रेजो जसी स्थिति हा गइ ह बटी व्यवहार क विषय म। अमरिका जस दशो मे अग्रजो क बार मे सुना हे कि पति यदि घर से बाहर गया हे तो पत्नि को विश्वाम नही हाता कि वह अब घर लोटेगा कि नही, क्योकि उनके वेवाहिक मबध होने और छूट जाने मे देर नहीं लगती। किमी का मबध एक वष तक चल गया ता जन्म दिवस जेसा उत्सव मनाया जाता हे अर्थात् चरित्रहीनता की चरम मीमा हे, लेकिन व इमे सामाजिक व्यवस्था मानते हे। ऐसी ही स्थिति मे यहॉ के निम्नजाति के हिन्दुओ की है। मास भक्षण की अपेक्षा ईसाई और इनमे ममानता है, तब ईमाईयो द्वारा धन का प्रलाभन देकर विचारो मे परिवर्तन कर लेना काई कठिनाई नही हे। कम उम्र के लागा उच्च जाति के धनवानो एव धनहीना का धर्म परिवतन क तरीके पर विचार करे।

25. क्या मतार्थ महान ? नहीं, ईसामसीह प्लाष्टिक के पत्थर के हनुमान।

ईसाईयो की इतनी विशेषता अवश्य होती है कि कभी हतोत्साहित नहीं होते। देखा ही जा रहा है कि तन,मन,धन से जितना प्रयास करते है उस अपेक्षा से न के बराबर सफलता मिली है। सुना गया ही नही, उनका स्वय का मानना है कि हम एक-एक करके वर्षों मे जितने लागो को धन देकर धर्म परिवर्तित कर ईसाई बनाते हैं, उन्हे ही ब्राह्मण लोग एक ही दिन मे हिन्दू बना लते हैं या कट्टर हिन्दू तीख चढाते हैं कि ''मर जाओ रे मर जाओ भूखे, लेकिन धर्म ने छोडो या देवी-देवताओ का एक ऐसा भय दिखाते हैं कि उनके धर्म परिवर्तन के लिये बढे कदम रुक जाते है।

उन ईसाईयो के हतोत्साहित न होने का एक कारण तों उनकी यह धारणा है कि उन्होने अपने जीवन काल मे एक ही को ईसाई बना लिया तो अपनी मेहनत को सफल होना मानते हैं। दूसरा कारण, विदेशों से इतना कर्ज ले रखा है भारत ने कि भारत मे चलने वाली सस्थाये उसके ब्याज स चला करती है। ''तेरा तुझ को अर्पण क्या लागे मेरा'' इस बीच धर्म परिवर्तन हो सका तो ठीक, नहीं हो सकता तो ठीक हतोत्साहित होने का सवाल ही नहीं उठता।

भाषा का भावो पर बहुत प्रभाव पडता है। उनके हतोत्साहित न होने का यह भी एक कारण है कि भारतियो का मातृभाषा एव राष्ट्रभाषा की ओर झुकाव न होकर अग्रेजी भाषा की ओर झुकाव विशेष रूप मे है। यही कारण ह कि इस समय यह धनिक एव शिक्षित वर्ग (खासकर नौकरी) मुँह मागी फीस देकर अग्रेजी माध्यम से शिक्षा दिलाना अधिक हितकर समझ रहा है। वेष-भूषा, खान-पान, रहन-सहन से भाव प्रभावित न हो ऐसा कैसे हो सकता है। ऐसी स्थिति मे भले ही स्थान की अपेक्षा हिन्दुस्तानी/भारतीय हैं, लेकिन क्रिया कलापो से अग्रेज/ईसाई। स्वय जैन और हिन्दू हिन्दी, सस्कृत पढने वालो की, धोती कुर्ता, टोपी पहनने वालो की हसी उडायेंगे, उन्हे हीन दृष्टि से देखेगे, तब तो ईसाईयो को बल तो मिलेगा ही, फिर हतोत्साहित क्यो होंगे। हमे अभी तक सुनने मे नहीं आया कि किसी जैन को ईसाईयो ने धन देकर ईसाई बना लिया हो, लेकिन पढाई के बीच मे होने वाले सास्कृतिक कार्यक्रमो के माध्यम से वे अपने उद्देश्य की पूर्ति अवश्य कर लिया करते हैं। जैन एव हिन्दू बच्चो मे जैन एव हिन्दू धर्म मे हीन भावना पैदा करने के लिये प्रयोग करके दिखाया जाता है कि देखो ये महावीर, ये राम, ये हनुमान सच्चे नहीं हैं, क्योकि पानी मे छोडा तो डूब गये, लेकिन ईसु की मूर्ति को छोडा वे डूबे नहीं, अत ये ही सच्चे है। एक लडके ने कह दिया ये ईसु प्लाष्टिक के हैं, वे पत्थर के थे। ऐसा तर्क सुनकर टीचर ने उसकी पिटाई कर दी। लोगो को जब मालुम पडा तो बच्चो को भेजना बद कर

दिया। जैनियो का जैन धर्म के प्रति और हिन्दुओ का हिन्दू धर्म के प्रति जो अलगाव दिख रहा है इसका कारण ईसाइयो का इन्हे ईसाई बनाने का उपरोक्त तरीका।

बचपन से ही देखते आये है ईसाईयो के धर्म प्रचार का ढग। ऐसा तरीका या तो कोई कम्पनी मालिक अपनाता है या राजनेता। ईसा मसीह का परिचय और उनके सिद्धात की छोटी-छोटी- पुस्तके चलती हुई कार मे से फेकते हुए चले जाते हैं। इस प्रकार के प्रचार से स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है कि जिसे वे धर्म मान बैठे है उसमें असलियत नाम की कोई चीज नहीं है नकली वस्तुओं के समान। इस प्रकार के प्रचार से भी स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है कि उन्हे अपने अनुयायियो की सख्या बढाते समय योग्यायोग्य का विशेष ध्यान नही रहता। तथाकथित मुमुक्षु भी आने वाले समय मे शास्त्रो का पत्रिका के रूप मे फेकते हुए प्रचार करने लगेगे ऐसी सम्भावना से नकारा नहीं जा सकता, आगे कहे जाने वाली जिनवाणी के साथ होने वाले दुर्व्यवहार को देखत हुए।

26. क्या मतार्थ महान ? नहीं, धनहीनों को धन, धनवानों का सम्मान।

किसी भी कार्य की सफलता मे तन,मन धन एव वचन की आवश्यकता अनिवार्य है। दूसरे शब्दो मे कहा जाये कि धर्म का उत्थान-पतन गुरु, राजा और धनवान के विवेक विवेकहीनता पर निर्भर है। अर्थात् विवेकवान होने पर उत्थान है अन्यथा पतन। जिस धर्म को राजाओ का आश्रय मिला अर्थात् वे उसके पक्षधर हुए, धनवानो का सहयोग मिला एव गुरुओ का मार्ग दर्शन मिले, उसके सरक्षण एव सवर्धन मे कोई बाधा नहीं आ सकती। बौद्ध धर्म का प्रचार विदेशो तक मे होने का कारण उपरोक्त तीनो का एकमत होना। वर्तमान शासक धर्म की तुलना मे अधर्म के ही पक्ष मे है। अर्थात् इस प्रजातत्र धर्म निरपेक्ष राज्य मे जो भी सत्ता मे आता है वह अधर्म का ही पक्ष लेता है या उस वहाँ पहुच कर लेना ही पडता, लेकिन धर्म के प्रति मध्यस्थ रहता है या सविधान के अनुसा उसे वैसा ही रहना पडता है और शासको के मध्यस्थ रहते किसी भी धर्म के उत्थान पतन की बागडोर उन-उन धर्म के गुरुओ एव उनके अनुयायी धनवान के हाथ मे है। प्रसग मे जिनकी यहाँ समीक्षा चल रही है वे जिसे धर्म मान रहे है उसके अस्तित्व, सरक्षण, सवर्धन मे मुख्य रूप से कारण उनसे जुडे भोगी विलासी धनवान हैं इनकी उदारता से तथा कथित मुमुक्षुओ की दोनो प्रदेशो की सस्थाओ मे तीस-तीस, पैतीस-पैतीस करोड रुपये का फड है जिसके ब्याज से उनका प्रचार प्रसार चलता रहता है ईसाईयो की तरह। लेकिन तथाकथित मुमुक्षुओ के गुरु के मरन एव आपस मे बटवारा होने से हतोत्साहित तो हुए हैं। उसके जीवित रहते इनमे हल चल कुछ और ही थी। भले ही ये पुण्य को विष्ठा कहे लेकिन वह हलन-चलन, वह ठाट तो पापानुबधी पुण्य का था, जो उसी के हाथ चला गया। जैसे चक्रवर्ती का ठाट उसके रहते रहता है। अन्तर इतना हे कि वह पुण्यानुबधी पुण्य के उदय

मे रहता है। धनवान सम्मान पाते थे उसकी उपस्थिति मे उपस्थित होने वाले जन समुदाय के सामने। अब वैसी उपस्थिति नहीं वैसा सम्मान नहीं वैसी उदारता की अभिव्यक्ति कैसे हो अत· आय का श्रोत वैसा नहीं रहा। ब्याज के बल पर वैसा प्रचार कैसे हो। कहने का मतलब धनवान सम्मान के अभाव मे कट गये। विद्वान धन एव सम्मान के अभाव मे कट गये धनहीन भी तो कट गये जो धन के लिये जुडे थे। प्रचारको की भी यही स्थिति है अत. हतोत्साहित तो होगे ही। इन सभी के मुँह से विवेक नहीं शराब की तरह धन एव सम्मान का नशा बोलता है- ''अबे पचम काल मे भी कोई मुनि होते हैं। अवसर पाकर यह भी बोल निकल पडते हैं कि ''एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं करता'' ऐसी स्थिति में कोई इनसे तर्क करे कि काल द्रव्य अलग है और जीव द्रव्य अलग है तब वह किसी को मुनि बनने मे बाधक ही क्यो बनेगा। निरुत्तर होने की स्थिति मे एक ही उत्तर होता है- देखो जी हम आपमे वाद-विवाद नहीं करना चाहते, इसमे कोई फायदा नही, राग द्वेष होता हैं।

हमार स्वय का अनुभव ही नहीं तथा कथित मुमुक्षुओ का भी मानना है हम लोग एक एक करके वर्षो मे लोगो को अपने पक्ष मे कर पाते हैं और कोई प्रभावी मुनि आचार्य आते हैं एक-दो दिन मे ही हमारी मेहनत पर पानी फेर दिया करते हैं अर्थात् अपने पक्ष मे कर लिया करते हैं।

27. क्या मतार्थ महान ? नहीं, बनता नहीं बनाया जाता मुसलमान।

जो नही चाहते हुए धन लेकर मजबूरी मे तथाकथित मुमुक्षु बने हैं उनकी क्या दशा हाती है इस पर विचार करे- एक लडके ने अपने पिता से पूछे बिना ही उसका मकान गिरवी रख दिया। ज्ञान होने पर उसकी स्थिति दयनीय हो गई। तथा कथित मुमुक्षुओ ने उस स्थिति का नाजायज लाभ उठाया। कुछ शर्तो पर पैसा देकर उसका मकान उठवा दिया कि तुम मुनियो को आहार नहीं दोगे, उन्हे नमस्कार नही करोगे आदि आदि। एक बार उस शहर मे हमारा पहुचना हुआ। ऐसे व्यक्तियो की साधुओ के अकम्मात् मामने आने पर बडे धर्म मकट की स्थिति होती है कभी-कभी तो वह नमम्कार कर लेता था और कभी उसकी स्थिति मुसलमानो जैसी हाती थी अर्थात् सामने से यो निकल जाता था जैसे मुसलमान निकल जाता है। कारण कि जब वह देखता था कि कोई मुमुक्षु तो नहीं देख रहा है तो नमस्कार कर लेता या अन्यथा नहीं। एक बार उसे किसी तथाकथित मुमुक्षु ने नमस्कार करते हुए देख लिया। सुना था कि उसे इस कदर डाँटा जैसे ईसाई हिन्दुओ को डाँटता है कि हमने तुम्हे इसी शर्त पर पैसे दिये थे कि तुम किसी भी ब्राह्मण को पालागी कहकर पैर नहीं छूना। मानस, भागवत एव सत्यनारायण कथा मे शामिल होते हो। यदि यही करना हो तो वापिम कर दो हमारे पैसे। उसे भी डाँट पडी कि तुम मुनियो को नमस्कार तो करते ही हो सुना है आहार देखने भी जाते हो। यह सब करना हो तो वापिस कर दो हमारे पैसे।

एक दिन मुनि भक्तो ने कहा, उस अभाग से, क्यो भाई । महाराज के पास क्यो नहीं आन। आप तो खूब सेवा करते थे, उनके साथ विहार भी किया करते थे ? कहने लगा- क्यो करे भईया, हमारी तो किस्मत फूट गई। लोगो ने कहा क्या ईसाई लोग तुम्हे सहयोग दते तब ईसाई बन जाते और अड, मास, मछली खाने लगते ? नहीं। तब तुम तथाकथित मुमुक्षु कैसे बन गये। पहल आप इन्हे ईसाईयो की तरह घृणा की दृष्टि से देखते थे। वह चुप रह गया बेचारा और कहता ही क्या। दबी जबान से यही बोला- यदि आप लोग सहयोग दते तो यह दिन क्यो देखना पडते। मैंने कभी गुरुओ का अविनय नहीं की। उस समय तो कलजा फटा जाता है जब गुरुओ के अचानक सामन आने पर हाथ भी नहीं जोड सकता, उनक उपदेश नहीं सुन सकता। आप अभी सहयोग दे दे तो उनसे पिण्ड छुडा कर गुरुओ की सवा मे लग जाऊँ। न कर सक ता अब कभी न छेडे किस्मत मे जो लिखा है भोगना पडेगा ऐसा कहकर आसू बहाता हुआ चला गया। विचार करे, उसका वैसा करने या बन जाने मे सारा अपराध उसी का ह या समाज की लापरवाही और उपेक्षा का भी है। एक सहधर्मी का स्थिति करण करने क विषय मे समाज का दिवालिया निकल आया है क्या ? नही। अन्यथा सारहीन पचकल्याण एव गजरथो मे खर्च करके अपव्यय क्यो किया जाता। हम तो समझत है इन्ह भी तथाकथित मुमुक्षुआ की श्रेणी मे ही गिना जाना चाहिए, जिन्हे मूर्ख लोग दानवीर कहा करत है। राम भक्त की तरह मुनियो के सच्चे भक्त के मन से मुनियो के प्रति सच्ची भक्ती छुडाइ जा सकती है क्या ? नहीं। इस विषय मे इतना और विचारणीय है कि अन्य सम्प्रदाय के आपत्ति ग्रस्त लोगो को धन देकर अपने पक्ष मे करते हुए नही दखे/सुन जात है ऐसा क्यो ? हो सकता धोखा द जाये। ईसाईयो या श्वेताम्बरो की तरह धन खर्च करके भी इन्हे सफलता नहीं मिली या मिलती जितना ये धन खर्च करते है। जहा कही भी इनकी न के बराबर सख्या को देखते हुए ऐसा ही मालूम पडता है।

28 क्या मतार्थ महान ? नहीं, एक महिला का करुण रुदन पिघलता पाषाण।

ऐसे न जाने इस समय इस जैन समाज मे विपत्ति के मारे कितने लोग होगे जिनकी विपन्नता का य अनुचित लाभ लेते है और ऐसे लोगो के बल पर अपने बहु सख्यक होने का प्रदर्शन करत है इसी प्रसग मे एक महिला का करुण रुदन उल्लेखनीय है- मायके आई थी अत हमारे पास आन का साहस कर बैठी कारण कि वहाँ के सभी सदस्य मुनि भक्त थे। यहाँ तक कि गाव मे मुमुक्षु नाम से कोई जाना भी नहीं जाता था। इसके बाद भी उसे भय था कोई गुप्तचर तथाकथित मुमुक्षु मेरे पीछे छोडा न गया हो। यदि ऐसा हुआ तो पारिवारिक कलह का कोई रोक नहीं सकता, क्योकि किस्ता पर सहयोग देने का वायदा हुआ है अर्थात् जब यह देखा जायेगा कि हमारी शर्तो (नियमो) का शब्दश पालन किया जा रहा है, तब अगली किस्त मजूर की जायगी क्योकि कई एक बार ये ठगाये गये हैं-

लोगो ने शर्तों पर सहयोग लिया लेकिन पालन नहीं किया शर्तों का। हमने कहा- ये तथाकथित मुमुक्षु गुप्तचरी करते हैं यह तो हमने सुना ही नहीं देखा भी है। आहार करते हुए लोगो ने देखा और आश्चर्य कर रहे थे एक तथाकथित मुमुक्षु को आहार देखते हुए लेकिन वह आहार देखने नहीं, अपितु एक ब्रह्मचारिणी दीदी को देखने आया था कि वे आहार दे रहीं हैं या नहीं। उस समय तो ये बडे असमजस में होते हैं उन मा-बाप की तरह जिनका बेटा कुछ कमाता नहीं है, लेकिन विवाह के योग्य हो गया है। ऐसी स्थिति मे विवाह किया जाये तो सपत्नीक उदर पोषण कैसे करेगा। विवाह नहीं किया जाये तो कामुकता वश काला मुँह करने, कराने का भय बना रहता है। उसी प्रकार तथाकथित मुमुक्षु किसी की परीक्षा करने जाते हैं तब भी मुश्किल, नहीं जाते तब भी मुश्किल नहीं जाते तो परीक्षा नहीं हो सकती और जाते हैं तो आक्षेप सुनना पडेगा कि सहायता देने वालो पर तो प्रतिबध लगाते हैं कि आहार देना तो दूर देखना भी नहीं चाहिए। (जैसे अभिषेक पर प्रतिबध लगाने वाले गधोदक लेने/लगाने पर भी प्रतिबध लगा देते हैं, देखने पर भी लगा देते है, क्योकि न आक्षेपो की कमी है न आक्षेप करने वालो की) और स्वय देखने जाते है। वही महिला आसू बहाती हुई कहने लगी- महाराजश्री- किसी मुनि श्री के गाव मे आने पर अपने मन को तो समझा लेती हूँ कि हे पापी आत्मन् ! डाला होगा किसी दाता के दान देने मे विघ्न। लेकिन बच्चो को समझाना बहुत मुश्किल हो जाता है। कहते हैं- माँ ! महाराज अपने यहाँ क्यो नहीं आते, सभी के यहाँ आते हैं। ऐसी स्थिति मे बहाने बनाकर टालने के अतिरिक्त और किया ही क्या जा सकता है, लेकिन ऐसा बहाना भी तो समझ मे नही आता कि जिसे बनाने से उनके ऊपर दुष्प्रभाव न पडे और हम परेशानी से बच जाये। उनसे कहा जाये कि महाराज बिना बुलाये नहीं आते। तब कहने लगते हैं- पिताजी उन्हे क्यों नही बुला लाते ? ऐसे बुलाने से नही चौका लगा कर पडगाहन कर बुलाने से आते हैं। कहते हैं- हम भी वैसा ही करके बुला लेगे। महाराज श्री ! ऐसी स्थिति मे दूसरा बहाना क्या बनाया जाये कि हम गरीब हैं इसलिये महाराज हमारे यहाँ नही आयेगे, तब इन अबोध बालको मे ऐसा ही मिथ्या धारणा मन मे घर कर जायेगी कि मुनि महाराज धनहीनो के यहॉ नहीं आते। साथ ही स्वय मे हीन भावना जाग्रत हो जाये या आप जैसे साधुओ पर मैं स्वय श्रद्धा रखकर भी उनसे कहूँ कि आज कल सच्चे साधु नहीं होते या आहार देने से कुछ नहीं होता। ऐसा कुछ तो मैं नहीं कर सकती। समझा न सकने की स्थिति मे कह देते हूँ- अपने पिताजी से पूछो। उनकी भी ठीक यही स्थिति होती है। एक दिन तो कह रहे थे-बेटा ! अपन बिक चुके हैं। पशुओ से भी गया बीता जीवन है हम सबका। उन्हे आक्षेप नहीं सुनने पडते। हम लोगो का अपराध तो है ही बच्चे भी अपराधी है यदि मुनि महाराज के आहार देखने चले जाते है तब। लकिन दुर्गा गणेश, काली को चलाकर देखने जाना, उत्सव मे स्वय भाग लेना, अपने दरवाजे पर छत पर खडे होकर स्वय देखना भी अपराध नहीं है। इनकी दशा तारण पथियो जैसी है- मूर्ति पूजन को मिथ्यात्व कहते हैं, लेकिन घरो-घरो मे पीर की स्थापना किये हुए हैं एव शकर की पिडी पर जल चढाते हुए देखे सुने गये हैं। ये

तथा कथित मुमुक्षु मे अभी भी उत्साह देखा जाता है उसका कारण है जो मुनि भक्त तो नहीं हैं लेकिन मुनि भक्ति का प्रदर्शन अवश्य करते है। वे पूजा का, दान का, उपवास आदि करने का निषेध करते हैं। कितने मुनिभक्त हैं जो पूजादि करते हैं ? नहीं करने वालो का बहुमत है यही कारण हे कि वे अभी भी उत्साहित है आगम विरुद्ध मान्यताओ का प्रचार-प्रसार करने मे।

29. क्या मतार्थ महान ? नहीं, एक ओर उपहास, दिखाते रामायण।

हिन्दुओ के द्वारा हनुमान बदर के भेष मे पूजे जाते है, लेकिन ये ईसाई उन्हे मकी कहकर उनका उपहास किया करते है। इसमे सदेह नही है कि अधिकाश हिन्दु अपनी धर्म मान्यता के प्रति काफी कट्टर हैं। यही कारण है कि जिस समय टी वी पर हिन्दुओ का आराध्य सीरियल रामायण दिखाया जा रहा था, उस ममय ईसाईयो का प्रचार-प्रसार बिल्कुल फीका पड गया था। उस समय सुना था- सीरियल समाप्ति के बाद इन्होने अपने प्रचार मे तेजी लाने के लिये इसी सीरियल का महारा लिया था अर्थात् गाव गाव जाकर लोगो को कैसिट के माध्यम से वीडियो पर रामायण दिखाकर एकत्रित लोगो को अपनी योजना बताकर ईसा मसीह के प्रति श्रद्धा जाग्रत करना। बालक का अपने जैसा बनाने के लिये पहले उस जैसे बनने का नाटक करना होता है उसी प्रकार तथाकथित मुमुक्षुओ की मान्यता के अनुसार शुभोपयोग/शुभक्रियाए, अशुभोपयोग/अशुभ क्रियाओ के समान हेय हैं अन्यथा ये मुनिभक्तो द्वारा की जाने वाली पचकल्याण जैसी शुभ क्रियाओ का, राम और कृष्ण की लीला की सादृश्यता दिखाकर उनका उपहास क्यो करते, लेकिन ये इन्ही क्रियाओ को माध्यम बनाये हुए हैं, अपनी धर्म विरुद्ध मान्यताओ का प्रचार प्रसार करने के लिये, क्योकि लोगो की भीड इनके बिना इकट्ठी नही होती। जो धर्म के अनुकूल क्रियाये हे उनको तो माध्यम बनाते ही हैं, उन्हे भी माध्यम बनाये हुए हैं, जो वस्तुत धर्म के विरुद्ध है। गजरथ चलवाना किसी भी कार्य के लिये बोलियो (नीलामी) को माध्यम बनाना धर्म विरुद्ध कार्य ही हे जिनका सहारा लेते है। प्रतिष्ठा पाठो मे जिन क्रियाओ का करना अत्यावश्यक बताया गया हे उन्हे भी ये ता करते ही नही या जल्दी जल्दी निपटाकर बिगार डाल देते हैं। उस समय पण्डितो के प्रवचनो का अधिक से अधिक लाभ लिया जाता है जिसके लिये ये नाटक के रूप मे रचे जाते हैं, लेकिन ये लोगो को दुबारा-तिबारा उल्लू नहीं बना पाते हैं। जेसे इडियन टाइम के अनुसार प्रवचन का समय तीन बजे से रखकर श्रोताओ को ढाई बजे बुलाकर पहली बार तो उल्लू/बेवकूफ तो बनाया जा सकता है, दुबारा नहीं, उसे तो निराठ मूर्ख ही समझना चाहिए कि जो यह न समझ सके कि ईसाईयो की तरह ये तथाकथित मुमुक्षु अपनी स्वार्थ सिद्धि मे लगे हैं।

"ज्ञानी मारे ज्ञान से रोम-रोम भिद जाये, मूरख मारे टेडपा (डण्डा) तो फूट खपडिया (सिर) जाये" इस कहावत के अनुसार ईसाईयो की तरह ये शाम, दाम, दण्ड,

भेद की नीति तो अपना नहीं सकते, क्योकि सत्ता हाथ मे नहीं है जिसके बल पर ''मार मार मुल्ला बनाया जा सके''। इतना अवश्य है कि ज्ञान प्राप्त की जिज्ञासा हर किसी मे नहीं होती उन्हे धन का प्रलोभन दिया जाता है। लोगो के जागरूक हो जाने से कोई भी प्रलोभन अपना रग नहीं दिखा रहा है अर्थात् सफल नहीं हो रहा है। इन्हीं के द्वारा आयाजित आयाजन से ऐसे ही एक मुरादावादी लोटे तथाकथित मुमुक्षु लौटे। उनसे एक मुनि भक्त ने पूछा- कितनी सख्या थी दर्शनार्थियो की ? उन्होने कहा-रहे होगे लगभग चार-पाच हजार। भक्त ने कहा-इतने तो हमारे आयोजनो मे कार्यकर्त्ता होते है। सुनकर उन्हे बडा फीका सा लगा, खेद का अनुभव हुआ। ऐसा उनके सिर नीचा हो जाने से लगा।

अल्प सख्या तो उन्हे उस समय खटकती है, जब भगवान की शोभा यात्रा के समय जैन-जैनेतर दोनो समाजो के सामने आना पडता। सख्या का प्रदर्शन करने के लिये,*एक बार इन्होने जैनेतरो को दस-दस रुपये देकर इकट्ठा किया। पैसा देते-लेते समय देने-लेने वालो मे आपस मे झगडा हो गया। मारपीट हो गई। सख्या प्रदर्शन का तरीका कितना हास्यास्पद है जो इनकी थोथी श्रद्धा और ज्ञान को प्रदर्शित करता है।

30 क्या मतार्थ महान ? नहीं सख्या का प्रदर्शन तथाकथित मुमुक्षु की पहचान।

तथाकथित मुमुक्षुओ ने पचकल्याण का गजरथ सहित आयाजन किया। मुनि भक्तो से सहयोग की माग की। भक्तो ने कहा- यहाँ मुनि श्री ससघ विराजमान हैं। उनसे आयाजन म शामिल होने का निवेदन करो हम सहयोग देगे। वे उन्हे निवेदन करन के लिये तैयार नही हुए। भक्तो ने सहयोग नही दिया, अपितु उन्हीं तिथियो मे विधान का आयोजन किया और सभी भक्तो का आदेश दिया कि वहाँ कोई नही जायेगा। उनका आयोजन होना न होन के बराबर रहा ऐसा उन्होने ही अनुभव किया क्या आयोजन की सफलता भीड पर निर्भर है एसी आम लोगो की मान्यता है। जिन मुनि भक्तो क सहयोग क बल पर एव उन्ही के एकत्रित समुदाय के बल पर अपने आयोजन की सफलता मानते हैं उन्हे मूर्ख समझना यह तथाकथित मुमुक्षु का ही लक्षण है।

स्वाध्याय के सबध मे भी यही स्थिति है। इन तथाकथित मुमुक्षुओ की दृष्टि मे एक स्वाध्याय की क्रिया को छोड शेष जडकी क्रिया है। इसकी भी सफलता भी भीड पर निर्भर है। इसलिए तो इन्हे हर किसी को टोकना पडता है- आया करो क्लास मे प्रतिदिन पडित जी बहुत अच्छे से समझाया करते हैं। स्वाभाविक हैं कि जब किसी को जब कभी इसी तरह टाका लगाया जायेगा तब उसे भी तो शर्म लगेगी और इसी तरह टोका-टोकी मे सख्या बढ जाय तो क्लास के लगने की सफलता समझ ली जाती है। लेकिन मुनि भक्तो

के द्वारा क्लास में पहुचने वालों को तथाकथित मुमुक्षु समझा जाने लगता है या फिर आक्षेप होने लगता है - खासी रकत हाथ मे लगने लगी है। आक्षेप इसलिये होते हैं कि इन लोगो से जुडना भय, आशा स्नेह, लोभ के बिना सम्भव नहीं है।

जहाँ कहीं भी देखा गया है कि मुनि भक्तो मे मुनि भक्ति तो है, लेकिन तत्त्व को समझने की जिज्ञासा न के बराबर भक्तो मे। कुछ लोगो मे है तो भी जैसी प्रतिदिन के स्वाध्याय की व्यवस्था उनके यहा है जहा कही, इनके यहा नहीं है, अत जिज्ञासुओ का जहाँ कही पहुँच जाना स्वाभाविक है। नासमझ जिज्ञासु पहुँच भी जाता है और ये मुमुक्षु समझ लेते हैं हमारे स्वाध्याय मे काफी सख्या मे श्रोता आते हैं।

एक जैन भाई ने बताया कि हमारा साहब ईसाई है। एक दिन हिसा-अहिसा पर बहस छिड गई। उसका मानना था- छोटे-बडे जानवर, पशुओ को ईश्वर, खुदा, ईसु, ने हम मनुष्य के उपयोग के लिये ही बनाया है फिर इसमे हिसा-अहिसा का कोई सवाल ही पैदा नहीं होता। हमने कहा-आपने इसका क्या जवाब दिया ? कहने लगे - साहब है, अत उससे बहस करना उचित नहीं समझा। हमने कहा-या आपके पास इसका कोई जबाव नहीं था, क्योकि स्वाध्याय तो करते नही, अन्यथा मिथ्या धारण पर आक्षेप किया जा सकता था/किया जाना चाहिए। कुछ भी हो, कैसा भी हो। स्वाध्याय के अभाव मे यही स्थिति होती है मुनि भक्तो की मुनि निन्दको के सामने। ये शास्त्र की गाथा दिखाते हैं और ये डण्डा।

तथाकथित मुमुक्षुओ की ईसाईयो के साथ तुलना कर देने के बाद उपसहार मे कहना *यह है कि ईसाईयो की तरह इन मुमुक्षुओ को भी मासाहारी कहा जा सकता है क्या ? हा,* जिस प्रकार उनकी इस मान्यता मे पाप/व्यसन का समर्थ है कि छोटे-बडे जानवर एव पशुओ को मनुष्यो के उपयोग (खाने) के लिये ही बनाया गया है। उसी प्रकार ''द्रव्य दृष्टि मे प्रत्येक पदार्थ शुद्ध'' है इस मान्यता मे ऐसा कोई पाप नही है जो छुपा न हो। भले ही ये मास स्वय न खायें हो लेकिन ये किसी को रोक नही सकते/न अधिकार है रोकने का।

इस प्रकरण को समाप्त करते करते ईसाईयो का वह कृत्य भी स्मरण मे आ गया जिसे वे बच्चो को ईसा मसीह की ओर आकर्षित करने के लिये अपनाया करते हैं- ईसा की शूली पर लटकी हुई तस्वीर को स्कूल मे कमरे के ठीक बीचो बीच लटकाया करते हैं। उसके पीछे टोकने मे लड्डू रखकर एक व्यक्ति बैठाया जाता है इनके द्वारा। बच्चो से कहते हैं- इन्हे नमस्कार करो वे तुम्हे लड्डू देगे। बच्चो के क्रमश नमस्कार करते ही व्यक्ति अदृश रहकर लड्डू दे देता है। बच्चो को विश्वास हो जाता है कि शूली पर लटका हुआ व्यक्ति लड्डू देता है। हो सकता है- आगे चलकर ये तथाकथित मुमुक्षु ऐसे ही कुछ कृत्य अपनाये अज्ञानियो को अपने गुरु के प्रति आकर्षित करने के लिये।

31. क्या मतार्थ महान ? नहीं, मुसलमान जैसी हमारी अलग पहचान।

सुना है तथाकथित मुमुक्षु मुसलमानो की तरह काफी सगठित होते हैं ? हा, पहले बात तो यह है कि जिनका किसी रूप मे अस्तित्व है, उनमे कुछ न कुछ विशेषता अवश्य होती है अन्यथा उनका उस रूप मे भी अस्तित्व नहीं रह सकता। दूसरी बात, जो अल्प सख्यक होते हैं उनमे प्राय सगठन देखा जाता है यदि वे भी विघटित हो तो उस रूप में भी अस्तित्व खो देगे। मुसलमानो का उनमे यह गुण ही नहीं अपितु उन जैसे दुर्गुण भी हैं उनमे। सभी तथाकथित मुमुक्षु तो नहीं, लेकिन कुछ तो दिगम्बर भेष के सामने न झुकने मे मुसलमानो जैसे कट्टर हैं। हमने स्वय कई बार देखा है कि अन्य सम्प्रदाय के व्यक्ति भले ही किसी भी रूप मे श्रद्धा की अभिव्यक्ति कर भी देते हैं, लेकिन मुसलमान भूल से वैसा करते हुए नही देखे गये। बच्चो से लेकर बूढों तक की प्रवृत्ति से लगता है कि या तो नग्नत्व के प्रति द्वेष के सस्कार लेकर ही जन्मते है या जन्म से ही उन्हे नग्नत्व के प्रति द्वेष से सस्कृत किया जाता है।

"नग्नत्व समीक्षा" मे लिखा जा चुका है कि मुसलमान धर्म नग्नत्व से द्वेष का ही परिणाम है। तथाकथित मुमुक्षुओ का समुदाय भी नग्नत्व से जन्मजात द्वेष का ही परिणाम है। जब जिस जिससे द्वेष रहता है या हो जाता है तब वह उससे लौकिक या धार्मिक दृष्टि से/क्रियाओ मे पृथक् होकर चलने का प्रयास करता है जो कार्य पृथक् होकर किया जाना सम्भव हो सकते है उन्हे करता ही है अर्थात् पूर्णरूपेण अलगाववादी बन जाता है। समवशरण मे विराजमान ग्यारह अग के पाठी मुनि का गणधर न बनाने के कारण उन्होने महावीर भगवान का ही पक्षपाती समझ लिया और उठ गये वहाँ से। सबसे पहले उसने साकार भगवान को झुठलाया और निराकार की कल्पना की। भगवान की जगह "अल्ला" नाम दिया। मदिर का मस्जिद नाम दिया। पूर्व और उत्तर दिशा की जगह पश्चिम दिशा का महत्त्व दिया। मानस्तम्भ का मदिर के आगे नही पीछे बनाने का विधान किया। अपने इष्ट के सामने हाथ जोडना नहीं हाथ खुला रखना। भगवान की आराधना/ध्यान मौन होकर नही अपितु आवाज लगाते हुए करना। तिथि का नही दिन का महत्व देना। सूर्य नही चन्द्रमा को महत्व देना। ये दिन मे ही खाने को महत्व देते हैं उसने रात्रि मे खाने को महत्त्व दिया। ये अहिसा को धर्म कहते हैं। नहीं हिसा भी धर्म है इत्यादि। लौकिक दृष्टि से विचार करे तो हिन्दू या जैन किसी के मरने पर रोते है तो वे हसते है। ये शव को जलाते हैं तो वे जमीन मे गाडते हैं। ये जलाने के बाद स्नान करते है तो वे स्नान करके गाडते हैं। ये सिर के बाल रखते है दाढी मूछ नहीं रखते तो वे दाढी मूछ रखते है सिर के बाल नहीं रखते। ये नीचे हाथ करके हाथ धोते है तो वे ऊपर करके। लिखने का ढग भी इनसे उनका विपरीत ही है। कहने का मतलब है जितनी क्रियाओ का मुसलमान उल्टा कर सके उतना अवश्य किया। कोई दिगम्बर न बन सके इसके लिये उसने एक अचूक उपाय अपनाया था- बचपन मे

लिंग के अग्र भाग की चमड़ी कटवा देना। तथाकथित मुमुक्षुओ ने मुसलमानो का "अलगाववादी" यह दुर्गुण भी अपनाया है अन्यथा वे अपनी अलग पहचान कैसे बना सकते हैं। एक व्यक्ति ने आगत मुमुक्षु पण्डित को जय जिनेन्द्र पण्डित जी कहा। उन्होने कहा-"जय जिनेन्द्र" नहीं, "शुद्धात्म वन्दना" बोला करो। दूसरे ने पूछा- शुद्धात्म वन्दना का क्या अर्थ होता है ? उन्होने कहा-अपनी आत्मा शुद्ध है उसे नमस्कार हो। तीसरे एक समझदार व्यक्ति ने पूछा-क्यो पण्डित जी ! अपनी आत्मा जिनेन्द्र नही है क्या ? कहने लगे-है। फिर ये शुद्धात्मवन्दना करने की परम्परा अलग से क्यो डाली जा रही है ? उन्होने कहा डाँटते हुए- चुप रहो जी। ये अलगाववादी इसके अलावा और कह भी क्या सकते है। क्योकि इन्हे जितना आदेश है इतना ही तो बोलना है।

भूत एव वर्तमान तीर्थंकर जो कि भरत क्षेत्र मे हो चुके है और भविष्य मे होन वाले है, इन्हे इनमे से कोई नहीं जमे, क्योकि इनक जिनालय तो सब जगह बने हुए हैं। इनके ही जिनालय बनाये जाये इनके द्वारा तो इनकी अलग से पहचान कसे होगी, अत इन्होने विदेह क्षत्र मे स्थित सीमधर भगवान के जिनालयो को जगह-जगह बनाकर अपनी एक पहचान बनाइ। स्वय तेरह पथी आम्नाय के हात हुए भी अलगाववादी बुद्धि क कारण उसमे अनेक खामियाँ निकालकर "शुद्ध" यह विशेषण लगाकर शुद्ध तरा पथी कहकर अपनी अलग पहचान बना ली। कुन्द-कुन्द स्वामी क अध्यात्म ग्रथा को उपादय ओर शष का हय कहकर अपनी एक अलग पहचान बना ली। मुनि निन्दक क रूप मे भी जाने जाते हे। जिस असयमी को ये गुरु कहते हे उसे भावी तीर्थकर मानकर उसकी मूर्ति स्थापित करके अलग पहचान बना ली हे लेकिन विघटन का मुँह दखना पडा अत दो फिरक के रूप मे भी जाने जाते है। व्यवहार को एकान्त म हेय कहने वाल निश्चयवादी क नाम से ये जैन समाज म सर्वत्र जाने जाते हे इत्यादि। हो सकता है इन्ह नग्नत्व म इतना द्वेष बढ जाये और भय हो कि हमारी आगे आने वाली पीडियो म कोई दिगम्बर न बनन लग अत मुसलमाना क समान लिगभग करना प्रारम्भ न हो जाये।

32. क्या मतार्थ महान ? नहीं, बौद्ध मत में शूद्र, यहाँ पर स्त्री समान।

"एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं करता" इस मान्यता पर दर्शन शास्त्र का ज्ञाता पूछ बेठे कि क्षणिक एकात वादी बोद्ध के यहाँ भी गुरु-शिष्य का व्यवहार चलता है किन्तु वह क्षणिक बाद मे घटित नही होता। अत बौद्ध गुरु-शिष्य परपरा को काल्पनिक मानते है। जेनाचार्यो ने इस कल्पना को मिथ्या कहकर खण्डन किया है तब बौद्ध अनादि वासना का सहारा लेत है। तथाकथित मुमुक्षुओ के यहाँ भी गुरु परपरा का व्यवहार चलता हे लेकिन इनकी उपरोक्त मान्यता के अनुसार घटित नहीं होता तब ये कल्पना या अनादि वासना का सहारा तो नहीं लेते, अपितु "ऐसा कहने मे आता है" इस वाक्य का सहारा

अवश्य लेते हैं कि किसी का किसी से या शिष्य का गुरु से उपकार होता है।

कोई व्यक्ति अपने आप को गुरु माने किसी का या किसी के द्वारा गुरु माना जाये और कोई अपने आपको शिष्य माने किसी का या किसी के द्वारा माना जाये इसके बाद भी कहा जाये कि उमास्वामी महाराज ने ''परस्परोग्रहो जीवाना'' यह सूत्र गलत लिखा है यह तो कृतघ्नता की चरम सीमा होगी। निश्चय का स्पष्ट रूप से दुरुपयोग। ''कृतमुपकार साधवो न विस्मरन्ति'' यह सुयुक्ति भी इनकी दृष्टि मे मिथ्या है। अनिह्नाचार (छिपाना नहीं) सम्यग्ज्ञान का एक अग है। व्यवहार को हेय कहकर मोक्ष मार्ग मे इसे भी अनुपयोगी बता दिया।

समतभद्र आचार्य युक्त्यनुशासन मे इस विषय मे खेद करते हुए लिखते हैं- ''शास्ता-सुगते ने ही निर्दोष वचनो की शिक्षा दी, परन्तु उन वचनो से वे शिष्य समझदार नहीं हुए। आश्चर्य है कि इस प्रकार का बौद्धो का यह कथन दूसरा गाढतम अन्धकार ही है। इसलिये हे वीर ! आपके सिवाय और कौन हैं जो कल्याण कारक हो। (21)'' लगता है- सत्याणुव्रत को हेय कहकर कुछ भी बोल देने के लिये इन्होने अपना रास्ता साफ कर लिया है। अन्यथा स्पष्ट रूप से कोई कार्य होता हुआ देखकर भी न माने उसे प्रतीति का अपलाप कहा हुआ है न्याय शास्त्रो मे वह क्यो किया जाता जो इनके द्वारा किया जा रहा है। क्षणिक एकात वादी बोद्ध वाच्य-वाचक सबध नहीं मानता क्योकि वह क्षणिकता मे बाधक है। वह तत्त्व को सुलक्षण शब्द से कहता है और उस शब्द उसी तरह स्पर्श/छू नही सकता जिस प्रकार ब्राह्मण का शूद्र स्पर्श नही कर सकता। इसी प्रकार ''एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नही करता'' इस मान्यता म वाच्य-वाचक सबध नहीं बनता अर्थात् इस मान्यता मे बाधक है अत इसकी मान्यता मे जिनवाणी परस्त्री के समान है जिसे सत् पुरुष स्पर्श नही करते अर्थात् पढत नही हैं। इस विषय मे 'आगमार्थ काण्ड' मे बताया जायेगा विशेष रूप से। वाच्य-वाचक ही नही इस मान्यता मे बोद्ध की तरह कोइ भी सबध नहीं बनता। किसी प्रकार के सबध को असत्य सिद्ध करने के लिये ये तथाकथित मुमुक्षु अत्यन्ताभाव को माध्यम बनात है। कहना चाहिए मतार्थ का ज्ञान न होन के कारण अत्यन्ताभाव का दुरुपयोग करते है। न्याय शास्त्रो मे-वस्तु के अभाव धर्म को न मानने वालो पर क्या क्या आपत्ति आती है उसे स्पष्ट किया है। किसी भी प्रकार के सबध को नहीं मानने के लिये अत्यन्ताभाव का कथन किसी भी न्याय ग्रथ मे नही है। क्षणिक एकान्तवादी बोद्धो के मत मे कार्यकारक सबध भी नहीं बनता फिर भी वह नाश को ही निर्हेतुक मानता है उत्पाद को नहीं, लेकिन तथा कथित मुमुक्षु इससे भी एक कदम आगे बढ गया उत्पाद भी निर्हेतुक मानता है। बौद्ध का कुतर्क है कि यदि नाश निर्हेतुक न माना जाये तो किसी भी पदार्थ का कभी विनाश ही नहीं हो सकता। लेकिन उत्पाद रूप मोक्ष को अष्टाग निमित्तक मानता है। (इस विषय मे विशेष न्याय ग्रथो से जानना चाहिए)

33. क्या मतार्थ महान ? नहीं, ड्रायवर नहीं, गाड़ी भोगे भुगतान।

बौद्ध नाश स्वत· होता है ऐसा कहते हैं और तथा कथित मुमुक्षु कहते हैं नाश अपनी योग्यता से हुआ करता है। इनके पास भी कुतर्क है कि लकडी को अग्नि नहीं, अपितु वह अपनी योग्यता से जलती है। यदि अग्नि लकडी को जलाती है तो पत्थर को भी जलादे/ यदि पत्थर को नहीं जलाती तो लकडी को भी नहीं जलाती। वस्तुत अग्नि पत्थर को भी जलाती है, लेकिन वह लकडी जैसा जलता हुआ दिखने मे नहीं आता। उसका अग्नि के सयोग से गरम होना ही उसका जलना है।

एक बार बस से कुचल कर एक बिल्ली मर गई। लागो ने कहा-ड्रायवर साहब ! आपको हत्या का पाप लगेगा या लगा। उन्होने कहा- मुझे क्यो लगेगा या लगा। इस गाडी को लगेगा या लगे। उसी प्रकार इन मुमुक्षुओ से कोइ अपराध होने पर कोई कहे कि इस अपराध का दण्ड तुम्हे भुगतना पडेगा, तब इन्हे इसी तरह आत्मा को निर्दोष कहते हुए कहना पडेगा कि हम क्यो भुगते भुगतेगा यह शरीर। "स्त्री मुक्ति का समर्थक" एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नही करता"। इस मान्यता को सिद्ध करने वाला यह स्वच्छदी कुन्द कुन्द से भी एक कदम आगे बढ गया अर्थात् जीवो का मरण आयु कर्म के क्षय मे न होकर योग्यता से ही होता है। बिल्ली पालतू जानवर नहीं थी अत शासकीय दण्ड से बच गया। यदि पालतू पशु या कोई मनुष्य होता तो क्या पुलिस के सामने उपरोक्त सफाइ देकर या वह अपने आयु कर्म के नाश मे मरी है गाडी या मुझमे नही। अथवा वह ड्रायवर तथाकथित मुमुक्षु होता तो योग्यता से मरी ऐसा कहकर दण्ड से बच सकता था क्या ? नहीं। उत्पाद का भी निर्हेतुक कह गया इसलिये उस सत्कार्य वादी साख्य से सामजस्य बेठाना पडा और कहना पडा कि कुम्हार मिट्टी से घडा नही बनाता, अपितु मिट्टी मे घडा पहले से ही मोजूद है। तब तो इसे द्रव्य का लक्षण उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य ही न मानकर मात्र ध्रौव्य ही द्रव्य का लक्षण मानना चाहिए साख्य की तरह, क्योकि उसकी दृष्टि मे उत्पाद व्यय कोइ चीज नही है अविभाव (व्यक्त) और तिरोभाव (अव्यक्त) के सिवाय। तथाकथित मुमुक्षुओ की मान्यता है कि आत्मा हमेशा शुद्ध रहती है। शरीर से जो भी अनाचार होते है उससे आत्मा का कुछ भी नही बिगडता। इन्हीं के अनुसार आत्मा को कर्मो ने कभी छुआ ही नही है। जैसे मेघ सूर्य-चन्द्रमा को कभी छूत नही है। साख्य की भी तो यही मान्यता कि जो कुछ भी बनता बिगडता प्रकृति (पुद्गल) का आत्मा तो हमेशा निर्लेप रहती है। भोक्ता मात्र होता है।

आश्रव एव बधतत्त्व का श्रद्धान सम्यग्दर्शन न हो तो उनके विषय मे कुछ भी कल्पना करके उदाहरण सहित कुतर्क खोज लेने मे आश्चर्य नही है मिथ्याज्ञान मे कर्म कर्म से बधता है आत्मा से नही जेसे गाय के गले मे रस्सी। रस्सी से रस्सी बधी रहती है

न कि रस्सी से गाय या गाय से रस्सी। इस दुर्बल तर्क को अल्पज्ञ भी काट देगा कि यदि रस्सी से रस्सी बंधी है तो रस्सी के खींचने पर रस्सी ही आनी चाहिए गायें नहीं, लेकिन आती गाय भी है। पूज्य वाद स्वामी ने सर्वार्थसिद्धि ग्रथ म-"आत्मा एव कर्म प्रदेशो का आपस मे प्रवेश हो जाने का नाम बध है" ऐसा कहा है।

34. क्या मतार्थ महान ? नहीं, कुशील से अनजान होता ब्रह्मचर्य ज्ञान।

जब आत्म श्रद्धान मात्र को सम्यग्दर्शन माना जाये तो इन्हे मजबूरी में ही आत्म ज्ञान को ही सम्यग्ज्ञान मानना होगा। ऐसी स्थिति मे स्व से अतिरिक्त भिन्न पदार्थों को जानने वाले ससारी जीवो का ज्ञान मिथ्या सिद्ध होगा, अर्हन्त एव सिद्धो का, पर को जानने वाला, ज्ञान भी मिथ्या सिद्ध होता है। यहा यह भी कहा जाता है कि "जो-जो देखी वीतराग ने सो-सो हो सी वीरो रे, अनहोनी नहि हो सी वीरा काहे होत अधीरा रे" अर्थात् ईश्वर कर्तृत्व वादियो के समान पूर्वा पर विरुद्ध कथनी हे इनकी। गीता मे एक ओर जहा यह कहा गया हे कि ईश्वर की इच्छा के बिना पत्ता भी नहीं हिल सकता वहीं दूसरी ओर यह भी कहते है कि कर्तृत्व न कर्माणि न लोकस्य सृजति प्रभू। न कर्म फल सयोग स्वभावास्तु प्रवर्तते। अर्थात् ईश्वर न किसी का कर्ता है, न किसी का कर्म है, न लोक का बनाने वाला हे, और न कर्मो का फल देता हे, अपितु जा कुछ हो रहा है वह स्वभाव से हो रहा हे। उसी प्रकार यहाँ भी एक ओर पर को जानना मिथ्या हे ओर सर्वज्ञ हमारे विषय मे जहाँ, जिस समय जो जानेगे वही होगा। यह भी पूर्वापर विरुद्ध बात है। अत इन दोनो मे कोई अन्तर नही हे सिवाय ईश्वर कर्तृत्व एव ज्ञातृत्व के। एसी स्थिति मे निमित्त रूप से भी पर का पर का कर्त्ता नही मानने वाले भी ईश्वर कर्तृत्व वादियो का खण्डन किस रूप मे करते है, क्याकि नियतवाद तो दोनो मे समान हे।

जेन सिद्धात के अनुसार ज्ञान स्व पर प्रकाशी हे दीपक के समान। जेनतर मत म एक ऐसा भी मत है जो ज्ञान का स्व- प्रकाशी अर्थात् अपने आप को जानने वाला है ऐसा नहीं मानता। उसका तर्क है कि जेसे तलवार कितनी भी पेनी क्यो न हो अपने आपको नही काट सकती कितना भी अच्छा नाचने वाला क्यो न हो अपने कधे पर पेर रखकर नाच नही सकता। उसी प्रकार ज्ञान कितना भी जाने, लेकिन अपने आपको नहीं जान सकता। यहाँ हम उन लोगो से पूछना चाहते है कि ज्ञान का, पर पदार्थों को जानना मिथ्या क्यो है ? किसी भी कारण से मिथ्या है तो उन्हे मिथ्या न कहकर ज्ञान पर को जानता ही नहीं ऐसा ही कहना चाहिए, जिससे ज्ञान को आत्म प्रकाशी न मानन वालो म और आप मे थोडा ही अन्तर रह जाये।

मीमासक सर्वज्ञ को नहीं मानता। उसका कहना है- निष्प्रयोजन कीडे-मकोडो की गिनती करने से क्या लाभ। उसी प्रकार इन्हे भी, जब पर पदार्थो को जानना निष्प्रयोजन है तब सर्वज्ञ की कल्पना करना ही नही चाहिए। साख्य का ऐसा भी मानना है कि प्रकृति (पुद्गल) पुरुष के भेद का ज्ञान लेना ही आत्मा का मोक्ष है और कोई अनुष्ठान (चारित्र) करने की आवश्यकता नही है। उपरोक्त मान्यता मे उनके क्रिया कलापो से ऐसा ही प्रतीत होता है कि श्रद्धान के साथ आत्मज्ञान स उनकी नैया पार हो जायेगी। एक पण्डित जी कह रहे थे-महाराज ! पर को जान से क्या लाभ अपने आप को ही जान लेना चाहिए ? हमने कहा-पण्डितजी ! एक छोटी-सी-लडकी ने, एक दम्पत्ति को एक आचार्य के समक्ष ब्रह्मचर्य व्रत लेते देखा, सुना। हमसे पूछने लगी- महाराज श्री ! ब्रह्मचर्य व्रत किसे कहते हैं ? हमे उसे क्या उत्तर देना चाहिए था ? वे कहने लगे-क्या उत्तर दिया था आपने ? हमने कहा था जब तुम बडी हो जाओगी तब स्वय समझ जाओगी। ब्रह्मचर्य गुण हैं और कुशील दोष। "बिन जाने तें दोष गुनन को कैसे तजिए गहिए" छहढाला की इस पक्ति को आप प्रमाण मानते है ? हाँ। तब तो आपको यह निश्चित समझना चाहिए कि जिस प्रकार ब्रह्मचर्य गुण का ज्ञान कुशील दोष के ज्ञान के बिना नही हो सकता। उसी प्रकार स्व का ज्ञान पर के ज्ञान बिना नही हो सकता। इस विषय मे वर्णी जी का वह उदाहरण भी बडा रोचक है।

दो भाई बनारस मे रहकर एक साथ अध्ययन किया करते थे। घर वापिस आने पर बडे भाई का विवाह हो गया लेकिन वह पत्नि के साथ नहीं सोता था। पत्नि ने यह बात अपनी ननद से कही ननद ने अपनी मा से कही। माँ ने लडके से कहा- बेटा बहू के साथ सोया करो। उसने कहा-होता क्या है सोने से ? बच्चे होते है। कहने लगा। - हम दोनो भाई बनारस मे साथ ही सोते थे लेकिन बच्चे नहीं हुए। इस घटना से स्पष्ट हो जाता है कि ब्रह्मचर्य गुण का ज्ञान कुशील दोष के बिना नहीं हो सकता। इस 'मतार्थ काण्ड' का विषय "मतार्थ काण्ड" मे तो मिलेगा ही। विषय को अच्छी तरह से स्पष्ट करने के लिए इस समीक्षा के विभिन्न काण्डो मे भी दिया गया है। इतना ही नही। किसी भी काण्ड का विषय उसी काण्ड मे तो मिलेगा ही अन्य काण्डो मे भी प्रसग वश मिलेगा पढने के लिये।

35. क्या जिनागम महान ? नहीं, हम जिसकी कहें, उसकी खोलो दुकान।

लोग पूछते ही रहते है- चार प्रकार के दान मे सर्वश्रेष्ठ कौन है ? कहा जाता है- सर्वथा कोई किसी स कम नही है। समय-समय पर सभी अपने आप मे महत्वपूर्ण हैं। जिस समय शरीर को भोजन की आवश्कता है उस समय विचार करे अन्न (आहार) के अतिरिक्त कौन दान उपयोगी होगा ? अन्य कोई नहीं। समाधि के समय ज्ञान दान महत्वपूर्ण होता हे विशष रूप से। उसी प्रकार चारो अनुयोगो मे सर्वश्रेष्ठ कौन है इसका उत्तर भी वैसा ही होगा कि काई किसी से कम नहीं हैं।

भाजन करन एव धन कमाने के विषय मे लोगो की भिन्न-भिन्न रुचि होती है। झगडे की स्थिति वही पेदा हाती है, जब हम हर किसी को अपनी रुचि के अनुसार चलाना चाहते हे हर किसी क्षेत्र मे। कभी किसी की रुचि प्रकृति के अनुकूल भी होती है और प्रतिकूल भी। प्राय शारीरिक हो या आत्मिक रोग की स्थिति मे व्यक्ति की रुचि प्रकृति के प्रतिकूल हुआ करती है। वैसी स्थिति मे रुचि मे हस्तक्षेप करना उचित भी है सर्वथा नहीं। किया भी नहीं जाता। विवेकी करता भी नहीं। विषयानुरागी जीवो को उनकी रुचि के प्रतिकूल चलाने का प्रयास करना एव चलाना यह भी उचित ही है। प्रसग मे, मिथ्यात्व एव विषयानुराग के पोषक साहित्य/पुस्तको को पढने की रुचि रखने वालो की रुचि के प्रतिकूल चलाने का प्रयास उचित ही है। समत भद्र जी जैसे आचार्य के अनुसार चारो अनुयोग धर्मानुराग रूप ही है। इनमे से किसी एक के विषय को पढने एव सुनने/समझने की रुचि अनुचित नहीं है अनुचित हे इसमे हस्तक्षेप करना कि प्रथमानुयोग नहीं द्रव्यानुयोग ही पढना चाहिए खासकर।

आश्चर्य की बात है कि धन कमाने एव भोजन करने की रुचि के बारे मे वे लोग भी हस्तक्षेप नही करते जो ज्ञान के विषय मे हस्तक्षेप करते हैं। ''मुण्डे-मुण्डे मति भिन्ना'' इस सुयुक्ति के अनुसार न चल कर सभी को एक डण्डे से हाकना चाहते है। लोक व्यवहार मे यथावसर चारो अनुयोग का सहारा ले लेते है, लेकिन, ज्ञान के क्षेत्र मे तीन की उपेक्षा कर देते है। कारण कि आगे कहे जाने वाले तरीको को प्रथमानुयोग आदि शब्दो से नहीं कहा जाता- एक बालक चलते-चलते गिर पडा, चोट लग गई, रोने लगा। मा ने समझाया बेटा ! रोते नहीं है। देखो ! तुम्हारे पिता भी गिर गये थे एक दिन साइकिल से, लेकिन तुम्हारे जैसे रोये नहीं, इसे कहते है-प्रथमानुयोग। इतने पर भी वह चुप नहीं होता तो कहती हे- तुमने अपनी बहन को चिढाया था/मारा था, इसलिए गिरे, अब नहीं चिढ़ाना इसे कहते हैं- करणानुयोग। इतने पर भी समझ मे नहीं आता, अत कहा जाता है तुम देखकर नहीं चले

इसे कहते हैं चरणानुयोग। यह जरूरी नहीं है कि उसे इस उपाय से समझ मे आ ही जाये अत अन्त मे एक उपाय और अपनाया जाता है कि अरे तूँ नहीं गिरा, अपितु घोडा कूदा इसे कहते हैं-द्रव्यानुयोग। चारो के अतिरिक्त कोई और उपाय नहीं है समझाने का। हों भी तो वे इन्हीं मे शामिल है। भिन्न भिन्न व्यक्तियो को छोडिये एक ही व्यक्ति के जीवन मे अन्य-अन्य समय मे आने वाली विभिन्न परिस्थितियो में और उनसे होने वाले विभिन्न सकलेश परिणामो से बचने के लिये किसी एक उपाय/अनुयोग से उसे समझ मे आ ही जाये आवश्यक नहीं। अत जीवो की रुचि को देखते हुए ही उन्हे सलाह देना आवश्यक है कि तुम्हे किस समय किस अनुयोग का अध्ययन करना चाहिए।

36. क्या जिनागम महान ? नहीं, पढ़ाते समयसार खिलाओं मेवा मिष्ठान। उसका वहाँ मरना हुआ सभी को वरदान।

यह तो अनुभव की बात है कि अन्य अनुयोगो की अपेक्षा प्रथमानुयोग को समझ ना सहज है चरणानुयोग समझना भी उतना कठिन नहीं है जितना अन्य दो अनुयोगो का विषय। द्रव्यानुयोग एक ऐसा गरिष्ट लड्डू हैं जिसे खा तो जाता हे बिना दात (असयमी) वाला भी, लेकिन उसे पचाना दातो (सयमी) वालो के लिये मुश्किल पडता हैं। इस अनुयोग की दाँतो की कम आँतो को विशेष रूप से परिश्रम कर पचाने की आवश्यकता होती हैं। और करणानुयोग को आतो की कम दाँतो की विशेष रूप से आवश्यकता होती है। "बूढे बारे एक समान" इसके अनुसार दातो एव आतो के विषय मे प्राय एक जैसी ही स्थिति होती हैं, बचपन एव पचपन मे। बच्चे तो विवेकहीन होते ही हैं कुछ भी खा लेने के विषय मे, बूढो की भी प्राय यही स्थिति होती हैं। ऐसी कोई अविवेकी माँ नहीं होगी जो बेटे को दो पाव दूध की जगह उसी का घी बनाकर खिला/ पिला देती हो। कोई ऐसा करे तो क्या होगा उस बेटे का।

द्रव्यानुयोग तीन अनुयोगो का मथित रूप हैं जिसे पचाने के लिये सयम रूपी जठरागनी की आवश्यकता है। जिस असयमी की समीक्षा की जा रही है वह पापानुबधी पुण्यात्मा था, अत समय सार जैसा लड्डू पा गया कही। खातो गया, लेकिन पचा न सका। उस अनपच का दुष्परिणाम उसने तो भोगा ही, दुर्गति मे भोग रहा होगा, आगे भोगेगा। साथ ही सारी समाज भोग रही हैं सघर्ष के रूप मे। पति-पत्नि पिता- पुत्र माँ-बेटा भाई बहन एव कुटुम्बियो, रिश्तेदारो मे भी सघर्ष चल रहा है। द्रव्यानुयोग ही नहीं शरीर को दिया जाने वाला भोजन भी नहीं पचा सका। वह अनपच तत्काल अनुभव मे नहीं आया क्योंकि पापानुबधी पुण्य उस समय साथ था, लेकिन जब पापानुबधी पाप का उदय आया तो वह एक ऐसे असाध्य रोग से ग्रस्त हो गया कि जिसका कोई इलाज नही था। लेकिन ऐसे पाप के उदय के कारण वह यह नहीं समझ पाया कि अनपच का कारण क्या है। यही

कारण है कि इस पाप ने उसे पाप करने के लिये ही प्रेरित किया और अन्त तक करता रहा। सहयोगी भी ऐसे ही मिले जिन्होने पाप के समान पाप करने के लिये उकसाया। एक सौ बीस वर्ष तक जीने का प्रलोभन दिया। ऐसा होना भी तो जैन समाज के लिये वरदान हुआ कि जसलोक से अधोलोक जाने वाला उर्ध्वलोक गमन मे सहायक कैसे हो सकता हैं यही सोचकर जो उससे जुडने वाले थे पीछे हट गये। जो किसी कारण जुड गये थे उनमे से अधिकाश लोग कट गये।

एक वृद्ध अपने छोटे से पोते को लेकर हमारे पास आया। कहने लगा- महाराज! हमने इसे समयसार की कुछ गाथाएँ याद कराई हैं। इसने की हैं। हमने कहा- इसके अतिरिक्त और क्या सिखाया? कहने लगे- अभी और कुछ नहीं सिखाया। भोजन मे क्या खिलाते हो इसे? कहने लगे - दाल, रोटी, सब्जी वगैरह। हमने कहा- इसे तो बादाम, पिस्ता, खसखस का हलुवा खिलाया करो जब समयसार याद करा रहे हो तब। कहने लगे- महाराज! उपरोक्त हलुवा की बात तो छोडिये अभी तो यह दूध भी नहीं पचा पाता। हमने कहा- फिर यह समयसार केसे पचा लेगा। तुम्हे विवेक से काम लेना चाहिये कि हमे किस समय क्या करना और कराना चाहिये।

लोकिक शिक्षा मे पहले बालक को पहली कक्षा मे बैठाकर गिनती, दूनियाँ क,ख,ग आदि सिखाया जाता हैं न कि मेट्रिक की कक्षा मे बैटाकर अर्थ शास्त्र, नागरिक शास्त्र, इतिहास, भूगोल शास्त्र। समयसार मुनियो/ साधुओ को पढने एव जीवन मे उतारने वाला शास्त्र है। अत इसे पहले श्रावकाचार सिखाओ। कहने लगे- महाराज! श्रावकाचार सिखाने से तो वह व्यवहार मे ही अटक जायेगा। हमने कहा- समयसार सिखाने से भी तो वह निश्चय मे ही अटक जायेगा। पूछा जाये उससे कि समय सार पढने का क्या लक्ष्य है उसका। शायद हैं वह बता सके। पूछने पर नहीं बता पाया। कहने लगे - महाराज! समयसार पढ कर वह अपना लक्ष्य बना लेगा। हमने कहा- आप लोगो जैसा कहने लगेगा, हम सम्यग्दृष्टि बन गये और हमारे द्वारा भोगे जाने वाले भोग निर्जरा के कारण हैं। फिर उसे भोगों को भोगने मे दिन का भेद रहेगा न रात्रि का। न हिसा का भेद रहेगा न अहिसा का।

37. क्या जिनागम महान? नहीं, निवास स्थान पर होगा शंका- समाधान।

"आगम" शास्त्र का पर्यायवाची शब्द हैं और शास्त्र चारो अनुयोगो के ग्रथो को कहा जाता है, लेकिन जिनकी यहाँ समीक्षा की जा रही है उनकी दृष्टि मे चारो अनुयोग आगम नहीं। इनका आगमार्थ मोक्ष मार्ग प्रकाशक एव समयसार तक सीमित है। इनका आगमार्थ प्राय इन्हीं से प्रारभ होता है और इन्हीं से अन्त हो जाता है। इनके अतिरिक्त जिन

शास्त्रो से इनकी स्वार्थ सिद्व होती है उन्हे भी कदाचित् प्रयोजनीय मान लिया जाता है। एक आचार्य के द्वारा रचित अनेक ग्रथो मे जो इनकी मान्यता के अनुकूल होते हैं, वे प्रमाणिक है/ आगमार्थ हैं शेष अप्रामाणिक/ अप्रयोजनीय। इन्हे पढना मिथ्या है या समय बर्बाद करना। इतना ही नहीं, एक तत्त्वार्थ सूत्र को ही ले तो उसमे इनकी दृष्टि मे उमास्वामी ने बीच के कुछ अध्याय व्यर्थ लिखे हुए है, अत उन्हे पढना निष्प्रयोजन है।

एक पण्डित, "कुन्दकुन्द सुयुक्तियाँ" नामक एक छोटी -सी पुस्तिका भेट करने लाये थे। उमे आद्योपान्त (आदि से अन्त तक) देखकर ऐसा लगा कि इन्हे कुन्द कुन्द स्वामी द्वारा रचित किन्हीं किन्हीं गाथाओ के चार चरणो मे तीन चरण निष्प्रयोजनीय हैं, जैसे "भावेण होई णग्गो" यह गाथा का एक चरण है। इतना मात्र लिखकर वे पाठको को यह बताना चाहते हैं कि भाव से ही नग्न होना चाहये द्रव्य से नग्न होने की आवश्यकयता नहीं है। लेकिन शेष तीनो चरणो को पढने से लगता है कि कुन्द कुन्द स्वामी का ऐसा अभिप्राय नहीं है जैसा इस कुदृष्टि ने निकाला है। हमने लोगो के माध्यम से पुछवाया- "न देवा" इस सूत्र का क्या अर्थ इसे आगे पीछे के सूत्रों को देखे बिना, बताओ। वे सिवाया टाला मटोली के और कुछ न कह सके। एक पण्डित के विषय मे सुना है- कह रहे थे- यदि समयसार जैसे अध्यात्म ग्रथो को टोडर मल जी जैसे पण्डित ने लिखे होते तो हम आचार्य मात्र को पीठ दिखा देते। विचारे की ये कभी आगमार्थी हो सकते है? कदापि नही। इन्हे पूरे चार माह भी तो नहीं लगते पण्डित/ उपदेशक बनने म आग पण्डितो की सूची मे आ जाते हैं। "अधरो मे कनमा राजा" के अनुसार वहाँ तो चल जाता हैं इनका जहाँ के लोग धर्म के विषय मे न के बराबर ज्ञान रखते है, अत तोते जैसा रटा या रटाया गया, वही बोल जाते हैं। टेप रिकार्ड जैसा बोलने से उसी की तरह उत्तर नहीं दे पाते, जहाँ क श्रोताओ का प्रश्न इनकी योग्यता का उल्लघन कर जाता है या फिर उस समय टाल दिया जाता है यह कहकर कि आपकी शका समाधान बाद में किया जायेगा, क्योकि यह समय उपदेश का है शका- समाधान का नहीं। इन्द्र भूति गोतम जेसे ओर कह ही क्या सकते यदि समाधान की गुजाइश न हो तो। हमारे निवास स्थान पर आ जाना वहाँ आपका समाधान करेगे, क्योंकि सभी के सामने साहस कहाँ होता है, समाधान करने का।

पण्डित को, निरुत्तर होने की स्थिति मे अपमानित होने से बचाने के लिये उसके पक्ष मे लोग भी तो बैठे रहते हैं। जैसे ही किसी विपक्षी ने प्रश्न किया पक्ष वालो के द्वारा उसे यह कहकर चुप करा दिया जाता हैं कि आप लोग पूरा-पूरा तो सुनते हैं ही नहीं और प्रश्न करने लगते हैं। अभी सुनिये पण्डित जी क्या कहने वाले हैं। आपका समाधान बिना पूछे ही हो जायेगा। जब दस- पाँच लोग चुप कराने का प्रयास करेगे तो बिचारा अकेला बोल कैसे पायेगा।

38. क्या जिनागम महान? नहीं, अभ्यासियों की ऐसी दशा बरसाती हेरान।

एक पहुचे हुए पण्डित से ज्ञात हुआ कि पण्डितो को सभा कुशल होना चाहिये और यह कला सभी मे नहीं पाई जाती। प्रत्युत्पन्न मति होना भी एक कला है जो विरले लोगो मे ही पाई जाती हैं एक पण्डित जैसे ही शास्त्र गद्दी पर बैठे ही थे कि श्रोताआ ने प्रश्न करना प्रारम्भ कर दिया। तत्काल उन्हे उसका कोई उत्तर नहीं सूझा। उन्होंने युक्ति से काम लिया। कहने लगे- तुम लोगो का तो एक ही काम हैं- प्रश्न करना और कुछ नहीं। उसका भी तत्काल उत्तर चाहिये। यहाँ तो खजाना भरा है। अब देखना होगा कि तुम्हारे प्रश्न का उत्तर किस कौने मे पड हुआ है खजाने के। अभ्यासियो की यह दशा बरसाती मेढको के क्या कहने।

गुणभद्र आचार्य कहते हैं - वक्ता को प्रश्न सहा होना चाहिये सभा कुशल ही नही। सभा मे सभी प्रकार के श्रोता हुआ करते हैं अत उपदेशक को आगमार्थी होना परम आवश्यक हैं और ऐसा होना चारो अनुयोगो का अभ्यासी हुए बिना नहीं हो सकता तब प्रत्येक श्रोता की सतुष्ट कैसे किया जा सकता है। इतना तो निश्चित ही है कि जिसे तत्त्व को जानने की तीव्र उत्कठा हो साथ ही उदाहरणो के बिना समझने की क्षमता हो उसे उदाहरणो की आवश्यकता नहीं पडती, लेकिन ऐसे श्रोता कम ही होते हैं।

गुरु शिष्यो को अध्यात्म ग्रथ का अध्ययन करा रहे थे। एक गृहस्थ श्रोता ने निवदन किया- महाराज श्री! आप तो कोई चुट कुला सुनाईये? महाराज ने कहा- एक व्यक्ति हलवाई की दुकान पर पहुचा। कहने लगा- पुढी क्या भाव हे? उन्होने कहा- चार रुपया किलो। और सब्जी? उत्तर मिला- वह तो मुफ्त मे ही मिला करती है। वह कहने लगा तब तो सब्जी ही सब्जी दे दो। हलवाई ने कहा- खाली सब्जी नही मिलती पुढी के साथ मिलती है। उसी प्रकार गुरुजी ने कहा- खाली चुटकुले नहीं मिलते सिद्धात व अध्यात्म के साथ मिला करते हैं। भोजन अच्छा क्यो न हो अधिकाश लोग बिना चटनी पापड के गले नही उतार पाते। हमे तो प्रतिदिन अवसर आता है उपदेश दने का अत काफी सकट हे श्रोताओ के।

खासकर प्रथमानुयोग को हेय दृष्टि से देखने वालो का भी श्रोताओ की रुचि अनुसार मजबूर होता ही पडता है हेय बुद्धि से पढने के लिये भल्ले ही पाच मिनिट ही क्या न पढा जाये। एक श्रोता ने वक्ता महोदय से पूछा- यह बात सही है कि भीम जब लडते थे, तब पेड उखाड कर लडते थे? उन्होने कहा- मुझे क्या मालुम। मैंने तो इसमे जैसा लिखा हैं सो पढ दिया अर्थात् वक्ता की दृष्टि मे गप्पे थी। जिज्ञासु ने बार बार पूछ कर जानने की कोशिश की। वक्ता को क्रोध आ गया और अपशब्द बोल गया। जिज्ञासु ने कहा- कल से गद्दी पर बैठा तो उठाकर बाहर फेक दूगा।

39. क्या जिनागम महान? नहीं, टी.वी. पर रामायण ज्ञेय, हेय पद्मपुराण?

बात उस समय की है जब हम एक विद्वान के सानिध्य मे गोम्मटसार ग्रथ का अध्ययन कर रहे थे। इस विषय का अध्ययन लगभग दो घटे चला करता था। अन्त मे विद्वान करीब आधा घटे तक प्रथमानुयोग पढा करते थे, किन्तु कुछ लोग वहाँ से उस समय उठकर चले जाते थे क्योकि उनकी दृष्टि मे वह आगम नहीं था। सयोग की बात है कि उसी शहर मे एक पण्डित द्रव्यानुयोग की क्लास लगाया करते थे। उन्हीं दिनो टी वी पर रविवार के दिन स्वाध्याय के समय मे ही रामायण दिखाई जाती थी। द्रव्यानुयोग को ही उपादेय मानने वाले उस दिन उसकी उपेक्षा करके रामायण देखने चले जाते थे। पण्डित जी ने एक दिन एक श्रोता से पूछा- कल क्यो नहीं आये क्लास मे? उत्तर मिला- प्रथमानुयाग दखते रहे। पण्डित जी ने उस फटकारते हुए कहा- शर्म नही आती, महापुरुषो क चरित्र को कपोल- कल्पित करके लिखे/ दिखाये जाने को प्रथमानुयोग कहते हुए। उसने सफाई दी- हम उसे उपादेय बुद्धि स थाडी देखते है, अपितु हेय बुद्धि से देखते है। साथ ही यह भी समझ कर देखत है कि इसमे कितना काल्पनिक और कितना वास्तविक। हमने विचार किया- इनका इस प्रकार सफाई देना आत्मवचना के अतिरिक्त ओर क्या हो सकता है। जब इन्हाने पद्मपुराण पढा नही, पढने से पहले उसे हेय समझ लिया, तब क्या ये तुलना कर सकते ह कि इसम सत्य क्या है ओर असत्य क्या है। दूसरी बात यह है कि पद्मपुराण सुनने/ पढन म इनका समय बर्बाद होता था, लेकिन टी वी पर रामायण देखना समय की सार्थकता थी। ऐसी स्थिति म यह कहा जा सकता है कि प्रथमानुयोग का हेय कहना इनकी निजी धारणा है या दूसरो क द्वारा ऊपर से थोपी गई ह।

इन भोल भाले लोगा को यही तो सिखाया गया है या जाता है कि प्रथमानुयोग पढन म आत्मा म राग-द्वेष पेदा होते है। विचार कर कि टी वी देखने वाल अपने ही अनुयायिया का इतनी ही कट्टरता मे निषेध करत हागे। जितना कि प्रथमानुयोग के निषध म कट्टर ह। साधन सम्पन्न एसा कोइ तथा कथित मुमुक्षु नही होगा जिसके पास टी वी न हा। एसा कहा जा सकता है कि प्रथमानुयोग के ग्रथ नहीं है। जिनके पास थ उन्होने उन्हे सडास मे डाल दिया है लेकिन टी वी भोजन शाला मे रखी गई है क्योकि वह उपादेय है। प्रथमानुयाग का तर्क देकर हेय कहने का एक बहाना यह भी होता कि उनमे श्रृगार रसमय कुछ बात ऐसी लिखी होती है जिन्हे सामूहिक रूप से पढने मे शर्म आती है, लेकिन इन्हे एसा करन का अधिकार कहाँ है जब ये टी वी के सामने सपरिवार बैठकर बलात्कार जसी लज्जा जनक घटनाये देखा करत है जिसे एक सभ्यपरिवार देख नहीं सकता। वहाँ सतान क बिगड जान का भय नही है।

लड्डू कितनी ही मेहनत से क्यों न बनाया गया हो या कितनी कीमती वस्तुओ से क्यो न तैयार किया गया हो। उसमे विष मिल गया हो या विष मिले होने का सदेह हो तो उसको अपनाया नहीं दफनाया ही जायेगा, वैसा ही करना चाहिये। कुन्द- कुन्द स्वामी ने समयसार जैसे लड्डू का निर्माण/ तैयार किया, लेकिन इन तथा कथित मुमुक्षुओं ने उसमे एकान्त रूपी विष मिला दिया, भावार्थ एव विशेषार्थ के रूप मे। अब कौन विवेकी होगा जो इन्हे जान बूझकर अपनाएगा। अपनाने वालो को न जाने कितने बार मरना होगा जन्म लेकर। विवेकियो ने ऐसे विष मिश्रित लड्डूओं को मदिर मे रखने से इकार किया तो इन्होने भी प्रथमानुयोग के ग्रथो का बहिष्कार करना प्रारम्भ कर दिया, लेकिन सीधे- सीधे नही मायाचार से। अर्थात् दर्शन करने के बहाने थेले मे अपना शास्त्र लायेंगे उसे मदिर जी मे रखकर, लोगो की आँख बचाते हुए प्रथमानुयोग का शास्त्र थेले मे रखकर घर ले जायेगे। इसके अतिरिक्त देखा यह गया है कि अन्यकार्यों मे भी मायाचार करने मे माहिर होते हैं। यह आगमार्थी न होने का परिणाम है।

40. क्या जिनागम महान ? नहीं, मरो या मारो ऐसा उसका श्रद्धान।

यह पहले भी कहा जा चुका है कि चारो ही अनुयोगो को ''आगम'' शब्द से कहा गया है, लेकिन जब अध्यात्म शब्द क साथ ''आगम'' का प्रयोग किया जाता है, तब उसका अर्थ भिन्न ही होता है। निवृत्ति एव प्रवृत्ति के भेद से मोक्ष मार्ग दो प्रकार का है। आगम भाषा मे उपाधि सहित जीव को जीव कहा जाता है जैसे मनुष्य तिर्यञ्चादि, किन्तु अध्यात्म भाषा मे उपाधि गौण होती है अर्थात् मनुष्यादि को जीव नहीं माना जाता। अत हिसाहिसा का विचार आगम दृष्टि म ही किया गया है/किया जाता है अध्यात्म दृष्टि मे नहीं। प्रवृत्ति मार्ग मे आगम दृष्टि ही अपनाई जाती हे अध्यात्म नही। इसी अपेक्षा से ''धम्मो दया विशुद्धो'' एव ''अहिसा परमोधर्म '' धर्म की ये दो परिभाषाये आगम मे ही उल्लेख की गई हैं। 'जियो और जीने दो' यह नारा भी लगाया जाता हे अहिसको के द्वारा। अध्यात्म दृष्टि मे प्रवृत्ति मार्ग माक्ष माग न होने से उपरोक्त परिभाषाये महत्वहीन हैं इस दृष्टि मे।

''एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं करता'' ऐसी मान्यता वालो के सामने निम्नलिखित आक्षेपो का लगना स्वाभाविक है ''जियो और जीने दो'' ऐसा नारा लगाना बिल्कुल निरर्थक हे/ मिथ्या है। जिसकी समीक्षा की जा रही हे उसने बडी निर्भीकमता स कहा हे कि ''जियो और जीने दो'' ऐसा अज्ञानी लोग कहते हे। अर्थापति से यह अर्थ लगाना अनुचित नही होगा कि ''मरो ओर मारो'' ऐसा तथा कथित मुमुक्षुओ के गुरु का कहना हे। क्योकि प्रवृत्ति मे दोनो मे से कोई एक ही नारा क्रिया मे आ सकता है। एक असत्य को सत्य सिद्ध करने के लिये ''जियो और जीने दो'' असत्य कहना होगा उपरोक्त आक्षेप को गलत सिद्ध करने क लिये।

मालिन श्रद्धा से प्रेरित होकर भगवान के सामने अगरबत्ती जलाकर रख देती थी, लेकिन ये तथाकथित मुमुक्षु उसे निकाल कर वेदी से बाहर कर देते थे, यह दलील देते हुए कि इसके जलाने से तो जीवो की हिसा तो होती ही है, उसके धुये से भी जीव हिसा होती है और जिन चीजो से ये तैयार होती है वे अशुद्ध तो हैं ही साथ ही हिसामय भी हैं। हिसा के ही कारण आरती जलाने, आरती करने का भी निषेध करते है, क्योकि उस जलाने से अग्नि काय के जीवो की हिसा तो होती ही है साथ ही उसके प्रकाश मे चार इद्रिय जीवो की भी हिसा होती है। इसी हिसा के भय से द्रव्य से पूजन एव अभिषेक का भी निषेध करते है। विचारणीय है कि ये यदि आगमार्थी होते अर्थात् आगम के अध्ययन के साथ साथ उस पर श्रद्धान होता तब क्या स्वार्थ या अवसर बाद से प्रेरित होकर पूर्वापर विरुद्ध बोलते या चल सकते थे ? "एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नही करता" इस मान्यता को सुरक्षित रखने के लिये द्रव्य हिसा कोई चीज नहीं है और दूसरी बात हिसा न हो इसके लिये इतनी बारीकी कि इनके समान दूसरा कोई अहिसक हो ही नहीं सकता। विरोध मे बोलने एव लिखने वालो को ये जान से माने की धमकी देते है। क्या औचित्य है जब जीव आयुकर्म के क्षय से या योग्यता से या जब भगवान देखेगे तब जीव मरेगे ऐसी एकान्त मान्यता हो तो।

41 क्या जिनागम महान ? नहीं, सकाल में ही मरते इनके आत्म भगवान।

"एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं करता" इस असत्य को सत्य सिद्ध करने के लिये "अकाल मृत्यु होती ही नहीं" इस असत्य का सहारा लिया। जबकि आगम मे अकाल एव सकाल दोनो प्रकार के मरण का उल्लेख मिलता है। हिन्दू भी अकाल मृत्यु मानते है, लेकिन अकाल मृत्यु का जैसा स्वरूप जिनागम मे बताया है वैसा नहीं मानते। उनका मानना हे कि आयु पूर्ण होने से पहले किसी कारण वश किसी की मृत्यु हो जाये तो वह शेष आयु का पूरी करने के लिये प्रेत योनियो मे भटकता रहता है। जबकि ऐसा नही है अपितु किसी जीव की सौ वर्ष की आयु हैं। यहाँ इतना समझना विशेष है कि जीव के साथ सौ वर्ष नहीं बधे होते है, किन्तु सौ वर्ष तक की स्थिति को लेकर आयु कर्म बधा होता है जो पौद्गलिक है। जिसकी स्थिति दीपक मे तेल की तरह होती है। किसी दीपक मे इतना तेल भर दिया है जिसमे रात भर जलने की शक्ति है क्रम-क्रम से जले तो। अब आवश्यक नहीं है कि वह रात भर जलेगा ही, यदि दीपक फबक जाये तो पाच मिनिट मे ही सारा तेल जलकर समाप्त हो सकता है। हो जाता है , ऐसा देखा भी है। उसी प्रकार आयु कर्म क्रम, क्रम से खिरे तो जीव सौ वर्ष तक जी जाता है जिसे सकाल कहते हैं, लेकिन किसी दुर्घटना से मृत्यु हो जाये तो सौ वर्ष तक क्रमश खिरने वाला आयु कर्म पाच मिनिट मे भी समाप्त हो जाता है। देव, नारकी, असख्य वर्ष की आयु वाले भोग भूमि जीवो की एव चरम शरीरी उत्तम महनन वाले जीवो की अपमृत्यु नहीं होती। शेष जीवो के

लिये कोई नियम नहीं अर्थात् दोनो होती है।

आपसी कलह के कारण पत्नि आग से जलकर मर गई। उसके पति से एक तथाकथित मुमुक्षु कह रहा था- अब आप छह माह तक देव, गुरु शास्त्र की पूजा अभिषेक आदि नहीं कर सकते, छू भी नहीं सकते। उसने कहा- क्यो ? क्योकि अपघात से मरने वालो के सबधियो को छह माह का सूतक लगता है। उसने कहा- ऐसा कहने का तुम्हे अधिकार कहाँ है। जब तुम्हारे अनुसार अकाल मौत ही नहीं होती, तब सूतक मे भेद कैसा ? वे तर्क सुनकर बगले झाकने लगे। दूसरी बात, तुम्हे तो स्व मौत से मरने वालो का तेरह दिन का ही सूतक मानने मे परेशानी होती है या आनाकानी करते हो। सामाजिक बधनो से बधे हो अन्यथा मुर्दे को जलाकर स्नान करने की आवश्यकता भी नहीं पडती। दूसरो को शास्त्र के नियम कानून बता रहे हो। बात बदलते हुए बोले- भगवान ने जिस किसी की जिस समय मृत्यु होती हुई देखी है उसी समय होती है। भगवान के ज्ञान की यही विशेषता है। उन्होने कहा- इतनी ही विशेषता नही, अपितु वे जब किसी जीव के आयु कर्म की दोनो स्थिति देखते हैं तो उनके ज्ञान मे और भी विशेषता आ जाती है कि इस जीव की आयु तो सौ वर्ष की है लेकिन चालीस वष मे ही खिर जायेगी ।

कर्म सिद्धान्त का ज्ञान और श्रद्धान नहीं रखने वाले अपनी किसी बात पर स्थिर रह सकेगे ? नही, कर्म की उदय, उदीरणा आदि दस अवस्थाये हुआ करती हैं। आयु कर्म की उदीरणावस्था न मानी जाये, तब उदयावस्था मानने का भी क्या उपाय है। उसी प्रकार शेष सात कर्मो की उदयादि अवस्था न मानी जाये तो सारा कर्म सिद्धान्त अकिंचितत्कर हो जायेगा, तब जीव की ससार और मोक्ष दशा का क्या होगा ? जिनागम आख एव लवण समुद्र के समान होता है अर्थात् आख के बीच मे कुछ गिर जाये तो वह बीच मे नही रहता। उसी प्रकार आगम मे कोई सर्वथा आगम विरुद्ध बात को मिलाने की कोशिश करे तो उसे वह सहन नहीं करता। अनेक प्रश्न उठाकर विरुद्धता को किनारे कर देता है।

एक महिला अपनी सास को रूढिवादी कहकर शिकायत कर रही थी कि उनसे बहुत परेशान हूँ। जब देखो तब सूतक लग जाती है। स्वाध्याय मे बहुत विघ्न होता है। हमे तो मासिक धर्म के चार-पाच दिन ही वर्षों से प्रतीत होते है।

42. क्या जिनागम महान ? नहीं, क्षेत्रों क्षेत्रों भटकते बनकर मेहमान।

एक बार हम स्वय एक ऐसे बुखार से ग्रस्त हो गये थे जिसके प्रभाव से गन्दी चेष्टाये होने लगीं कि भक्तो ने भूत लगे होने का सदेह ही नहीं अनुमान भी लगा लिया और वैद्य डॉक्टर के साथ एक जैन टुचपुचहा मात्रिक को भी ले आये। उसने हमारे दोनो हाथो की हथेलियो को अपने अगूठे से रगट कर हथेली को सूघा और कहने लगा- निश्चित रूप से कोई न कोई प्रेत बाधा अवश्य है। हमने पूछा- आपने यह सब कहाँ सीखा ? जहाँ भी

सीखा हो अभी अधूरा भी नहीं है अत अभी और सीखो वहीं जाकर। इस तरह सदेह के बल पर भोले-भाले लोगो को गुमराह करना स्व-पर-हित मे नहीं है। इस घटना का इतना या ऐसा ही अर्थ नहीं लगा लेना चाहिए कि किसी को प्रेत बाधा होती ही नहीं। प्रेत बाधा होती है, यह मान्यता तथाकथित मुमुक्षुओ के मूल मान्यता मे बाधक है। जैसे डॉक्टरो के लिये आजीविका मे बाधक है अर्थात् इनकी मान्यता मे भी प्रेत बाधा कोई चीज नहीं है। जिसे भूत तो नहीं लगे होते, लेकिन सदेह अवश्य कर लिया जाता है उस व्यक्ति का इलाज करके अपनी ही पीठ ठोक लेते हैं और कहते हैं प्रेत बाधा कोई चीज नहीं है, लेकिन जहा सच मुच प्रेत बाधा होती है उस समय बगले झाकते हैं जब इनके इलाज से मरीज को कोई लाभ नहीं होता। स्वस्थ अवस्था मे मत्र और मत्रवादियो को मिथ्या/मिथ्यादृष्टि कहने वाले भी ये तथाकथित मुमुक्षु भूत लगने पर महावीर, तिजारा, पद्मपुरादि अतिशय क्षेत्रो के चक्कर लगाते देखे गये हैं और साप, बिच्छू के काटने पर मत्र वादियो (गुनियो) के आगे-पीछे होते हुए भी देखे जाते हैं।

तथाकथित मुमुक्षुओ से उपकृत एक ब्र दीदी भी आईं मुझे देखने के लिये। इन्होंने भी सुन रखा था कि महाराज को भूत लगे है। कहने लगी- ये सब व्यर्थ की बाते है। देव तो वैक्रियिक शरीर के धारी होते है, वे मनुष्य के इस सप्त धातुमय•घृणित शरीर मे प्रवेश करेगे ही क्यो। हमने कहा- दीदी जी आप को भी भूत लगा है। (सुनते ही वे आश्चर्य करने लगीं) आपका मुख बता रहा है कि आप का विवेक नहीं एहसान (उपकार) बोल रहा है, अन्यथा आगम विरुद्ध नहीं बोला जा सकता था। समुघ्दात अवस्था म अर्हन्त के आत्म प्रदेश लोक व्याप्त हो जाते है। उस समय ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जिन्हे उनके आत्म प्रदेश छूते न हो। कम नाश केसे होगा यदि छूने के भय से समुघ्दात न किया जाय तो। अत उपरोक्त तर्क देकर प्रेत बाधा को झुठलाया नही जा सकता। यदि चरणानुयोग का ज्ञान एव श्रद्धान हो तो उनमे लिखा है कि साधुओ को किन-किन लोगो से आहार नही लेना चाहिए। उनमे जिन्हे प्रेत बाधा हो उससे आहार नहीं लेना चाहिए। इन आगम वाक्यो को प्रमाण माना जाये या जो मन मे जिस समय आ जाये वहीं वक देने वाले वाक्य को प्रमाण माना जाये। एक असत्य का सत्य सिद्ध करने के लिये सख्यातीत असत्या का सहारा लिया जाता है उनमे उपरोक्त असत्य भी शामिल है।

43. क्या जिनागम महान ? नही टी.वी. बारे की लुगाई बन गई कोप का स्थान।

कुन्द कुन्द आचार्य ने- द्रव्य, पदार्थ, तत्त्व, अस्ति काय की सख्या के ऊपर श्रद्धान करना ही सम्यग्दर्शन नही, अपितु उनके स्वरूप के ऊपर श्रद्धान करना भी सम्यग्दर्शन है, लेकिन इन्होने असत्य को सत्य सिद्ध के लिये स्वरूप के श्रद्धान को झुठलाने का प्रयास

किया। ''आत्मा को ज्ञान प्रमाण कहा है और ज्ञान को ज्ञेय प्रमाण कहा है और ज्ञेय लोका-लोक प्रमाण है अत· ज्ञान सर्वगत है'' इसका अर्थ यह नहीं है ज्ञान में इतना ही जानने की शक्ति है, अपितु ऐसे अनन्त लोकालोको का अस्तित्व होता तो भी उसमे जानने की शक्ति है। इसलिये तो उन्हे ''अनन्त लोकाय'' कहा हुआ है। धर्म द्रव्य एव अधर्म द्रव्य के स्वरूप को प्रत्येक स्वाध्यायी जानता है। शुद्ध जीव मे गमन शक्ति लोकाग्रतक ही नहीं, अपितु असीमित है, लेकिन इन तथाकथित मुमुक्षुओ ने एक असत्य को सत्य सिद्ध करने के लिये, शुद्ध जीव की भी लोकाग्र तक ही जाने की शक्ति, इस असत्य का सहारा लिया, तब तो इन्हे जानने की शक्ति को भी लोकालोक तक ही सीमित कहना होगा। यदि कहते हैं तो यह अभव्य का ही लक्षण समझना चाहिए।

जिस प्रकार प्रवृत्ति मे अहिसा को हेय कहा जाये तब हिसा अपने आप उपादेय हो जाती है। उसी प्रकार प्रवृत्ति मे सत्य बोलना हेय तो असत्य स्वय ही उपादेय सिद्ध हो जाता है। लगता है- यही कारण है कि लोग शास्त्र गद्दी पर बैठ कर भी झूठ बोलने मे थोडा भी नही हिचकिचाते कि इसका परिणाम इहलोक परलोक मे क्या होगा।

व्रता का एकान्त से हेय कहने वाले एक वक्ता महोदय से एक श्रोता न आक्षपं किया उनके बोलने से पहले कि आप सत्य तो बोलेगे ही नहीं क्योकि वह व्रत है और वह हेय है आपकी दृष्टि मे, तब क्या आप झुठ का उपादेय मान कर उसी के बल पर उपदेश देगे। समीचीन तर्क सुनकर उनका उत्साह ठडा पड गया। बगले झाकने लगे। इसके अलावा कर ही क्या सकते हे रटा रटाया बोलने वाले। सत्यमहाव्रत ओर अणुव्रत की पाच भावनाआ म एक ''अनुवीचिभाषण'' भी हे जिस का अर्थ हे आगम के अनुसार बोलना। विचारणीय हे कि जो व्रता को हेय कहते हे क्या उपरोक्त भावना भाते होगे।

सुना गया हे- इन तथाकथित मुमुक्षुआ म समय की पाबदी हाती है। उदाहरण के लिये इनके द्वारा लगाई जान वाले क्लामे समय पर लगती और छूटती हे। अत वक्ता श्रोता दानो का ही समय का ध्यान रखना हाना है। इस प्रकरण मे एक घटना उल्लखनीय हे- क्लास चल रही थी। एक महिला कुछ देर स पहुची। वक्ता महादय ने पूछा- देर से क्यो आई ? उत्तर मिला हमारे पति देव को टी वी की शिकायत हे। उनकी सेवा मे लगे रहने से देर हो गइ। वक्ता डाटत हुए कहने लगे- अरे टी वी बार की लुगाइ। वा तो मरवइ वारा हे ते ओक पीछ अपना समय बर्बाद काये करत हे। अणुव्रत महाव्रतो को हय समझन,कहने वाल क्या यह समझ सकते है कि अकारण ही बोले जाने वाली उपरोक्त भाषा सद्वक्ताओ का लक्षण नहीं है। अन्य समय मे न कर सके क्रोध, लोभ भीरुत्व, हास का त्याग किन्तु शास्त्र गद्दी पर बेठने मे पहले तो कर ही देना चाहिए। उस महिला ने अपन और अपन पति के अपमानित हाने की बात अपने बेटो से कही। वे जूता लेकर आ गये मारन के लिये

लेकिन पुण्य कर्म की उदारता कहो या दब्बूपन की वह जूतो की मार से फिर भी बच गया। आगम का ज्ञाता और श्रद्धालु न होने का परिणाम है कि शास्त्र गद्दी का अपमान होता है। बुलाने वालो की लताड तो अवश्य पडी कि हम कैसे तो एक-एक करके अपने पक्ष मे करते हैं और आप लोगो के इस प्रकार के दुर्व्यवहार से हमारी मेहनत पर पानी फिर जाता है।

44 क्या जिनागम महान ? नहीं बदमाश को कहते हैं लोग संत का अपमान।

डॉक्टर के साथ हुई एक महिला की चर्चा का कुछ विषय इस काण्ड मे भी उल्लेखनीय है। कहने लगी वर्तमान मे निर्दोष साधु है कहाँ जिनका स्मरण करूँ। डॉ कहने लगे- जहाँ हैं उन्ही का स्मरण कर लिया करो। कहने लगी- हमारे कुन्द कुन्द आचार्य कह गये- जो साधु तिल तुस मात्र भी परिग्रह रखता हे वह निगोद जाता हे। इस समय के साधु आदि शरीर मे तेल लगवाते है चटाई तो लेते ही है अपने साथ वाहन लेकर चलते है। डॉ कहने लग तिल तुष मात्र परिग्रह रखन वाला माधु ही नही कोई भी जीव निगोद जाता है वह परिग्रह रखने मे जाता ह या अपनी योग्यता से ? यदि अणुमात्र परिग्रह रखने से जाता हे तो तुम्हारा गुरु भी निगाद ही गया हागा। वह बडे आश्चय से कहन लगी- क्या कहा- निगोद गय होग। डॉ न कहा - पहली बात तो यह है कि तुम्हे ऐसा ही सखेद आश्चर्य उस समय भी हाना चाहिए जब कुन्दकुन्द स्वामी के समय सार की एव अमृतचन्द्राचार्य की टीका के विषय को टीका लिखकर स्पष्ट करने वाले जयसेन आचार्य को निगोद गये हैं ऐसा कहते है- तद्भव नरकगामी तुम्हारे गुरु के चेले। दूसरी बात हम तुमसे पूछते हैं कि तुम्हारा गुरु साधु था कि नही ? यदि था तो परिग्रही होने के कारण कुन्द कुन्द और तुम्हारे ही अनुसार निगोद गया होगा। यदि कहा-वह साधु नही था तो उस बदमाश को "आध्यात्मिक मत" यह उपाधि क्या लगात हो। वह आश्चर्य करने लगी। डॉक्टर ने कहा- इसमे आश्चर्य की क्या बात है। "साधु" का शाब्दिक अर्थ सज्जन हाता है जब सज्जन नही तब बदमाश स्वय सिद्ध हा जाता है। कहने लगी-साधु से मतलब मुनिया स है, ग्रह त्यागियो से है। तब ता उस मत कहा ही मत। कहन लगी- वे तो गृहस्थ मत थ। डॉ न कहा यह केसी पक्षपाती गुरु मूढता है कि एक ग्रहस्थ मनमाना परिग्रह रखकर भी सत हा सकता है, लेकिन एक साधु कुन्द कुन्द के उपदेश अनुसार एक सस्तर भी नही ले सकता। अर्थात् वे विधान कर गये ये निषेध करते हैं। कुन्द कुन्द स्वामी यह भी कह गये- कि साधुओ को द्रव्य क्षेत्र काल, भाव एव शरीर के सहनन (शक्ति) को देखत हुए चलना चाहिए यदि शीघ्र ही मोक्ष पाना हो तो अत सस्तर आगम मत है।

45. क्या जिनागम महान ? नहीं, घिनावनी जिंदगी जीने लेता रक्तदान।

कहने लगी- कोई कैसा भी हो बदमाश जैसे शब्दो का प्रयोग तो नहीं करना चाहिए। डॉ ने कहा, पहली बात तो यह है कि जब तुम्हारे अनुसार पुण्य-पाप मे एकान्त स काई अन्तर नहीं तब किसी को सज्जन कहो या दुर्जन उस और उनके अनुयायियो को राग-द्वेष नहीं होना चाहिये अर्थात् उपेक्षा भाव होना चाहिए। दूसरी बात साधु कैसे भी हो उन्हे द्रव्य लिगी या मिथ्यादृष्टि भी ता नही कहना चाहिए। भले ही लोक व्यवहार मे ''बदमाश'' शब्द बहुत अपमान जनक शब्द माना जाता है, क्योकि वह चरित्रहीनता का वाचक है, लेकिन परमार्थ दृष्टि से ''मिथ्या दृष्टि'' शब्द उससे भी अधिक अपमान जनक है, क्योकि वह श्रद्धाहीन का वाचक है। कहने लगी- साधु लोग तेल लगवाते है दिन मे रात्रि मे भी। उन्होने पूछा-यह बताओ तुम्हार गुरु को केसर हो गया था ? हाँ। प्रतिमाह पुराना खून निकाला जाता था ओर नया डाला जाता था क्या ? हाँ । यह क्रम कब तक चला ? वर्षो। जब तुम्हारी दृष्टि मे तेल लगाना साधु का लक्षण नहीं है, तब खून लेना अध्यात्म सत का लक्षण हो सकता है क्या ? कहने लगी- पेट भरने के लिये मुँह से तो लेते नहीं अपितु ओषधि के रूप मे इन्जेक्शन मे दिया जाता था। तब क्या साधु लोग का पट भरन क लिये तल मुह मे पिलाया जाता है ? इसका अर्थ यह नही लगा लना चाहिए अर्थापति से कि साधुआ का तेल लगाना निर्दोष मान लिया जाये तो इन्जक्शन से खून लेना भी निर्दोष हो जायेगा। जो वास्तव मे अध्यात्म सत होगा वह इस तरह से घिनावने ढग की हिसात्मक उधारी की जिदगी कभी जीना नही चाहगा। हम डॉक्टर लाग अच्छी तरह स जानते है कि बजारु खून केसे लागा का हाता है। मासाहारिया का शाकाहारियो से खून मिल जाता है।

अमेरिका जेसे देश मे एक ऐसा अन्तर्राष्ट्रीय, राष्ट्र का गोरव हाथ की कलाकारी/ सफाइ मे कुशल कलाकार हा गया है। जिसका दुर्भाग्य से दाया हाथ खराब हो गया था। डॉक्टर ने उसे निकाल कर दूसरा लगाने की सलाह दी, क्योकि पूरा शरीर खराब होना निश्चित था। वेसा ही हुआ, लेकिन कलाकार के नहीं चाहते हुए भी वह उस हाथ से अनैतिक कार्य करने लगा। करने के बाद उसे उस कृत्य मे बडी आत्म ग्लानि होती थी। उसने डॉक्टर से कहा- इस हाथ को निकाल दीजिये और बताइ ये यह हाथ किसका है। खोजबीन के बाद पता लगा की वह एक जेब कतरे का है। विचारणीय है कि शरीर का एक अग किसी दूसरे शरीर मे जोड दन पर अपना प्रभाव डाल सकता है तब रगरग मे समा जाने वाले की क्या स्थिति होगी। एक व्यक्ति श्रावक धर्म पाला करता था। पाप कर्म का उदय आया बीमार हा गया। उसकी इच्छा के बिना इन्जेक्शन मे खून दे दिया गया। ठीक होने पर उनका श्रावक धर्म छूट गया। उससे पूछा गया ऐसा क्यो ? कहने लगा मर

भाव ही नहीं होते। डॉ आगे कहने लगे- मैं यह बात बडी निर्भीकता से कह सकता हू कि वर्तमान मे कैसा भी अर्थात् अभव्य द्रव्य लिगी साधु क्यो न होगा, लेकिन तुम्हारे गुरु जैसी घिनावनी जिदगी कभी नहीं जीना चाहेगा। ऐसा कोई रोग आते ही तत्काल शरीर छोडने की तैयारी में लग जायेगा।

46. क्या जिनागम महान ? नहीं, डंलप पर होती भाव लिंगी की पहचान।

कहने लगी- भाव लिगी भी तो होना चाहिए ? डॉ ने कहा- हर किसी साधु के विषय में कैसे जान लिया कि भाव लिगी नहीं हैं। भद्र बाहु श्रुत केवली भी नहीं जान सके स्थूलभद्र के मात्र द्रव्य लिगी होने को ग्यारह अग पढा देने के बाद भी। तब तुम और हम क्या हैं उनके सामने। विद्यानद जी कहते हैं- देव, गुरु, हो या शास्त्र इनकी परीक्षा करने के लिये इनके प्रति श्रद्धा एव गुणज्ञता अर्थात् उनके गुणो का ज्ञान होना चाहिए, लेकिन तुम जेसे अनगिते लोग होगे जिन्हे साधुओ क मूलगुणा का भी ज्ञान नहीं है और उपलब्ध मुनि मात्र को मिथ्या दृष्टि कहते हुए सुने गये है। अरे, व्यसनी लोगा के मुख से भी सुना गया है कि मुनि लाग ऐसा करते है, वैसा करते है। उन्हे ऐसा नही करना चाहिए। जिसे तुम लोग गुरु कहते हा उसमे द्रव्य-भाव कोई भी लिग नही था। कहने लगी- वे ता भाव लिगी थे। डॉक्टर ने कहा- द्रव्य लिगी के बिना (मुनि भेष के बिना) भी भाव लिगी हो जाता है क्या। निर्ग्रन्थो को भाव लिगी होने मे गाव, शहर मे रहना तेल लगवाना, चिटाई लना सब बाधक है लेकिन उसे भाव लिगी होने मे डलप क गद्द पर बैठना, सोना, उसी पर मे उपदश दना एव तन पर असयम का अविनाभावी वस्त्र भी बाधक नही हे यह तुम लागो की केसी दयनीय गुरु मूढता हे। कहने लगी- उन्हे सम्यग्दर्शन था। डॉ न कहा- दव भी सम्यग्दृष्टि होत हे, तब क्या इतन मात्र मे भाव लिगी हो जायेंगे ? नहीं। फिर तुम्हारा गुरु उतन मात्र मे वेसा केसे हा गया जो देवो के भूख-प्यास की इच्छा क समान अपनी भूख प्यास की इच्छा को रोक नहीं मकता।

अभी कुछ दिन पहले मैं एक बारात म गया हुआ था। उसमे तुम्हारे ही पक्ष के लोग समझ मे आ रहे थे मुझ छोडकर। उनमे जब कभी एक ही बात सुनन को मिलती थी कि साधुआ मे यदि एक भी मूल गुणकम हा ता उन्हे कपड पहना देना चाहिए। मेने जब समझा कि वहाँ मर भी पक्ष के कुछ लोग हे तब उस बात का जवाब दिया कि तुम जिसे गुरु मानते ता उसमे आठ मूल गुण गिना दो ता मै प्रत्येक मुनि मे अट्ठाईस मूल गुण गिना दूँगा। एसा सुनकर लकीर क फकीरा की बोलती बद हो गई। इनके लिये अणुव्रत महाव्रत हेय हे और साधुआ मे एक भी कम नहीं होना चाहिए।

कहने लगी- समयसार जैसे उच्च कोटि के ग्रंथ को कौन जानता था/पढता था। हमारे गुरु ने उसके महत्व को, रहस्यों को बता कर ग्रन्थ राज जी को घर-घर की रामायण बना दिया। ऐसी कोई जगह नहीं यह जहाँ उपलब्ध न हो। किसी ग्रंथ को कोई जानता हो या न जानता हो समयसार जी को सभी जानते हैं। पंडित वर्ग भी तो यही मानते हैं कि ग्रंथ राज जी के प्रचार-प्रसार का श्रेय हमारे गुरु को ही है। तभी वे अपने प्रवचनों में यही बात दुहराते रहते हैं। डॉक्टर कहने लगे- ऐसा ही एक बिकाऊ पडित यही बात एक आचार्य के सामने भरी सभा मे कहने का साहस कर रहा था/किया। उस समय उन आचार्य को भी समयससार पर टीका लिखकर उसे प्रकाश में लाने वाले अमृत चन्द्र आचार्य एव जयसेन आचार्य का अपमान सहन नहीं हुआ और उस पण्डित को लताडते हुए कहा- तुम्हें ऐसे स्वच्छंदी व्यक्ति का इस सभा मे नाम लेते हुए शर्म आना चाहिए।

47. क्या जिनागम महान ? नहीं, ''खग जाने खगै की भाषा'' न जाने नादान।

जिसने पुण्यानुबधी पुण्य के बल पर भोले भाले लोगो को गुमराह कर रखा है। किया है। जिसे सस्कृत भाषा का ठीक से ज्ञान था न प्राकृत भाषा का, फिर उसने हिन्दी के बल पर कौन सा रहस्या प्रगट कर दिया। कुन्द कुन्द स्वामी ग्रंथ राज के आदि में ही लिख गये कि मैं शुद्धात्मा के स्वरूप को बताने जा रहा हूँ। बता सकूँ तो उसे प्रमाण मान लेना और कहीं चूक जाऊ तो छल ग्रहण नहीं करना। वे तो चूके नहीं, लेकिन जिस असंयमी को इन पडितो ने सिर पर चढाया है उसने और इन पण्डितों ने छल ग्रहण कर लिया। नव जात शिशु/बालक भाषा को नहीं समझता, लेकिन भावो को समझ लेता है। वह भी कब, जब वह व्यक्ति उसके सामने होता है अन्यथा भावो को समझना असम्भव है। कुन्द कुन्द, अमृतचन्द, जयसेन आचार्य इन तीनो की लिपि के रूप मे भाषा उपलब्ध है लेकिन वे स्वय उपस्थित नहीं हैं। अब उनके भावो को पकडना है। जो उस भाषा का जानकार नहीं है। जिसमे उन आचार्यों ने भाव अभिव्यक्त किये हैं, क्या वह उनके भावो को पकड सकता है ? नहीं। ''खग जाने खगै की भाषा'' इस सुयुक्ति के अनुसार सयमी ही समझ सकता सयमी के भावो को। खासकर अध्यात्म ग्रथो की भाषा का जानकार हों तो। सयमी समझ ही लेगा सो भी बात नहीं, लेकिन जब कभी भी समझेगा सयमी ही। जैसे मुनि बने बिना मोक्ष नहीं। मुनि बनने पर हो ही जाये यह कोई आवश्यक नहीं, लेकिन जब कभी मोक्ष होगा मुनि बनने पर ही होगा।

कुन्द कुन्द स्वामी ने कहा है- जीव आयु कर्म के उदय से जीता है और आयु कर्म के क्षय से मरता है। पुण्य कर्म के उदय से सुखी होता है और पाप कर्म के उदय से दु:खी अर्थात् किसी जीव को जिलाने-मारने, सुखी दु.खी करने वाला कोई दूसरा नहीं है। उनके

इस कथन का अभिप्राय क्या है ? क्या वे यह कहना चाहते थे कि हे साधुओ चार हाथ जमीन देखकर चलने की आवश्यकता नहीं है, क्योकि जीव अपने आयु कर्म के क्षय से मरता है तुम्हारे पैरो से ? नहीं, अपितु उन साधुओ को समझाने के लिये कहा है जो प्रवृत्ति/व्यवहार को ही धर्म मान बैठे हैं और निवृत्ति/निश्चय की उपेक्षा करते हैं।

धवला जैसे ग्रथो का हिन्दी अनुवाद एव उनका वाचन करने वाले इन पडितो से पूछना चाहते हैं कि इनका लिखा जाना, अनुवाद एव वाचन होना व्यर्थ तो नहीं है ? नहीं, तब फिर जो अध्यात्म ग्रथो एव मोक्ष मार्ग प्रकाशक को छोडकर किसी भी अनुयोग के ग्रथो को ग्रथ ही न माने, उनका पढना समय बर्बाद करना माने, तब ऐसे व्यक्ति की प्रशसा करना तो दूर नाम लेना भी पाप समझना चाहिए, लेकिन इन्होने पैसे के प्रलोभन मे आकर उनकी हाँ मे हाँ तो मिलाई ही और दबाव वश धवला जैसे ग्रथो के हिन्दी अनुवाद मे मनमानी की है।

कहने लगी- गुरु-शिष्या सबध को पति-पत्नि सबध कहकर उन्हे बदनाम क्यो करते हैं आप लोग। क्या यह अर्वणवाद नहीं है। डॉ ने कहा- एक बाल ब्रह्मचारी को किसी भी महिला के विषय मे कुछ कहने की भी एक सीमा होती है। उसके अनुसार देव आदि के श्रद्धान से सम्यग्दर्शन नहीं हो सकता, लेकिन एक स्त्री के तलुवे चाटने से हो जाता है। इस प्रकार के बोल उसके प्रति विषयानुसार के बिना बोले नहीं जा सकते है। इतना ही नहीं दोनो ने एक दूसरे के विषय मे अति बोलकर एक दूसरे को गुमराह तो किया ही है। साथ ही दोनो के आपस मे क्या सबध थे इस विषय मे लोगो को सोचने के लिये बाध्य किया है। इसकी दृष्टि मे इस समय भाव लिगी साधु नहीं हो सकते, लेकिन एक क्षुद्र महिला को करोडो भवो का स्मरण हो सकता है। जिसके आधार पर वह तीर्थंकर बनने का स्वप्न देख गया। पापानुबधी पुण्य पल्ले था अन्यथा ये दोनो इस आम्नाय मे आकर नाटक कैसे खेल सकते थे। आगम कथित ब्रह्मचर्य व्रत एव उसके अतिचारो के स्वरूप का ज्ञान, श्रद्धान होता तो एक क्षुद्र महिला के गुणगान नही कर सकता था जो कर गया।

48. क्या जिनागम महान ? नही, तलुवे चाटने से होता इन्हें आत्मश्रद्धान।

डॉक्टर कहने लगे- अभी आप कह रही थी- जिनवाणी (शास्त्र) पढते रहने से सम्यग्दर्शन हो जाता है। लगता है, तलुवे चाटने वालो की इतनी भीड थी कि तुम्हारा नम्बर नहीं लग पाया या तुम उसके जीते जी वहाँ पहुच नहीं पायी। कितना सहज उपाय बता गया तुम्हारा गुरु सम्यग्दर्शन की प्राप्ति का। पता नहीं किस कारण से चूक हो गई। अर्थाभाव कारण हो सकता है। शिक्षिण शिविर मे आने के लिये आने जाने की टिकिट की व्यवस्था तो करवा देता था लेकिन इस परमावश्यक कार्य मे क्यो लापरवाही बरत गया तुम्हारा गुरु।

अब आखे कमजोर करने के अलावा दूसरा कोई उपाय नहीं है। जिनवाणी पढने मे परस्त्री सेवन को दोष बता गया, क्योंकि "एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं करता" इस मान्यता मे बाधा आती है। विचारणीय है कि इसकी स्त्री के पैर चाटने वालें को परस्त्री सेवन का दोष तो नहीं लगा होगा ? लगा होगा, क्योकि जब जिनवाणी पढने मात्र से वैसा दोष लगता है, तब तलुवे चाटने में भी लगा होगा। यहा यह भी कह गया कि पुरुष/पति के रहते किसी अन्य पुरुष मे गर्भधारण करे तो कोई दोष नहीं है। एक ओर इसके अनुयायी के मुख से सुना कि हम जिनवाणी के गुलाम नहीं है, न बन सकते हैं, न बनेगे। हाँ ठीक ही तो कहता है, जो जोरु का गुलाम है वह जिनवाणी का गुलाम हो कैसे सकता है। यहाँ यह भी कहा जाता है कि सम्यग्दर्शन अपनी योग्यता से होता है दूसरी ओर शास्त्रो का अधाधुन्ध प्रचार हो रहा है। इनकी दृष्टि से लगता है- जिस प्रकार किसी महिला को अजीविका का कोई साधन न रह जाये तो वह नहीं चाहते हुये भी देय व्यापार को आजीविका का साधन बना लेती है। उसी प्रकार इन्हे भी जिन वाणी को परस्त्री कहकर नहीं चाहते हुए भी, नहीं मानते हुए भी, सम्यग्दर्शन को प्राप्त करने का साधन बना लिया हो। सभी जानते है कि वेश्या को सबसे पतित स्त्री जात के रूप मे देखा जाता है। उसी प्रकार इनके द्वारा हो रहे जिनवाणी के प्रचार से लगता है कि ये उस पतितो के रूप मे देखते है।

उपरोक्त कथन से स्पष्ट रूप से पूर्वापर विरुद्धता मालूम पडती है। "एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं करता" इस मान्यता को सुरक्षित रखने के लिये जिनवाणी परस्त्री कह गया और दूसरी ओर व्यवहार उपादेय न हो जाये इसलिये पर पुरुष से गर्भधारण करना निर्दोष बतलाया गया। ऐसे स्वच्छदी व्यक्ति को गुरु कहने वाले लोग अपनी, समाज की माताओ, बहनो, बेटियो पर कितनी निगरानी रखते हैं एक घटना के माध्यम से विचार करे।

49 क्या जिनागम महान ? नहीं, स्मरण अभिशाप है, टकराना वरदान।

युवा तथाकथित मुमुक्षु पडित को बुलाया गया था प्रवचन करने हेतु। वह प्रवचन करने/क्लास लगाने के साथ ही साथ रगेलियाँ भी करने लगा। लोगो को ज्ञात होने पर उन्होने उसकी यह कहते हुए पिटाई कर दी की साले तुझे यही करना है तो शादी क्यो नहीं कर लेता। जब कभी ऐसी घटना घटती हैं तब व्यवहार उपादेय हो जाता है। यहाँ ये लोग अपने गुरु की मान्यता को उपेक्षित कर देते हैं कि पुद्गल से पुद्गल टकराने मे कोई दोष नहीं है, स्वच्छदी बह्माद्वैत वादियो की तरह। एक वेदान्त पुस्तक पढने मे आई थी। लिखा था - अद्वैत वाद मे ब्रह्म के अतिरिक्त दूसरा कोई है ही नहीं। भिन्न भिन्न जो कुछ भी दिख रहा है उसके अश है और अश अशी से भिन्न नहीं होता। इस ब्रह्माद्वैत सिद्धात की आड मे स्वच्छदी लोग व्यभिचार करते हुए भी अपने आप को निर्दोष मानते है। दोष मानने वालो

को तर्क देते हैं कि व्यभिचार दो के बीच में हुआ करता है अत· एक ही ब्रह्म के अंशों को आपस में टकराने में कोई दोष नहीं है। उसी प्रकार इन्हे व्यभिचार की दृष्टि से पुद्गला द्वैतवादी कहा जा सकता है, क्योकि जब इनसे कहा जाता है रात्रि में नहीं खाना चाहिए, तब स्वच्छंद ब्रह्माद्वैतवादियों की तरह यही तर्क दिया जाता है कि पुद्गल को पुद्गल में ही डाला जा रहा है इसमे क्या दिन और क्या रात। रात दिन भी तो पुद्गल हैं। ऐसा तर्क देने वाले ऐसा कहते हुए भी सुने गये है कि जो हमारी बहिन-बेटियो पर आंख उठायेगा उसकी हम आखें निकाल लेंगे। जब पुद्गल से पुद्गल ही टकरा रहा है, तब आखें निकालने की क्या आवश्यकता है और न अधिकार ही है। दूसरी बात, जब खाने पीने मे दिन-रात का भेद नहीं करते, तब ये समागम के लिये दिन/उजेला की अपेक्षा रात्रि/अधेरे को, एकान्त को उचित क्यो मानते हैं। इन्हे जब कभी, जहा-कहीं जिस किसी से भाई-चारे का भेद किये बिना टकरा जाना चाहिए।

ऐसा ही एक मुमुक्षु एक व्यक्ति की शिकायत करने थाने पहुच गया कि अमुक व्यक्ति हमारी बहन पर बुरी नजर रखते हैं। अपराधी को बुलवाया गया। वे भी रास्ता ही देख रहे थे। पहुच गये एक पुस्तक हाथ में लेकर। अपने अपराध को स्वीकार करते हुए कहने लगे- मैंने यह अपराध नहीं चाहते हुए भी जानबूझ कर दिया है। इन्हे और इस पुस्तक को आपके पास तक लाने के लिये जिसे ये और इनके साथी शास्त्र भडार मे/ मदिर मे स्वाध्याय हेतु रखना चाहते हैं। पढकर निर्णय दीजिये कि इन्हे इस अपराध की शिकायत करने का अधिकार है क्या ? यदि है तो आप जो दण्ड देगे मुझे स्वीकार है। पढकर निर्णायक ने पूछा यह किस निर्लज्ज ने लिखा है ? इनके गुरु ने। शिकायत करने वाला अपना मा मुह लिये लौटा जब डाट कर भगाया गया। सभी कार्य अपनी योग्यता से होते हैं ऐसा मानने वाले स्वच्छदियो को मार पडती है, तब मारने वालो की रिपोर्ट करते है और उन्हे पकड कर दण्डित करने की अधिकारियो से माग करते हैं। अधिकारियो को इनकी मान्यता ज्ञात होने पर इनकी माग मजूर की जायेगी और अधिकारियो को अधिकार ही होगा दण्डित करने का? नहीं। डॉक्टर आगे कहने लगे- भगवान से टकराना तो दूर उनका स्मरण करना भी तुम्हारी मान्यता मे पाप हैं, लेकिन पुद्गल का पुद्गल से टकराने मे दोष नहीं है।

50. क्या जिनागम महान ? नहीं, स्वाध्याय और सम्यग्दर्शन अन्योन्याश्रय का स्थान।

कहने लगी- एक पडित जी कह रहे थे- "स्वाध्याय करते करते सम्यग्दर्शन हो जाता है।" डॉक्टर ने कहा - उनके कहने से लगता है- अभी आप लोगो को सम्यग्दर्शन नहीं है, पडितों का भी नक्की नहीं है, अन्यथा अभी तक चारित्र धारण कर लेना चाहिए था। कहने लगी- कह रहे थे- "सम्यग्दर्शन को मजबूत बनाओ। डॉ कहने लगे- उनका

अभिप्राय है कि दोनों को सम्यग्दर्शन हुआ है वह कमजोर है। कहने लगी- हा। तब तो ऐसा वे वास्तविक रूप से कह रहे थे या -''अपने काने लडके कोई काना नहीं कहता'' इस आधार पर आप लोगो से आत्मीयता के कारण कहते हो कि मिथ्या दृष्टि कहने से आप लोगो को बुरा लग सकता है या फिर आप लोगों से बढिया बढ़िया मेवा मिष्ठान मिलता है एव विदाई के समय इच्छित धन राशि मिलने की आशा रहती है वे आप लोगों को मिथ्यादृष्टि कहने सेँ न मिले। होता भी ऐसा ही है। अभी-अभी बाहर से एक सज्जन आये थे। वे अपनी बीती सुना रहे थे। पर्युषण पर्व पर एक सिद्धाताचार्य पडित को आमत्रित किया बीच-बीच मे हम लोग पूछते रहते थे -पडित जी। हम लोगों मे व्यक्ति एव सामाजिक रूप से क्या कमियाँ हैं बताईये। आप इतने दिनो से देख रहे हैं ? वे कहते थे- कोई कमी नहीं। बहुत अच्छी समाज है आपके यहाँ की। ऐसा तो बहुत कम देखने मे आता है। एक दिन सज्जन ने जोर देकर पूछा, तब कहने लगे- आप लोगो की कमी बताने लगे तो आप लोग नोट निकाल कर कैसे देगे।

डॉक्टर उस महिला से पण्डितो पर आक्षेप करते हुए कहने लगे- इन्हीं लोगो की मान्यतानुसार जब सम्यग्दर्शन एक ही प्रकार का है, तब उसमे कमजोर और मजबूत भेद तो हो ही नहीं सकते। ऐसी स्थिति मे अपने आप के सम्यग्दर्शन को कमजोर कहना बहाना ही है अन्यथा कोई भी कह सकता है कि जब आपको सम्यग्दर्शन हो गया तो सम्यग्ज्ञान भी हो गया होगा। फिर ''सम्याज्ञानी होय बहुरि दृढ चारित्र लीजे'' दौलत राम जी की इस पक्ति के अनुसार आप पडितो को चारित्र लेना चाहिए। बात बदलती हुई कहने लगी-'' दसण मूलो धम्मो'' कहा है अत बिना दर्शन के चारित्र मिथ्या चारित्र है और ''स्वाध्याय परम तप '' कहा है। डॉ ने कहा- ''तप'' को चारित्र भी कहा है ऐसी स्थिति मे सम्यग्दर्शन के बिना वह स्वाध्याय तप (चारित्र) परम तप कैसे हो सकता है। न्याय दृष्टि से विचार किया जाये तो चटकने ताले के समान अन्योन्याश्रय दोष आता है। एक ऐसा भी ताला होता है जो खुलता तो चाबी से हे, लेकिन बद बिना चाबी के भी हो जाता है। आपने भूल कर चाबी कमरे मे छोड दी और बाहर से किवाड एव साकल लगाकर ताला चटका दिया। अब ताला कब खुले ? जब चाबी मिले। चाबी कब मिले जब ताला खुले। उसी प्रकार सम्यग्दर्शन कब प्राप्त हो जब स्वाध्याय परम तप (चारित्र) किया जाये और स्वाध्याय परम तप कब कहलायेगा जब सम्यग्दर्शन प्राप्त हो। ऐसी स्थिति मे दोनो एक दूसरे का मुँह दैखते रहेगे, प्रतीक्षा करते रहेगे प्राप्ति किसी की भी नहीं हो सकती।

यदि कहा जाये कि सम्यग्दर्शन के बिना भी मिथ्या स्वाध्याय तप करते हुए सम्यग्दर्शन प्राप्त हो जायेगा तब सम्यग्दर्शन बिना अणुव्रत-महाव्रत पालते हुए क्यो नहीं हो सकता ? धर्मामृत ग्रथ मे एक कथा आती है कि तीर्थ यात्रा पर जाते हुए एक सेठ ने धन का प्रलोभन देकर नग्नता के जन्म जात द्वेषी एक ब्राह्मण को दस दिन के लिये मुनि बना

दिया था। धन के प्रलोभन के वशीभूत होकर महाव्रत पालते हुए क्षायिक सम्यग्दृष्टि बन गया था। सूर्य मित्र की अगूठी गिरने और मिलने की घटना का यही अभिप्राय है।

51 क्या स्वाध्याय शब्द महान ? नहीं, निज को पाना कठिन धन पाना आसान।

कहने लगी- पण्डित जी प्रथमानुयोग की इन घटनाओ को कपोल- कल्पित मानते है। डॉ ने कहा जब साधुओ को मिथ्यादृष्टि सिद्ध करना हो तो उसकी कुछ घटनाये वास्तविक हो जाती हैं। स्वाध्याय का क्या अर्थ होता है ? कहने लगी- शास्त्र पढना। यह तो रूढ अर्थ है। शाब्दिक अर्थ क्या है पण्डिता ने बताया नही ? कहने लगी- नहीं। क्यो बतायेगे जब व्याकरण पढना हेय बताते हैं। "स्व" का अर्थ है- अपने "अधि" का अर्थ है- निकट "अय" का अर्थ है जाना। अर्थात् अपने निकट जाना। "स्व" का अर्थ धन भी होता है अत उसके निकट जाना भी स्वाध्याय है। पडित जी पैसा लेते हैं ? हाँ। और मुनिमहाराज भी लेते हैं ? नहीं। रूढ अर्थ से दोनो ही समान रूप से स्वाध्याय करते, कराते हैं। "शाब्दिक" अर्थ से भी वैसा ही करते है, लेकिन दोनो की पहुच मे जमीन आसमान का अन्तर है। पण्डितो का लक्ष्य धन के निकट पहुचना है और साधुओ का लक्ष्य निज के निकट पहुचने का। स्वाध्याय यह क्रिया उन्हीं के लिये तप हो सकती है जिनका लक्ष्य निज के निकट पहुचने का है। कहने लगी - ऐसा कैसे कह सकते हैं कि पडितो का लक्ष्य धन के निकट ही पहुचने का है। डॉ ने कहा-परीक्षा करके देख लो। दस दिन तक कसकर मेहनत करवा लेना और अन्त मे जाते समय एक नारियल भेट कर जयजिनेन्द्र कर लेना। देखो दुवारा आते हैं कि नही। एक जगह तथाकथित मुमुक्षु पर्युषण पर्व मे बुलाया गया, लेकिन उसे चाय नहीं दी गई वह दूसरे दिन ही लौट आ। अरे नि स्वार्थ सेवी तो वही कहलाता है कि जो उपदेश करने के बदले श्रोताओ से पानी भी न पीना चाहे।

52. क्या जिनागम महान ? नहीं, होना असम्भव कहना आसान।

कहने लगी- पडित जी तो कहते हैं कि विद्वान शुद्धोपयोगी होते हैं। डॉ ने कहा- तुम्हारी दशा उस समय के श्रेणिक जैसी है, जब वे बौद्ध थे और पण्डितो की दशा बौद्ध भिक्षुओ जैसी। बौद्ध साधुओ की श्रेणिक हमेशा प्रशसा करते थे कि वे बहुत ज्ञानी होते हैं। चेलना रानी ने दो बार उनकी परीक्षा कर ली। पहली बार मे तो अज्ञानता के साथ-साथ उनकी भोगासक्ति का भी परिचय मिल गया और दूसरी बार की परीक्षा में शरीर आस का परिचय। ये तथाकथित मुमुक्षु शरीर आदि को पर है, पर है ऐसा कहते अवश्य हैं, लेकिन ये शरीर आदि मे किस प्रकार से तत्पर हैं एक घटना से समझे। ऐसे ही तथाकथित मुमुक्षु एक साधु के सामने अपने को शुद्धोपयोगी होने की बात करते थे और साधु महाराज की

समय समय पर परीक्षा करते रहते थे। साधु ने कहा- हम तुम्हारे शुद्धोपाग की परीक्षा करेंगे किसी दिन। कहने लगे-कर लेना। कुछ दिन के बाद जैसे ही साधु के पास पहुचे। उन्होंने पूछा- सुना है आप नपुसक है। वे इतना सुनते ही आपे से बाहर हो गये। कहने लगे- किसने कह दिया आपसे। आपको तो मालूम ही है हमारे दो बच्चे और दो बच्चियाँ हैं। फिर आप वेमतलब की बातो पर क्यो गौर करते हैं। महाराज ने कहा-भाई। ऐसी कोई बात नहीं है। हमने तुम्हारे शुद्धोपयोग की परीक्षा की थी। बताओ, क्या शुद्धोपयोगी अपने आपको पुरुष, स्त्री, नपुसक के रूप मे अनुभव करता है ? नहीं, लेकिन तुम्हारे इस व्यवहार से स्पष्ट है कि तुम अपने आप को पुरुष अनुभव करते हो अन्यथा नपुसक कहने पर तुम्हे क्रोध नहीं आना चाहिए था। ऐसे न जाने कितने लोग होंगे जो अपने आप को शुद्धोपयोगी मानकर आत्म वचना कर रहे है। गधे की खोज मे निकला धोबी अधेरे मे गधे के धोके मे शेर पकडकर ले आये तो गधे की खोज उस समय नहीं करेगा जब तक उसे शेर न समझ ले। उसी प्रकार अपने आपको शुद्धोपयोगी मानने वाले शुद्धोपयोगी बनने का प्रयास उस समय तक नहीं करेगा जब भूल न सुधरे।

53. क्या जिनागम महान ? हाँ, इस कलकी से हमें बचाओ हे प्रभू दयानिधान।

कुन्द कुन्द आचार्य ने "दसण मूलो धम्मो" ही नहीं, "चारित्र खलु धम्मो" भी कहा है, लेकिन तथाकथित मुमुक्षुओ ने चारित्र को नकारने का भरसक प्रयास किया। सम्यग्दर्शन की प्राप्ति मे काललब्धि का अपना एक अलग ही महत्व है, लेकिन इसमे भी विवाद है। कुछ लोगो का मानना है- अर्ध पुद्गल परावर्तन काल शेष रहने पर सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की योग्यता आती है। कुछ का कहना है- पुरुषार्थ के बल पर अनन्त ससार को अर्ध पुद्गल परावर्तन काल शेष कर दिया जाता है। जिनकी समीक्षा चल रही है उन्होने इस विषय मे भी बिना पेदी के लोटे का काम किया है। अर्थात् इनसे कोई सम्यग्दर्शन की प्राप्ति की बात करता है वहाँ पुरुषार्थ मुख्य हो जाता है और काललब्धि गौण। और चारित्र लेने की बात करता है तो काललब्धि मुख्य और पुरुषार्थ गौण हो जाता है। जैसे सासारिक कार्यों मे उत्साह बरतने वाला काल की प्रतीक्षा नहीं करता, लेकिन आत्म कल्याण के कार्य में समय की प्रतीक्षा करता है। "एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं करता" ऐसा मानने वाले इन्हें चरित्र के विषय मे भी काल की प्रतीक्षा करने का कोई औचित्य नहीं है। इसी आक्षेप से खीज निकल पडती है कि चारित्र से होता ही क्या है। किसी ने व्यग्य किया- कष्ट होता है। "कुछ नहीं होता" यह तो बहाना हैं, अन्यथा लडके के अकस्मात व्यसनी होने की इतनी चिता क्यो होती। यह एक दु:खी परिवार की व्यथा से समझें।

शराब पीकर या शराब पीने के लिये पैसा मांगने पर न देने से उसने घर के किस

सदस्य को नहीं मारा, गाली का कहना ही क्या। ऐसा कोई दिन बाकी नहीं जाता जब किसी से लड़ता न हो। घर में पैसा न मिलने पर जिस किसी से उधार ले लेता है और वे रोज आकर तकाजा लगाने लगते हैं। ऐंसा कोई व्यसन नहीं जिसका वह सेवन न करता हो। पति पत्नि से कहता है- यह सब सुनाती किसे हो। ''प्रत्येक पदार्थ द्रव्य दृष्टि से शुद्ध है'' यह पाठ उसे तुम्हीं ने पढाया, तब उससे कहने का अधिकार कहाँ कि शराब पीना खराब है। मास, अडे के विषय मे भी उसका यही तर्क है कि द्रव्य दृष्टि से शुद्ध। दूसरो की बहन बेटी के ऊपर कामुक दृष्टि रहती है। मना करने पर कहता है यह तो शरीर की क्रिया है। हमारी आशाओ पर पानी उसने नहीं, तुमने फेरा है। उसका तो छोडो अपनी लडकी का सबध जोडकर देख लो किसी भले घराने से। अब तो न मैं मदिर मे मन लगा पाता हूँ न दुकान मे और न अधिक समय के लिये घर ही छोड सकता हूँ। क्योकि मेरी बेटी बदले की भावना से वासना की शिकार न बन जाये, क्योकि मैं बहुत दिन से देख रहा हूँ - बहुत से युवको की दृष्टि उसकी ओर अच्छी नही है। मुझे तो ओरो की अपेक्षा तेरे इस कपूत से ज्यादा भय है कि किसी दिन अपनी बहन के साथ रगेलिया न करने लगे, क्योकि शराब को भेदभाव नहीं होता। मना करने पर कहेगा कि पुद्गल से पुद्गल टकराने मे कोई दोष नहीं है और कहीं ऐसा कुछ हुआ तो सबसे पहले हम तुम्हारे इन पण्डितो की मरम्मत करेगे। मर्यादित एव शुद्ध भोजन करने वालो का ये मजाक उडाया करते हैं। अब तो ये पण्डित तुम्हारे यहाँ भोजन हेतु आने से कतरायेगे जिन्होने तुझे बरगला कर पथ भ्रष्ट किया है। पता नहीं इस जैन समाज मे मेरे और तेरे जैसे कितने अभागे माता-पिता होंगे जो ऐसे दुर्दिन देख रहे होगे। हिसादी को पाप समझते हुए हिसादि करने वालो को हिसादि करते हुए, अभक्ष्य भक्षण करते हुए, भय तो होता ही है कि हम गलत कर रहे है, लेकिन हिसा कोई चीज नहीं है या हिसा को धर्म या हिसा मे धर्म बताया जाये और हिसक एव हिस्य को क्रमश धर्मात्मा और स्वर्ग का अधिकारी बताया जाये तो हिसादि से भय और मास भक्षण को पाप समझेगा कौन ?

त्रस और स्थावर जीवो की हिसा को पाप समझकर भी कितने जैनी होगे जो उनके घात से विरक्त होगे ? न के बराबर । फिर भी वे भयभीत तो रहते ही हैं कि हम गलत कर रहे है। आलू जैस जमी कद जो अनन्त जीवो का पिण्ड है जिसे एक शब्द ज्ञानी पण्डित ने तेरे राजसिक/तामसिक गुरु के मुख से भक्ष्य सिद्ध करवा लिया था कि अग्नि मे सस्कारित करने से प्रासुक हो जाता है। ऐसा सुनकर लोगो को भय रह जायेगा कि आलू खाना पाप है। आने वाले समय मे इसकी शिष्य मडली स्पष्ट रूप से कहेगी कि मास को प्रासुक कर लेने पर निर्दोष हो जाता है आलू आदि की तरह। ईसामसीह के अनुयायी, मानव की आत्मा मे और अन्य जीवो की आत्मा मे अन्तर मानते हैं अत उन्हीं की दृष्टि में मानव आत्माओ को ही कष्ट होता हे, अन्य जीव आत्माओ को मारने पर कष्ट नहीं होता। इस बात का/ सिद्धात का स्पष्ट रूप से अनुकरण करने लगेगे ऐसा अनुमान लगाने मे आश्चर्य नहीं।

"अंडा शाकाहारी है" इसे वैज्ञानिको ने येन-केन प्रकारेण सिद्ध करने की कोशिश की है/ कर रहे हैं। शुद्ध शाकाहारियो के द्वारा घृणा की दृष्टि से देखा जाने से। तथाकथित मुमुक्षु वैज्ञानिकों से भी हाथ मिलायेंगे इस बात से नकारा नहीं जा सकता, इनके कृत्य को देखते हुए।

तथा कथित मुमुक्षुओ की नैया का "दसण मूलो धम्मे" एक आदि से अन्त तक यही एक खेबनहारा है, क्योकि इस परिभाषा के अनुसार चलने मे कोई शारीरिक कष्ट नहीं होता, लेकिन "चारित्र खलु धम्मो" धर्म की यह परिभाषा तो बडी कष्ट साध्य है अत. पहली परिभाषा को ही मुद्दा बनाया।

इन लोगो की दशा तो उस चालाक लोमडी से भी आगे की है जो प्रयास करने के बाद भी अगूर न पा सकी थी और बदर से यह कहकर चली गई थी कि अगूर खट्टे हैं, लेकिन इन्होने तो चारित्र/अणुव्रत, महाव्रत प्राप्त करने के प्रयास से पहले ही उन्हें हेय समझ लिया।

54. क्या जिनागम महान ? नहीं, साथी को रोता देख कर लगा अनुमान।

दो लडके एक पेड पर से गिर गये। दोनो का एक-एक पैर टूट गया। जब डॉक्टर एक पैर का उपचार कर रहा था। पट्टी बाध रहा था। लडका कष्ट से रो रहा था। दूसरा बैठा-बैठा देख रहा था। उसका जब नम्बर आया तो उसने भी अपना पैर बता दिया। उपचार हो जाने के बाद पहला दूसरे से पूछता है, क्यो रे तुझे कष्ट नहीं हुआ पट्टी बधवाते समय ? उसने कहा-मैंने टूटा पैर बताया ही नहीं तेरे कष्ट की दशा को देखते हुए। इस घटना का तात्पर्य यही है कि चारित्र पालने वालो की कष्टमय दशा को देखकर उस कष्ट से बचने के लिये चारित्र हेय कहने लगे। अपने लिये तो कहते ही हैं दूसरो के लिये भी कहने लगे, यह सम्यग्दृष्टि का लक्षण नहीं है। क्षायिक सम्यग्दृष्टि श्रेणिक को नरक आयु का बध हो चुका था इसलिये चारित्र लेने के भाव नही होते, लेकिन उन्होने चारित्र धारण करने वालो का कभी निषेध नहीं किया और न चारित्र को हेय कहा। इनके अनुसार एक गुण दूसरे गुण का भी कुछ नहीं करता होगा। फिर उनका कहना स्पष्ट रूप से मिथ्या है कि चारित्र पालना सम्यग्दर्शन के बिना मिथ्या है। मिथ्यात्व को ही छोडने पर जोर देने वालो के विचारो से लगता है कि आश्रव और बंध के क्षेत्र मे कषाय अकिंचित्कर है जैसे किन्हीं के व्यक्तिगत विचारो से मिथ्यात्व अकिंचित्कर है।

पत्नि देवी जबान से बोल उठी- सात्विक भेष धारी को राजसिक एव तामसिक कहना उचित नहीं है। पति ने कुछ जोर से फटकार लगाते हुए कहा- तू अभी भी उस धूर्त का पक्ष

ले रही है जिसके कारण हमारा सब कुछ विनाश की कगार पर आ गया है। आबाल वृद्ध सब उपेक्षा/घृणा की दृष्टि से देखने लगे हैं। सात्विक भेष रख लेने मात्र से कोई सात्विक हो जाता है क्या ? उसके खान-पान, रहन-सहन आदि से ज्ञात होता था कि वृत्ति राजसिक एव तामसिक थी। तन और मन के लिये सुखद ऐसे गुदगुदा दार गद्दो पर बैठना/सोना, राजसी पौष्टिक भोजन, आधुनिक उच्च श्रेणी के वाहनो मे इच्छानुसार गमनागमन। किन्हीं के विशेष आग्रह से बुलाये जाने पर, उसका बुलाये जाने वालो के द्वारा जैनेतर राजसी गुरुओ के समान सम्मान का सर्वप्रथम रूप वाहन से उतरते ही उसके आगे कपडा बिछाते हुए बैठने के स्थान तक ले जाना, यह कृत्य राजसिक वृत्ति का स्पष्ट रूप से प्रतीक है। बीमार अवस्था मे इजैक्शन से खून ग्रहण करना यह तामसिक वृत्ति का सूचक है।

"सभोग से समाधि" मानने वाले के ऐसे भी अनुयायी हैं, जो उसके आचरण से नहीं, अपितु उसके तार्किक विचारो एव वैसी ही बोलने, लिखने की शैली से प्रभावित हैं। एक बार एक ब्रह्मचारी ने एक आचार्य से उसके बारे मे आचार्य के अपने विचार पूछे ? उन्होने कहा- वह बहुत अच्छा है। ब्र जी ने कहा- दुनियाँ उसका नाम सुनते ही थूकती है और आप उसे अच्छा कह रहे हैं। उन्होने कहा- उसकी उपेक्षा का कारण उसकी चरित्र हीनता है अन्यथा अपनी तार्किक शक्ति के बल पर सारी दुनियॉ को अपने वश मे कर सकता था। जो उसकी तार्किक शैली, विचारो और लेखनी से प्रभावित है वे जब किसी के मुख से उसकी चरित्रहीनता के बारे मे सुनते है तो उसे येन-केन प्रकारेण निर्दोष सिद्ध करने की कोशिश करते हैं। ठीक यही स्थिति कतिपय तथाकथित मुमुक्षुओ की है। इनसे कोई पूछे कि तुम्हारे गुरु को केसर हो गया था और प्रत्येक माह पुराना खून निकाला जाता था, नया डाला जाता था। ऐसा करने के लिये कलकत्ता से डॉक्टर आता था, और दस हजार रुपये लेता था क्या ? ऐमा कुछ सुनकर डाटते हुए कहा जायेगा- तुमने जाकर देखा क्या ? ये सब सुनी सुनाई बाते हैं इन पर विश्वास करके किसी को व्यर्थ मे बदनाम नहीं करना चाहिए। पुन आक्षेप हुआ कि उसका अन्त अस्पताल मे ही हुआ था इसे भी सुनी सुनाई बाते मानकर विश्वास न किया जाये, जब वहाँ अन्त हुआ तो कौन विश्वास करगा कि खून नहीं लिया।

किसी साधु मे किसी ने प्रत्यक्ष से दोष देखे हों, तब उन्हे दूसरो को बताने मे किसी की गवाही की भी आवश्यकता नहीं होती। किसी दूसरे के मुख से दोष सुने हो तो भी इस ढग से बतायेगा कि जैसे प्रत्यक्ष देखे हो। उस समय वह यह भूल जाता है कि वही आक्षेप मुझे भी सुनना पडें जो मैं स्वय करता हूँ। किसी साधु को भेस लगाते, मकान, मदिर, धर्मशाला बनवाते, बाजार से जाकर स्वय आवश्यक वस्तु खरीदते हुए, यात्रियो से भीख मागते, उन्हे आपस मे पिच्छी से लडते, व्यवस्थापको को मा-बहन की गाली देकर लडने के लिये ललकारते हुए, हीटर से आग तपते हुए आदि सब तुमने अपनी आखो से देखा है? नहीं। फिर सुनी सुनाई बातो पर विश्वास करके साधुओ को बदनाम करना उचित नहीं है।

55. क्या नय अर्थ महान है ? नहीं, समीचीन नय ज्ञान से अनगिनते अनजान हैं।

एक तथा कथित मुमुक्षु एक आचार्य से पूछ रहा था- आचार्य जी। पूजन करते समय कितनी कर्म प्रकृतियो का बध होता है ? आचार्य जी ने कहा- यह तो हम बाद में बतायेंगे पहले यह बताओ भोजन करते समय कितनी कर्म प्रकृतियो का बध होता है ? वह सुनकर चुप रह गया। आचार्य जी ने उसके अभिप्राय को समझते हुए कहा- यदि कर्म बध के भय से पूजन छोडना चाहते हो तो उसके पहले भोजन करना छोड देना चाहिए, क्योंकि भोजन मे पूजन की अपेक्षा पाप कर्म के बध की बहुलता है और भोजन की अपेक्षा पूजन में पुण्य कर्म के बध की बहुलता है। कहने लगा- भोजन करना यह तो जड की क्रिया है। यह अबुद्धि पूर्वक शरीर मे ही हुआ करती है आत्मा का इससे कोई सबध नहीं है, तब कर्म बध का सवाल ही नहीं उठता। आचार्य जी ने पूछा- अबुद्धि पूर्वक होने वाली शरीर मे यह भोजन क्रिया सीधी-सीधी ही क्यो होती है, कभी उल्टी भी हो जाये, अर्थात् मुँह से ही ग्रास न देकर नाक, कान से होने लगे, क्योकि अबुद्धि पूर्वक तो दिया जा रहा है तुम्हारे ही अनुसार बुद्धिमान आत्मा का इस क्रिया से कोई सबध नहीं है। चारवाक्की तरह तुम से भी पूछा जाये कि मृत शरीर मे भी उपरोक्त क्रिया क्यो नहीं होती, होना चाहिए। क्योकि तुम्हारे ही अनुसार आत्मा तो शरीर की जीवित एव मृत दोनो ही अवस्थाओ मे निष्क्रिय है, भोजन आदि क्रिया करन मे। दोनो मतो मे आत्मा की परतत्रता स्वतंत्रता का ही अन्तर है।

आत्मा के अस्तित्व को स्वतत्र रूप से स्वीकार न करने वाले चारवाक् मतानुयायी जीवित शरीर मे होने वाली भोजन आदि की क्रियाओ का कर्ता, शराब की तरह चार भूतो के मेल से उत्पन्न हुई चैतन्य शक्ति विशेष है, ऐसा मानते हैं। मृत शरीर मे चारो भूतो का ममागम होने पर भी उसमे भोजन आदि क्रियाये क्यो नहीं होती, ऐसा आक्षेप होने पर उसका समाधान है कि जिस प्रकार हरीतकी आदि के समुदाय मे विरेचन करवाने की शक्ति स्वाभाविक है। ऐसा नही है कि किसी देवता की कृपा प्राप्त कर हरीतकी आदि विरेचन करते हैं। माना कि हरीतकी आदि पदार्थ कभी-कभी, कहीं-कहीं विरेचन नहीं भी कराते हैं। इसका कारण हरीतकी (हर्र) आदि के योग को पुराना हो जाने से उसकी शक्ति की क्षीणता है। यही कारण है कि चारो भूतो का समुदाय होने पर भी कहीं-कहीं चैतन्य की उद्‌भूति या उत्पत्ति नहीं होने में जान लेना चाहिए।

आत्मा के अस्तित्व को स्वतत्र रूप से स्वीकार करने वाले ये तथा कथित मुमुक्षु शरीर में होने वाली भोजन आदि क्रिया मे आत्मा को अकिंचित्कर (कुछ नहीं करने वाला) मानते हैं, तब ये मृत तो छोडिये जीवित शरीर मे होने वाली भोजन क्रिया को किस शक्ति

के आधार पर स्वीकार करेगे ? चारवाक् के ही पैर पकडने होगे जिसका खण्डन करने में जैन आचार्यों को विशेष परिश्रम करने की आवश्यकता नहीं पडी। फिर भी साहस करे ये बोलने का कि जिसके बल पर यह शरीर भोजन आदि क्रियाये करता हैं वे दस प्रकार के प्राण पौद्गलिक हैं। जिनके अभाव में वह निष्क्रिय हो जाता है। पहली बात यह है कि ऐसा मानने पर योग्यता से ही सभी कार्य होते हैं इस मान्यता का क्या होगा। दूसरी बात, इनसे "जीव" शब्द का अर्थ पूछा जाये कि क्या होता है ? जिन्हे व्याकरण का रच मात्र भी ज्ञान नहीं है वह बता सकेगा कि जीवति, जीविष्यति, जीवित पूर्वो वा इति जीव· अर्थात् जो कम से कम चार प्राणो से जीता है, जीयेगा और जी चुका है वह जीव है। जीव शब्द की इस व्युपत्ति के अनुसार तीन कालो मे जीने का व्यवहार जीव के लिये ही होता है, पुद्गल के लिये नहीं। चाहे वह द्रव्य, भाव प्राणो से जिये अथवा चैतन्य प्राणो से। द्रव्य प्राणो से जीता है यह अनुपचरित असद्भूत व्यवहार मय का कथन है। भाव प्राणो से जीता है यह अशुद्ध निश्चय नय से कथन है। और चैतन्य प्राणो से जीता है। यह शुद्ध निश्चय नय का कथन है। अन्न से जीता है यह उपचरित असद्भूत व्यवहार नय से कथन है। जीने के समान भोगने सबधी व्यवहार भी आत्मा मे हुआ करता है। शुद्ध निश्चय नय से चैतन्य प्राणो का भोक्ता है। अशुद्ध निश्चय नय से सुख-दुख का भोक्ता है। अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय से ज्ञानावरणादि आठ द्रव्य कर्म और शरीर आदि नौकर्म का भोक्ता है। उपचरितअसद्भुत व्यवहार नय से पचेन्द्रिय के विषयो का भोक्ता है।

56. क्या नय अर्थ महान ? नहीं रागी पुद्गल वीतरागी भगवान।

इससे विपरीत भोले-भाले तथा कथित मुमुक्षु अलापते हैं शरीर को सबोधित करते हुए कि शुद्धातम है मेरा नाम खाना पीना तेरा काम अर्थात पचेन्द्रिय के विषयो से आत्मा का कोई सबध नहीं। दूसरी ओर इससे विपरीत कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि का भोग निर्जरा का कारण है। "अपनेई चाटे गौर" इस कहावत के अनुसार अपने आप को सम्यग्दृष्टि मान लिया और कुत्ते जैसी आसक्ति से स्त्री समागम जैसे कृत्य करते हुए इनके कर्मो की निर्जरा होती रहती है। कुन्द कुन्द स्वामी कहते हैं- "चार अगुल जिव्हा (जीब) होती है और चार अगुल की उपस्थ (लिग) इन्द्रिय होती है इन आठ अगुल दोष के कारण यह जीव दारुण (असहाय) दुखो को प्राप्त करता है। "विनाश काले विपरीत बुद्धि के अनुसार" इन्हे ये इन्द्रिय के भोग निर्जरा के कारण प्रतीत हो रहे हैं। ऐसी स्थिति मे इन्हे निरतर स्त्री समागम जैसे कृत्य करते ही रहना चाहिए, अन्यथा भोग रहित अवस्था मे कर्म बध होगा या निर्जरा नहीं होगी। इस विषय मे इनकी एक कपोल कल्पना और है - कर्म, नौकर्म तो पुद्गल हैं ही राग द्वेषादि भाव कर्म भी पुद्गल हैं और कर्म कर्म से बधता है आत्मा से नहीं। ऐसी स्थिति मे पुद्गल को ही रागी-द्वेषी, मिथ्यादृष्टि कहना स्वाभाविक ही होगा। नरक भी पुद्गल ही

जायेगा। कर्म को कर्म से छूटने के लिये कर्म को ही सम्यग्दृष्टि और वीतरागी होना होगा, लेकिन ये "वीतरागी" आत्मा को मानते हैं। इन्हें दो दृष्टियों से आत्मा को वीतरागी कहने का अधिकार नहीं है। पहली दृष्टि से जब रागी पुद्गल ही है तो उसे ही वीरागी होना चाहिए। दूसरी दृष्टि से यदि आत्मा को ही वीतरागी माना जाये तो भी तुम्हारे ही अनुसार वैसा कहना मिथ्या ठहरता है, क्योंकि वीतराग अभाव रूप गुण है जो अशुद्ध निश्चय नय का विषय है और अशुद्ध निश्चयनय शुद्ध नय की अपेक्षा व्यवहार ही है जो आप लोगों की अपेक्षा एकान्त से मिथ्या/झूठा ही है।

कुन्द कुन्द स्वामी ने समय सार ग्रथ मे कहा है- जीव के राग नहीं है, द्वेष नहीं हैं, मोह नहीं है, और इसी ग्रथ मे कहते हैं-राग द्वेष मोह जीव के ही अनन्य परिणाम है। इस पूर्वापर विरुद्ध कथनी मे नय विवक्षा से समन्वय किया जा सकता है कि शुद्ध निश्चय नय की अपेक्षा से रागादि जीव के नहीं है और अशुद्ध निश्चय नय की अपेक्षा उसी के अनन्य परिणाम है। अशुद्ध इसलिए कि वे आत्मा के स्वभाव नहीं, अपितु कर्म के उदय से आत्मा मे हुए हैं जैसे चेहरे के निमित्त से दर्पण मे प्रतिबिम्बित और निश्चय इसलिये कि आत्मा ही उसका उपादान कारण है जैसे प्रतिबिम्ब का उपादान कारण दर्पण है। निश्चय का अर्थ है तन्मयता। चाहे वह शुद्ध के साथ हो या अशुद्ध के साथ। सर्वसाधारण पाठको को समझ मे आ जाये इसलिये लौकिक उदाहरण से समझाना आवश्यक है।

एक दिन श्रोताओ से पूछा- पुत्र किसका होता है, पति का या पत्नि का ? दोनो का है, ऐसा उत्तर मिलना स्वाभाविक है। विशेषता इतनी है कि होता पत्नि मे है, पति के निमित्त से अत शास्त्र की भाषा मे कहा जा सकता है कि लडके की मा उपादान और पिता निमित्त है। यह व्यवहार भी चलता है कि जब पत्नि पति गृह मे रहती है तब लडका पिता का कहा जाता है और वह पत्नि अपने पिता के घर जाती है/रहती है उस समय वह लडका मा का कहा जाता है। निमित्त/व्यवहार नय की अपेक्षा राग पुद्गल कर्म का कहा जाता है और उपादान/निश्चय नय की अपेक्षा राग आत्मा का है। दर्पण मे मुह देखते हुए एक व्यक्ति से पूछा- दर्पण मे मुह किसका है। निश्चय से दर्पण का है और व्यवहार से मेरा, ऐसा उत्तर मिला। बिल्कुल सही है। कहना यह है कि नयो के विषय का गहन अध्ययन, चिन्तन, मनन किये बिना जिनागम समझना "टेढी खीर है"।

57. क्या नय अर्थ महान ? नहीं, ईश्वर कर्त्तृत्व भगवान दृष्टित्व में पंगु इंसान।

भोक्तृत्व के समान स्व और पर में कर्त्तृत्व नयो की ही अपेक्षा से इस प्रकार घटित किया जा सकता है। कि शुद्ध निश्चय नय से जीवन शुद्ध चैतन्य (ज्ञान दर्शन आदि) का कर्ता है, अशुद्ध निश्चय से रागादि भावो का कर्ता है। यहाँ कर्त्तृत्व का अर्थ "परिणमन एव

कर्तृत्व" इस आधार पर ज्ञान, दर्शन आदि एव रागादि रूप परिणमन करना ही आत्मा का कर्तृत्व कहलाता है। यह तादात्म्य सबध की अपेक्षा से है। अनुपचरित असत् भूत व्यवहार नय से ज्ञानावारणादि आठ कर्मो का करता है एव शरीर नौकर्म का करता है यहै सश्लेष सबध की अपेक्षा। उपचरित असत् भूत व्यवहार नय से घट-पट आदि पदार्थों का करता है, यह सयोग सबध की अपेक्षा। कर्तृत्व की यह समीचीन कथनी "एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नही करता" इस मान्यता मे नहीं बनती। एक ओर तो कहते हैं मिट्टी का कर्ता कुभकार नहीं और दूसरी ओर ईश्वर कर्तृत्व वादियो के समकक्ष हो जाते हैं-

बुदेलखड मे एक कहावत है - "चूहे की दौढ बडेरी लो" अर्थात् चूहे को भी कोई खतरा समझ मे आता है तो बडेरी (जिसके सहारे से छप्पर बना होता है) तक पहुच जाता है। उसी प्रकार तथाकथित मुमुक्षुओ की मान्यता पर जबर्दस्त आक्षेप होता है, तब वे योग्यता के ही हाथ जोडते हैं कि "अन्यथा शरण नास्ति योग्यता शरण मम"। ईश्वर कर्तृत्व वादी से कहा- मास खाते हो ? कहने लगा- हाँ। छोड दो खाना ? कहने लगा- ऊपर वाले की जब महरवानी हो जायेगी, तब छूट जायेगा। पूछा- तब ऊपर वाले की मेहरवानी से ही खाते हो ? कहने लगा- उसके बिना तो पत्ता नहीं हिलता। यह बताओ मास खाना है अच्छा क्या ? कहने लगा- अच्छा हो या हो बुरा सब उसकी महरवानी से होता है। इन योग्यता कर्तृत्ववादियो की भी यही स्थिति है। जो कुछ भी अच्छा बुरा होता है वह योग्यता की महरवानी से होता है। कभी-कभी चूहे की दौड, छप्पर तक भी हो जाती है। अवसरवादी तो हैं ही अत ये योग्यता कर्तृत्ववादी कभी-कभी ईश्वर दृष्टित्ववादी भी बन जाते है कि जो देख रहे हैं, देखेगे, देखा वही हो रहा है, होगा और हो चुका। इन दोनो ही वादियो की दृष्टि मे कोई भी प्राणी स्वतत्र नही रहा पुरुषार्थ के बल पर इच्छित वस्तु प्राप्त करने मे। ईश्वर की शरण ये उसी समय लेते है जब कोई इन्हे मुनि बनने के लिये उकसाता है।

न्याय पढने के लिये एक जैन एक ईश्वर कर्तृत्ववादी के पास पहुचा। भेट स्वरूप एक रुपया सामने रखते हुये निवेदन किया। पूछने पर परिचय दिया। सुनते ही डाटते हुए कहा- उठाओ यह रुपया और भागो यहॉ से। मैं नास्तिको को नही पढाता। पूछा- ये जैनी नास्तिक क्यो हैं ? क्योकि ये ईश्वर को नहीं मानते। उन्हे कर्ता नहीं मानते। पूछा ईश्वर ने नास्तिको को बनाया ही क्यो हैं ? इसका उत्तर मारने की धमकी देकर भाग जाने के लिये कहना। युक्ति नहीं सूझती तो शक्ति का प्रयोग किया जाता है।

हिसा करने वाले ईश्वर कर्तृत्ववादी से पूछा कि जब जिसे ईश्वर ने बनाया है, तुमने बनाया नहीं तब तुम्हे उसे बिगाडने/मारने का क्या अधिकार है। लोक में भी देखा जाता हैं- दूसरे की वस्तु को नष्ट कर देने वाला अपराधी माना जाता है। उस व्यक्ति को कोई जबाव नहीं सूझा। कहने लगा- सब ईश्वर की माया है।

58. क्या नय अर्थ महान ? नहीं, उपचार सर्वथा झूठा, सर्वज्ञ भगवान।

तथाकथित मुमुक्षुओ से प्राय. लोग कहते ही रहते हैं कि जब आप लोग सम्यग्दृष्टि एव सम्यग्ज्ञानी हैं तब मुनि क्यो नहीं बन जाते हैं ? इस आक्षेप से बचने के लिये कुछ तो स्वीकार कर लेते हैं कि हम सम्यग्दृष्टि हैं ही नहीं, कुछ लोग कहते हैं अभी हमारा सम्यग्दर्शन मजबूत नहीं है। कुछ कहते हैं सर्वज्ञ हमे मुनि अवस्था के रूप मे नहीं देख रहे हैं। हो सकता है- वे इस भव मे हमे उस अवस्था मे देखें ही न फिर हम मुनि बन कैसे जाये, कुछ कहते हैं अभी हमारी काल लब्धि नहीं आई, कोई कहते हैं हममे शक्ति नहीं हैं।

मुनियो का विरोध करने वाले/वर्तमान मुनियो को नहीं मानने वाले लोगो से पूछा जाता है कि आप लोग ऐसा क्यो करते हैं। क्या भगवान उन्हे मुनि के रूप मे नहीं देख रहे या मुनि उनके ज्ञान के विषय नहीं बन रहे ? ऐसा तो हो नही सकता कि सर्वज्ञ हो और मुनि उनके ज्ञान के विषय के न बने। गधे के सींग के समान असत् तो हैं नहीं, अपितु उनका अपना स्वतत्र अस्तित्व है। यदि कहा जाये कि ये उनके ज्ञान के विषय हैं, तब तो जैसे ईश्वर कर्तृत्ववादी लोग जैनो को नास्तिक कहकर ईश्वर के कर्तृत्व को मिथ्या सिद्ध कर रहे हैं, नहीं चाहते हुए, क्योकि इन्हीं के अनुसार जैनो को भी ईश्वर ने ही बनाया है ऐसी स्थिति मे जैनो को गलत कहना ही ईश्वर को गलत कहना हैं। उसी प्रकार जिन्हें सर्वज्ञ ने देखा है, देख रहे हैं, उन्हे नहीं मानना, उनका विरोध करना सर्वज्ञ का ही विरोध करना है, उन्हे न मानना है।

द्वीपायन मुनि को भगवान की वाणी पर विश्वास नहीं था। अन्यथा मुनि बन कर उसे गलत सिद्ध करने का प्रयास क्यो किया ऐसा कहकर तथाकथित मुमुक्षु उन्हें मिथ्या दृष्टि कहते हैं। उसी प्रकार आप लोग भी मिथ्या दृष्टि क्यो नहीं है कि जिसे जिस रूप मे सर्वज्ञ देख रहे हैं। ईश्वर कर्तृत्ववादी हिसको की तरह तुम्हे क्या अधिकार है सर्वज्ञ के द्वारा देखे जा रहे मुनियो का विरोध करने का। कुछ लोग सफाई देते हैं- वर्तमान मुनियो को मुनि के रूप मे तो देख रहे हैं, लेकिन मिथ्यादृष्टि के रूप मे/द्रव्य लिगी के रूप मे। पहली बात तो यह है कि जो अपने आपको मिथ्यादृष्टि मानते हैं उन्हे अधिकार ही नहीं है कहने का कि भगवान ने किसको किस रूप में देखा, देख रहे हैं। दूसरी बात, मिथ्या दृष्टि की बात मान्य भी कैसे की जायेगी, क्योकि मिथ्यात्व के उदय मे वह विपरीत ही जानेगा, देखेगा और कहेगा। तीसरी बात, पर को जानना सम्यग्ज्ञान है कहा जब सम्यग्दर्शन का विषय आत्मश्रद्धान ही है।

जब इन की मान्यतानुसार आत्म श्रद्धान ही सम्यग्दर्शन है, तब आत्म ज्ञान ही

सम्यज्ञान ऐसा नहीं होते हुए भी, नहीं चाहते हुए भी मानना होगा। इससे यह बात स्वयं सिद्ध हो जाती है कि पर को जानना सम्यज्ञान नहीं है, चाहे वे अर्हन्त, सिद्ध भी क्यों न हों। यहाँ इस विषय मे इनसे पूछना यह है कि आत्मा पर को जानता ही नहीं है या पर को जानना मिथ्या है ? यदि कहा जाये कि पर को जानता ही नहीं, तब प्रश्न उठता कि वह जान कैसे लेता है या निर्णय कैसे कर लेता है कि वह पर है। पर कोन जानने की स्थिति में भेदज्ञान की चर्चा जो समयसार मे की गई है वह कैसे बनेगी। यदि कहा जाये-ज्ञान पर को उपचार से जानता है या पर को जानना उपचार है जैसे घी का घडा कहना उपचार है, लेकिन उपचार तो आपकी मान्यता मे सर्वथा झूठा है। मीमासक की मान्यता में कोई भी पुरुष कभी शुद्ध नहीं हो सकता है अत सर्वज्ञ कोई है ही नहीं या हो ही नहीं सकता और इनके अनुसार उपचार मात्र झूठा होने से सर्वज्ञ झूठा सिद्ध होता है फिर ऐसे सर्वज्ञ/उपचार/ झूठे ज्ञान के बल पर क्यो कहा जाता है कि "जो जो देखी वीतराग न सो-सो होशि इत्यादि।

59. क्या नय- अर्थ महान ? नहीं, यदि मिट्टी के घड़े का व्यवहार गधे के सींग समान ?

कहा जाये- सर्वज्ञ झूठे नहीं हो सकते ? तब व्यवहार या उपचार मात्र को झूठा क्यो कहा जाता है। चारवाक् एक प्रत्यक्ष को ही प्रमाण मानता है, अनुमान आदि को नहीं, क्योकि उनमे कहीं-कहीं व्याभिचार (सदोषता) देखा जाता है। एक दो जगह अनुमान आदि मे व्यभिचार (सदोषता) देखकर अनुमान आदि मात्र को अप्रमाण माना जाये तो कोई भी प्रमाण अर्थात् प्रत्यक्ष प्रमाण भी निर्दोष नहीं हो सकता क्योकि उसमे भी कहीं-कहीं सदोषता देखी जाती है। कहना यह है कि आलाप पद्धति मे देवसेन आचार्य जी ने जीव और पुद्गल के इक्कीस स्वभाव गिनाये हैं उनमे एक उपचरित स्वभाव भी है जिसके दो भेद हैं- स्वाभाविक और कर्मज। जिनसे लौकिक एव धार्मिक दोनो ही प्रकार के व्यवहार चला करते हैं अत अनुमान आदि प्रमाणो की तरह इसे भी सर्वथा मिथ्या नहीं कहा जा सकता, अन्यथा सर्वज्ञ को झूठा होने से रोका नहीं जा सकता।

मिट्टी का घडा, घी का घडा, गधे के सींग- इन तीनो मे जो घी के घडे का व्यवहार होता है वह गधे के सीग के व्यवहार के समान सर्वथा मिथ्या नहीं है, अन्यथा गधे के सींग लाओ के समान घी का घडा भी नहीं लाया जा सकता। मिट्टी के घडे सभी एक जैसे नहीं होते। ऐसी स्थिति मे लाने ले जाने का व्यवहार छोटे-बडे ऐसा उपचार किये बिना सम्भव नहीं है। छोटा-बडा होना यह घडे का स्वाभाविक गुण नहीं है मिट्टी मे मृदुता, कठोरता आदि गुणो के समान, अपितु सापेक्ष धर्म हैं। इन सापेक्ष धर्मों को कोई सर्वथा झूठा नहीं कहता। फिर आधार आधेय भाव की अपेक्षा होने वाला मिट्टी आदि के घडे में घी आदि के

घड़े का व्यवहार सर्वथा मिथ्या कैसे हो सकता है। यद्यपि इस लोक में गधों का भी अस्तित्व है और सीगो का भी स्वतत्र अस्तित्व है, लेकिन गाय आदि सींगो वाले पशुओ के अग मे जिस प्रकार सींग पाये जाते हैं वैसे गधे में नहीं अर्थात् सींगो का आधार गधा नहीं है।

यहा कहा जा सकता है कि जिस प्रकार मिट्टी आदि के घडे का और घी का स्वतत्र अस्तित्व होते हुए भी "घी का घडा" ऐसा व्यवहार हो जाता है। उसी प्रकार गधे के सींग का व्यवहार हो जाना चाहिए क्योंकि अन्य पशुओ के सींग उसमें लगाये जा सकते हैं ? नहीं, क्योकि इस प्रकार प्रयोग और लोक व्यवहार का कथन शास्त्रो मे नहीं मिलता। सैद्धान्तिक एक बात और यह है कि उपचार मात्र झूठा मान लिया जाये तब उससे नियम रूप से पाप का ही बध होगा जबकि ऐसा है ही नहीं क्योकि उपचार से पुण्य का बध भी होता है। यो कहना चाहिए कि जो भी पुण्य पाप का बध होता है वह व्यवहार व उपचार पर ही निर्भर करता है। उपरोक्त प्रकार का बध जीवों के स्वय अभिप्राय पर निर्भर करता है। जैसे राग-द्वेष आदि विकारी भावो को कोई एकान्त से जीव के या पुद्गल के ही कहे तो वह झूठ है और अशुद्ध निश्चय से जीव के और व्यवहार नय से अजीव के माने तो सत्य है या उपादान से जीव एव निमित्त से पुद्गल के माने तो सत्य है। आलाप पद्धति मे-नौ प्रकार के उपचार का कथन किया है। असत् भूत व्यवहार नय के अभिप्राय से ही कथन किया जाये या समझा जाये तब सत्य है अन्यथा झूठा। नौ प्रकार के उपचारो को उदाहरण सहित उपरोक्त ग्रथ से पढ लिया जाये तो सारी भ्रान्तिया दूर हो जायेगी।

60. क्या नय अर्थ महान ? नहीं, बहन से विवाह आचरण में उपादेय श्रद्धा में हेय का श्रद्धान।

स्व व पर मे नयो की अपेक्षा भोक्तृत्व एव कर्तृत्व का स्पष्टीकरण कर देने के बाद स्वामित्व मे भी नय आपेक्षा से स्पष्ट कर देना आवश्यक है। कुन्द कुन्द स्वामी के अनुसार परिग्रह तीन प्रकार का होता है- चेतन, अचेतन और उभय (चेतनाचेतन) रूप है। अज्ञानी की इन तीनो मे त्रैकालिक स्वामित्व बुद्धि होती है अर्थात् इन्हे वर्तमान मे तो अपना मानता ही है भूत और भविष्य मे भी अपनापन होता है। जो जिस अपेक्षा से जिनका कर्ता, भोक्ता होता है वह उसी अपेक्षा से उसका स्वामी भी होगा ही। शुद्ध निश्चय नय से आत्मा ज्ञान, दर्शन रूप शुद्ध चैतन्य का स्वामी है, अशुद्ध निश्चय से राग-द्वेषादि विकार दशा का स्वामी है, अनुपचरित असत् भूत व्यवहार नय से ज्ञानावरणादि कर्म एव शरीर नौकर्म का स्वामी है, स्व जाति उपचरित असत् भूत व्यवहार नय की अपेक्षा स्त्री, पुत्र, शिष्य का स्वामी है, विजाति उपचरित असत् भूत व्यवहार नय की अपेक्षा धन, धान्य आदि का स्वामी है, स्वजाति-विजाति उपचरित नय की अपेक्षा आभूषण धारण किये हुये स्त्री का अथवा पिच्छी

कमण्डल लिये शिष्य का स्वामी है। इन नयो के अतिरिक्त इनके ही भेद-प्रभेद को सहजानन्द जी के ''नय चक्र प्रकाश मे देखे।

अध्यात्म दृष्टि से कुन्द कुन्द स्वामी कहते हैं, इस शरीर को अपना कहना/मानना भी महा अपराध है, लेकिन आगम दृष्टि से पिच्छी-कमण्डल, शिष्य आदि को भी अपना कहने मे अपराध नहीं है, अन्यथा किसी के शिष्यादि को उनके बिना पूछे अपना लेने को चोरी क्यो कहा जाता। व्यवहार मात्र को हेय समझ लिया जाये तो हिसादि की तरह चोरी जैसा निद्य कृत्य कोई चीज नहीं कहलायेगा। वयोवृद्धो के मुख से सुनते आये हैं कि ''जो व्यवहार कुशल सो परमार्थ कुशल''। बालक भद्रबाहु की व्यवहार कुशलता को देख कर ही निमित्त ज्ञानी गुरु ने उसके परमार्थ कुशल होने का अनुमान लगा लिया। यदि एकान्त से व्यवहार हेय होता तो उन आचार्य का उस बालक के साथ उसके घर जाकर उसके माता-पिता से पूछ कर उसे अपने हाथ ले जाने की आवश्यकता क्यो पडती बिना पूछे ही वहीं के वहीं ले जाते पढा-लिखाकर योग्य बनाने का प्रलोभन देकर।

एक मुनि भक्त कह रहा था- महाराज श्री ! तथा कथित मुमुक्षुओ ने अपनी बहन की शादी हमारे बडे भाई से की है। जब कभी वे हमारे यहाँ आते हैं और व्यवहार को हेय कहने का साहस करते हैं। हम कहते है - यदि तुम्हारा कहना तुम्हारी ही दृष्टि मे सही है तो तुमने अपनी बहन की शादी अपने ही साथ क्यो नही की हमारे भाई के साथ क्यो की। उनके पास इसका कोई जबाव नहीं होता सिवाय कतराने के। इनकी दशा लडैया (सियार) जैसी है कि एक ने हुआ-हुआ किया सब वैसा बोलने लग।

बौद्धो के द्वारा मान्य क्षणिक बाद मे सबध के अभाव मे काई भी लोक व्यवहार वास्तविक नही बनता। उसी प्रकार निश्चयाभसियो के यहाँ भी नही बनता। बौद्ध तो इन सबधों को काल्पनिक मानकर आक्षेपो से पीछा छुडाने की कोशिश करते है लेकिन इन्हे जब निरुत्तर होने की स्थिति आती है ''हम विवाद मे नही पडते'' ऐसा कहकर पिण्ड छुडाने का प्रयास करते है। या फिर इन सबधो को आचरण मे उपादेय और श्रद्धा मे हेय कहकर पीछा छुडा लेते है।

61. क्या नय अर्थ महान ? नहीं, कमरे में काला सांप नींद को भी स्थान।

करीब पचास एक सख्या के परिवार सहित एक आचार्य जी के पास बैठा हुआ एक व्यक्ति परिचय दे रहा था कि किसका किसके साथ क्या सबध है। करीब दस मिनिट तो लग ही गये होगे परिचय देने मे। आचार्य श्री ने कहा- अब इन सबसे राग छोडो ? कहने

लगे- "जल मे भिन्न कमल है" जैसी स्थिति है मेरी। तन पर कपडा क्या है यह तो बाहूबली के तन पर लिपटी बेल जैसा है। लेकिन आप जिस आत्मीयता से अपना परिचय दे रहे थे उससे तो ऐसा नहीं लगता जैसा आप कह रहे हैं। खैर, यह बताओ कि आप बहुत समय से सोये न हो, अपरिचित स्थान मे हो और किसी से कहें कि मुझे नींद लेना है आप मेरे सोने की व्यवस्था कर दीजिये। वह बडी आत्मनीयता से कहता है आप पहले भोजन वगैरह कर लीजिए और यह रहा कमरा पलग पर बिस्तर बिछा है आप जितनी देर चाहे सो ले, लेकिन इतना ध्यान रखे कि इस कमरे मे दो तीन दिन से काला साप रह रहा है। विचारें कि आप वहाँ लेट कर सुख की नींद सो सकते हैं, निश्चित होकर, जब तक की सर्प को बाहर न निकाल दिया जाये। कहने लगे ? नहीं। क्यो क्या सबध है नींद का सर्प के साथ ? असयम के अविनाभावी वस्त्रो से आप एडी से चोटी तक लिप्त हैं इसके बाद भी तुम अपनी तुलना बाहूबलि से कर रहे हो। कुन्द कुन्द स्वामी कहते हैं- भावो की विशुद्धि के लिये बहिरग ग्रथ (परिग्रह) का त्याग करना चाहिए, यदि अतरग परिग्रह नहीं छूटा तो बाह्य त्याग निष्फल है। आपके कहे अनुसार व्यवहार नय एकान्त से हेय होता तो अर्थात् व्यवहार से जीव का परिग्रह के साथ स्वामित्व सबध नहीं होता तो न तो दोनो प्रकार के परिग्रह के त्याग का उपदेश दिया जाता और न वस्त्रो को असयम के साथ अविनाभाव कहा जा सकता था। "द्विविध सग बिन शुद्ध उपयोगी मुनि उत्तम निज ध्यानी" इस पक्ति पर श्रद्धा रखते हुए मिथ्या धारणा छोड नयो का सूक्ष्म दृष्टि से अध्ययन करना चाहिए।

62. क्या उपचार विनय महान ? नहीं, आत्मा सो परमात्मा विनय सहित श्रद्धान।

उपलब्ध श्रावकाचारो मे रत्नकरण्ड श्रावकाचार को तथाकथित मुमुक्षु भी पूर्ण रूप से निर्दोष मानते हैं। आत्म श्रद्धान मात्र ही सम्यग्दर्शन है, ऐसा भी मानते हैं। साथ ही यह भी मानते हैं कि आत्मा त्रैकालिक शुद्ध है। "आत्मा सो परमात्मा" ऐसा भी कहते हैं। समत भद्रस्वामी कहते हैं- भय, आशा, स्नेह एव लोभ से शुद्ध दृष्टि अर्थात् सम्यग्दृष्टि कभी कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र को प्रणाम एव विनय आदि नहीं करता। यदि करता है तो सम्यग्दृष्टि नहीं है। तथाकथित मुमुक्षुओ के द्वारा मान्य एक मान्यता और उल्लेखनीय है कि इन्होंने "सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्ग " इस सूत्र का अर्थ- निश्चय सम्यग्दर्शनादि ही मोक्ष का मार्ग है, ऐसा किया है। उसी प्रकार श्रावकाचार की उपरोक्त कारिका (श्लोक) का अर्थ इन्हे, आत्मा ही कुदेवादि है उसे प्रणाम उसकी विनय नहीं करने वाला शुद्धदृष्टि है और करने वाला मिथ्या दृष्टि, क्योकि जब आत्मश्रद्धान मात्र ही सम्यग्दर्शन है अर्थात् आत्मा जैसा है वैसा श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है और जैसा नहीं वैसा श्रद्धान करना मिथ्या सम्यगदर्शन है। कहने का तात्पर्य है- कि आत्मा से भिन्न देवादि पर श्रद्धान करना जब

सम्यग्दर्शन न्''ीं है, तब कुदेवादि पर श्रद्धान करना मिथ्या दर्शन भी नहीं हो सकता अर्थात् बाह्य पदार्थ किसी भी प्रकार की श्रद्धा का विषय नहीं है, तब सम्यक् और मिथ्या श्रद्धान का विषय आत्मा होगा। ऐसी स्थिति मे आत्मा को देवादि की तरह कुदेवादि भी मानना चाहिए फिर आत्मा को त्रैकालिक शुद्ध कहना, आत्मा सो परमात्मा कहना स्पष्ट रूप से गलत सिद्ध हुआ। और जब तक यह एकान्त मान्यता नहीं छूटेगी तब तक मिथ्यात्व इन्हे जकडे रहेगा या ये मिथ्यात्व को जकडे रहेगे। •

ऐसा तो नहीं कहा जा सकता कि द्रव्य दृष्टि से आत्मादेवादि है, शुद्ध है अत. उस पर श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। ऐसा समझने वालो ने वास्तव मे न द्रव्य का स्वरूप समझा है, न पर्याय का, न गुणो का ही स्वरूप समझा है। परिणमन या परिणति का नाम पर्याय है। किसके परिणमन का ? द्रव्य के। और परिणमन की शुद्धता अशुद्धता द्रव्य की शुद्धा अशुद्धता पर निर्भर है। द्रव्य और पर्याय के स्वरूप को समझने वाला यह कहने की मूर्खता नहीं कर सकता कि ससारी जीव की पर्याय अशुद्ध है और द्रव्य शुद्ध है । लोगो को इस तरह की मूर्खता पूर्ण कथन करते हुए सुना गया है कि द्रव्य दृष्टि से द्रव्य शुद्ध होता है और पर्याय दृष्टि से पर्याय अशुद्ध होती है जबकि आगम मे दोनो दृष्टियो से द्रव्य को ही शुद्धाशुद्ध कहा गया है।

कुन्द कुन्द स्वामी ने विनय को मोक्ष का द्वारा कहा है। ''वि'' विशेष रूपेण नयति इति विनय'' इस व्युपत्ति के अनुसार। अमृत चन्द्र आचार्य जी के अनुसार वे विनय की उपयोगिता बताते हुए लिखते हैं- हे विनयाचार ! (विनय के पाँच या चार प्रकार) यद्यपि तुम मेरे आत्मा के स्वरूप नहीं हो, लेकिन तुम्हारे प्रसाद (कृपा) से जब तक मे अपने स्वरूप को प्राप्त न कर लूँ तब तक तुम्हारा सहारा लेता हूँ। विनय के पाच या चार प्रकारो मे उपचार विनय भी है। प्रसग वश उसी के विषय मे विचार करना है कि कुन्द कुन्द एव अमृत चन्द्र आचार्य को ही महत्व देने वाले तथाकथित मुमुक्षुओ की विनय के विषय मे क्या स्थिति है। इनकी मान्यानुसार ''विनय'' यह एक क्रिया व्यवहार है और व्यवहार धर्म नहीं है, लेकिन इसके बाद भी वे विनय किसी न किसी रूप करते अवश्य हैं।

63. क्या उपचार विनय महान ? नहीं, हाथ जोड़कर लेते हैं गुरुओं का सम्मान।

जिन एव जिनवाणी तो इस समय इस क्षेत्र मे स्थापना निक्षेप से हैं, लेकिन गुरु साक्षात् हैं। इनके (तथाकथित मुमुक्षु) द्वारा हेय समझकर की जाने वाली विनय के विषय मे सच्चे और झूठे गुरुओ की जितनी छान-बीन की जाती है उतनी जिन एव जिनवाणी के विषय मे नहीं। विनय की क्रिया के अनेक प्रकार हैं, लेकिन इन प्रकारो मे जो जिसकी

अष्टाग, पचाग एव पैर छूकर विनय करता है उसकी उसके प्रति श्रद्धा एवं भक्ति की विशेष रूप से अभिव्यक्ति मानी जाती है। एक बात और भी उल्लेखनीय है- जब इनके मतानुसार सम्यग्दर्शन एक ही प्रकार का है, तब उसका विरोधी मिथ्या दर्शन भी एक ही प्रकार का होगा। तब इनके द्वारा की जाने वाली वेमन की विनय के अनेक प्रकारों का उल्लेख आगे किया जाने वाला है। उनके किये जाने पर सामान्य रूप से मिथ्यात्व ही सिद्ध है, मुमुक्षुओं की ही दृष्टि मे। इनमे से अधिकाश लोगो को देखा है, कि साधुओ की विनय के नाम पर मात्र हाथ जोड दिया करते हैं और जमीन पर साधुओं से नीचे बैठ जाते हैं, कुछ तो हाथ जोडे बिना भी नीचे बैठ जाते हैं, कुछ लोग हाथ तो जोड देते हैं, लेकिन नीचे बैठते नहीं हैं। रास्ते में टकरा जाये तो कुछ हाथ जोडते हुए निकल जायेगे, कुछ नहीं भी जोडते। ऐसे लोगो के विषय में अपरिचित व्यक्ति समझ नहीं पाते कि ये जैन होगे, क्योंकि अजैन भी वैसी विनय करते हुये देखे जाते हैं। यदि परिचित हुए तो उन्हे या मुनि भक्तो को उनका आक्षेप सुनना होता कि तुम कैसे जैनी हो या वह कैसा जैन है ? मुनि महाराज निकल गये और तुमने या उन्होंने उन्हे नमस्कार नहीं किया ऐसे आक्षेप पर निरुत्तर ही होना पडता है। इन तथाकथित मुमुक्षुओ के बारे मे अधिकाश मुनि भक्त लोगो के मुख से सुना गया है कि सामने साधु आते हुए दिख जाये तो, तब सम्भव हुआ तो रास्ता ही बदल देते हैं। कभी-कभी सकीर्ण रास्ते मे अचानक आमना-सामना हो जाये तो बिना हाथ जोडे बिना झुके बिना सिर झुकाये भी प्रदर्शन ऐसा करेगे जिससे साधु भेष के प्रति विनय की अभिव्यक्ति होती है- विशेष रूप से रास्ता छोड देगे एक ओर खडे हो जायेंगे, रास्ता बना देगे कि महाराज आ रहे हैं एक तरफ हो जाओ।

एक दिन एक मुनि भक्त कहने लगे- महाराज ! आज तो बडा आश्चर्य हो गया। एक तथाकथित मुमुक्षु आपके प्रति बडी सहानुभूति दिखा रहा था- कह रहा था- मुनि महाराज को उस मदिर की वेदी मे क्यो बैठाये हुए हो। वहाँ उनको ध्यान-अध्ययन मे विघ्न होता होगा। धर्म शाला का एक कमरा खाली करके यहाँ बैठने का उनसे निवेदन क्यो नहीं करते। ज्ञात हुआ कि महाराज को वहाँ बैठने मे बाधा होती थी या नहीं, लेकिन कोरी सहानुभूति दिखाने वालो को बाधा अवश्य होती थी अत सहानुभूति साधु से नहीं स्वय मे थी। अधिकाश तथाकथित मुमुक्षु मायाचार एव भीरुता के साथ अवसर वादी भी होते हैं। यदि ये मुनि भक्तो से प्रेरित होकर उनके साथ साधुओ के पास पहुँचे तो उनकी विनय करने का ढग कुछ ओर ही होता है, जो साधुओ के प्रति श्रद्धा की कुछ वास्तविकता को प्रदर्शित करता है और कहीं ये अपने ही पक्ष के लोगो के साथ हो तो उनका वह ढंग औपचारिकता अथवा मजबूरी प्रदर्शित करता है। कभी इसके विपरीत स्थिति होती है अर्थात् मुनि भक्तो के साथ हों तो औपचारिकता प्रदर्शित होती है और साथियो के साथ हों तो वास्तविकता झलकेगी।

बहुत से लोगो के साथ हों तो मुनि या मुनि भक्तो की आख बचाने की कोशिश

करेंगे, क्योंक कि भीड-भाड मे कौन देखता है किसने विनय की और किसने नहीं। जब आंख बचाना सम्भव न हो सके तो कुछ लोग मुनि भक्ति का ऐसा प्रदर्शन करेगे कि मुनि भक्त भी पीछे रह जाये। और कहीं अकेले फस जाये तो भक्ति और अभक्ति के प्रदर्शन के कई एक रूप देखने को मिल जाये। गाव अथवा गाव के बाहर भी ऐसी स्थिति बनती है जैसे तारण पथियो की। कुछ तारण पथियो के बारे मे सुना है कि अपने गाव में रहते हुए देव दर्शन नहीं करते, लेकिन यदि गाव से बाहर गये तो दर्शन तो करेगे ही पूजन, अभिषेक भी करेगे। उसी प्रकार ये अवसर वादी अपने गाव या शहर के बाहर पहुचते हैं तो साधु की विनय तो करते ही हैं यथोचित रीति से साथ ही आहार भी देगे। लेकिन गाव मे साधु आ जाये तो गाँव छोडकर ही चले जाये। विचारणीय है कि जब सम्यग्दर्शन का विषय आत्मा ही सिद्ध होता है, उन्हीं के अनुसार, तब बाह्य पदार्थ श्रद्धा का विषय रहा नहीं है, लेकिन साधुओ को नमस्कार आदि करने के विषय मे उपरोक्त विनय करते समय सम्यक्त्व या मिथ्यात्व हो जाती है अर्थात् साष्टाग नमस्कार किया जाये तो मिथ्यात्व कहलाता है और खाली हाथ जोड देने मे मिथ्यात्व नहीं होता। इन क्रियाओ का सबध सम्यक्-मिथ्यात्व से है तो सम्यग्दर्शन का विषय आत्म श्रद्धान मात्र नहीं रहा।

64 क्या उपचार विनय महान ? नहीं, बालक भी सह नहीं सकते गुरुओ का अपमान।

एक दिन एक मुनि भक्त कहने लगे- महाराज श्री ! मैं आपके सामने अपनी कृतज्ञता व्यक्त करने आया हूँ। उस दिन आपने दिगम्बर भेष की विनय के विषय मे जो प्रवचन दिया वह हमारी लक्ष्य सिद्धि मे बहुत सहायक हुआ- मेरे एक सह अध्यापक हैं। जैन होकर भी मुनि धर्म की अपेक्षा सहधर्मी नहीं है अर्थात् मुनि भेष के प्रति सर्वथा अनादर का भाव रखते है। जैसा कि आपने उपदेश मे बताया कि खास कर जैन कुल मे पैदा होने वाले के सर्वथा अनादर भाव तो हो ही नहीं सकता। हो यह अपवाद समझना चाहिए, लेकिन मैं यह बात सुनने से पहले उनसे कह नहीं पाता था। हमने कहा-

दिगम्बर भेष के प्रति जो उपेक्षा एव घृणा के भाव हैं, उसका एक कारण यह भी समझ मे आया है कि जिसे वे गुरु मान रहे हैं, उसका मुनि भक्तो के द्वारा अपशब्दो से अनादर होना। इसका भी कारण उसका दिगम्बर जैन आम्नाय के विरुद्ध चलना एव बोलना अर्थात् स्वच्छद प्रवृत्ति। लौकिक गुरु ही क्यो न हो जिसे जो अपना गुरु मान बैठा है उनका अपमान तो बालक भी सहन नहीं कर सकता। बहुत से बालक मिलकर एक बालक को चिढा रहे थे- एक ने कहा- तुम्हारे मास्टर साहब तो चमार हैं। उसे सुनकर अच्छा नहीं लगा। उसने भी कहा- तुम्हारे मास्टर साहब भी तो मेहतर हैं और इनके कुम्हार। आपस मे

इसी पर से झगडा प्रारम्भ हो गया। "बालक" शब्द का अर्थ भी तो यही है। दूसरा उदाहरण जैनी लोग भक्ष्याभक्ष्य का विवेक नहीं रखने वाले लोगो के हाथ से पानी भी ग्रहण नहीं करते वे भी जैनो से छुआ पानी भी नहीं पीते। जैनी उनसे पूछते हैं कि आप लोग हमारे द्वारा बनाये गये भोजन वगैरह क्यो नहीं खाते-पीते ? उनका उत्तर होता है- आप लोग नहीं लेते इसलिये नहीं हम लेते। उनके पास दूसरा कोई कारण नहीं बताने के लिये। यह भी बाल बुद्धि समझना चाहिए। तीसरा उदाहरण- राम और महावीर में मतभेद समझने वाले। महावीर मे श्रद्धा न रखने वाले महावीर की उपेक्षा करते हैं, लेकिन महावीर का सच्चा उपासक राम की सर्वथा उपेक्षा नहीं कर सकता। इन तीनो उदाहरणो के आधार पर विचार करे- यह तो स्वाभाविक है कि एक असयमी वस्त्र धारी के विषय में अपमान जनक कुछ भी कहना इतना अपराध नहीं माना जाता, भले ही वह गुणवान क्यो न हो, लेकिन एक गुणहीन भेषधारी के विषय मे अपमान जनक शब्दो का प्रयोग करना तो दूर, अपितु "उनके" के स्थान पर "उसका" "वे" के स्थान पर "वह" का प्रयोग अपजान जनक माना जाता है। "हैं" की जगह "है" भी अपमान जनक है। जैसे अमुक साधु ऐसा क्यो करता है, उसे ऐसा नहीं करना चाहिए इत्यादि। अथवा साधुओ के नाम के आगे-पीछे "जी या श्री" शब्द का प्रयोग न करना अपमान जनक है। ऐसी स्थिति मे मुनि निन्दक मुनि भक्तो का अनुकरण नहीं कर सकते कि ये मुनि भक्त हमारे द्वारा मान्य गुरु के विषय मे अपमान जनक शब्दो का प्रयोग करते हैं, तो हम भी मुनियो के विषय मे करेगे। जो करते हैं उन्हे बालको के समान बाल बुद्धि कहना चाहिए। फिर इन्हे पिटने से कौन रोक सकता है मुनि भक्तो के बीच उन्ही के द्वारा दूसरी घटना के अनुसार भी तो ये यह नहीं कह सकते कि तुम लोग हमारे गुरु की आलोचना करते हो इसलिये हम तुम्हारे गुरु की आलोचना करते है या करेगे। यदि करते हैं तो भक्ष्याभक्ष्य अविवेकियो और इनमे कोई अन्तर नहीं है ऐसा समझना चाहिए।

65. क्या उपचार विनय महान ? नहीं, श्रावक से छुआ न लेते शूद्र खान और पान।

अभक्ष्य भक्षी से एक श्रावक ने कहा- यदि हम लोग आप लोगो के द्वारा छुआ खान-पान करने लगे तो आप लोग भी करने लगेगे हम लोगो के हाथ का छुआ खान-पान? कहने लगा-हाँ। यह विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि तथा कथित मुमुक्षुओ से मान्य गुरु कि आलोचना बद भी कर दी जाये, तब भी ये मुनि निन्दा नहीं छोड सकते। भले ही मार के भय से सार्वजनिक रूप से न करे, लेकिन जब स्व पक्ष का बहुमत देखेंगे तब तो चूकेगे नहीं, क्योंकि अपनी स्व्च्छद प्रवृत्ति हेतु मुनियो के शिथलाचार को मुद्दा बना लिया है। एक मुनि भक्त अपनी बीती सुना रहे थे- महाराज ! मैं तथाकथित मुमुक्षुओ की श्रेणी

में गिना जाता हूँ , क्योकि मैं उन तथाकथित साधुओं को नमस्कार आदि नहीं करता जो शिलाचार की चरम सीमा पर हैं। हमने कहा- यह तथाकथित मुनि भक्तों एव ऐसे ही मुमुक्षुओ की देन है। कैसे ? तथाकथित मुमुक्षु मुनि मात्र की उपेक्षा करते हैं और तथाकथित मुनि भक्त भेष मात्र की अपेक्षा रखते हैं। वे मुनि मात्र की आलोचना करते हैं तो ये मुनि मात्र की आलोचना सुन नहीं सकते हैं। यही कारण है कि मुनि मात्र की विनय न करने के कारण आप जैसे लोगो को वैसा समझ लेते हैं।

अब तीसरे उदाहरण पर विचार करे- राम को सराग अवस्था मे भगवान के रूप मे कितने लोग मानते हैं ? करोडो लोग। जैन उन्हे उस रूप भगवान नहीं मानते ऐसा भी कितने लोग जानते एव मानते हैं ? उतने ही लोग। राम दिगम्बर हुये थे इस बात को भी कितने लोग जानते और मानते हैं ? न के बराबर लोग। जैनी लोग अर्हन्त एव सिद्ध अवस्था को प्राप्त राम को भगवान मानते है ऐसा भी कितने लोग मानते/जानते हैं ? न के बराबर। ऐसी स्थिति मे जैनो पर आक्षेप होता है कि राम को भी आप भगवान मानते हैं तो आप लोगो को महावीर के उपासको की तरह राम के उपासको के रूप मे क्यो नहीं जाना जाता? इसका उत्तर है- तीर्थकर पद के अभाव मे। यह कोई जरुरी नहीं है कि तीर्थंकर होकर ही मोक्ष जाया जाता है। ऐसी स्थिति मे महावीर का उपासक राम की कभी उपेक्षा नहीं कर सकता। लोग भले ही उन्हे राम का उपासक समझे या न समझे। जो जैन धर्म से परिचित है, ऐसा कौन है, जो यह न जानता हों कि जैन साधु सदैव नग्न ही होते हैं, चाहे तीर्थंकर हो या सामान्य कोई मनुष्य अर्थात् कोई नहीं। जिसकी यहाँ समीक्षा चल रही है, उसे बहुत कम ही जैन होगे जो यह न जानते हो कि अपनी अनैतिकताओ के कारण श्वेताम्बर समाज से बहिष्कृत नग्नत्व का जन्म जात द्वेषी एक असयमी व्यक्ति था। यही कारण की उसने दिगम्बर आम्नाय मे आकर नग्नत्व को नकारने का हर सम्भव प्रयास किया। श्वेताम्बर साधुओ से द्वेष हो जाने के कारण उन्हे भी लताडा। इस तरह आम्नाय के विरुद्ध चलने एव बोलने के कारण बहिष्कार होना स्वाभाविक है, ऐसा होने पर एव आलोचना होने पर हिन्दुओ की तरह महावीर की उपेक्षा के समान कोई नग्नत्व की उपेक्षा एव आलोचना करने लगे तो हिन्दुओ मे उसमें को अन्तर नहीं रह जायेगा।

66. क्या उपचार विनय महान ? नहीं, रानी ने तो करी परीक्षा; समझ लिया अपमान।

बुद्ध अनुयायी राजा श्रेणिक चेलना को प्रभावित करने के लिये बौद्ध साधुओ के ज्ञानी होने की बात हमेशा किया करते थे। चेलना रानी के द्वारा उनके ज्ञानी होने की परीक्षा को श्रेणिक ने बौद्ध साधुओ का अपमान (अनादर) समझा और इसका बदला जैन साधुओ का अनादर करने का निश्चय करके लिया- इसे भी बाल बुद्धि कहते हैं। जबकि पति एव

राजा होने के नाते चेलना को ही दण्डित करना चाहिए। उसी प्रकार एक असंयमी को गुरु मानना और उसका किसी के द्वारा अनादर होने पर साधुओ के प्रति अनादर का भाव यह तो मूर्खता का ही लक्षण है।

एक तथाकथित मुमुक्षु जब कभी सामने से निकलता था हाथ जोड देता था। एक मुनि भक्त ने स्वाध्याय कक्ष में लगी उसके गुरु की तस्वीर को वहाँ से अलग कर दिया। उसी दिन से उसने हमारे सामने हाथ जोडना भी बद कर दिया। इस परिवर्तन से हमें कोई अन्तर नहीं पडा। उसे लगा कि मेरे द्वारा की जा रही उपेक्षा से इन्हे कोई अन्तर नहीं पडा या गौर नहीं कर रहे हैं। वह एक दिन हमारे सामने से चार-पाच बार आया गया यही दिखाने के लिये कि अब हम तुम्हारे सामने हाथ भी नहीं जोड़ते। मानो वह अपने गुरु के अपमान का बदला हम से ले रहा हो।

तथाकथित मुमुक्षु उसी की फोटो प्राय मदिर आदि के दरवाजे के ठीक बीचों बीच ऊपर लटकाया करते हैं। तीर्थयात्रा पर निकले एक यात्री सघ मे दोनो ही प्रकार (पक्ष) के लोग थे एक मुनि भक्त ने उपरोक्त फोटो को देखकर कहा- अरे, यह चपरासी यहाँ-कहाँ। उनमे से दूसरे बोले, हम मुनियो के विषय मे कुछ कहते तो अभी ठोकने लगते। उन्होंने कहा- चूके ही कब हो तुम और तुम्हारा यह गुरु मुनियो के विषय मे कुछ कहने से। कभी नहीं चूकते अवसर मिले तो।

सापेक्ष अनादर के इस प्रसग म एक साधु का कृत्य भी उल्लेखनीय है- एक ऐसा भी तथाकथित मुमुक्षु का समर्थक तथाकथित मुमुक्षु दिगम्बर साधु देखा है, जो स्वय गुरु होकर कहता है देव, गुरु, शास्त्र के ऊपर श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन नहीं है। वह शुरु से ऐसा नही था। लुहरीसेन समाज से साधु बना था। बीसपथी साधुओ ने उसकी "दस्सा/विनेका" कह कर उपेक्षा की अत "परिस्थिति का मारा क्या करता" के अनुसार तथाकथित मुमुक्षु बन बैठा और कहने लगा मे किसी को साधु नहीं मानता। पाप का उदय हो तो प्रतिकूलताये किसी ने किसी रूप मे सामने आती हैं। दस्सा होने के कारण साधुओं ने उपेक्षा की और जब जहा मुनि भक्तो को ज्ञात हो जाता था कि यह तथाकथित मुमुक्षु है तो वे भी उसकी उपेक्षा कर देते थे और यह साधु जहाँ कहीं जाता बीसपथी श्रावको से आहार नहीं लेता जैसे बीसपथी साधुओ की उपेक्षा का बदला इनसे लिया करता हो।

सहयोग देकर ही तथाकथित मुमुक्षु बनाये जाते हों सो भी बात नहीं; अपितु साधुओ द्वारा उपेक्षित मुनि भक्त भी वैसा बन बैठते हैं। कई एक के बारे में सुना है आहारादि देने के झझटो से बचने के लिये वैसा बन बैठते हैं और कहने लगते हैं हम मुनियों को मानते ही नहीं।

67. क्या उपचार विनय महान ? नहीं, कागज को जिनवाणी, मूर्ति का अपमान।

तारण पथी बहुत दिन से आग्रह कर रहे थे कि कम से कम सप्ताह मे एक दिन आपके प्रवचन हमारे ग्रन्थालय (वस्तुत जिसे ये चैत्यालय कहते हैं वह ग्रन्थालय ही है, क्योकि चैत्य का अर्थ प्रतिमा होता है) मे होना चाहिए। आग्रह पर एक दिन तो हुए, लेकिन पुन आग्रह नहीं किया। कारण महाराज ने जिनवाणी को नमस्कार नहीं किया। एक दिन एक तारण पथी से पूछा- तुम्हारे द्वारा मान्य इन ग्रथो मे कहीं यह लिखा हुआ है कि मूर्ति नहीं पूजना चाहिए ? यदि लिखा है तो हम नमस्कार करेगे ही क्यो। यदि नहीं लिखा तो मूर्ति मे नग्नत्व की उपेक्षा क्यो की जाती है। पूछे जाने पर कहते हैं- ये भगवान नहीं पत्थर हैं, तब इन्हे ग्रन्थो को जिनवाणी नही कागज ही कहना चाहिए। क्योकि साक्षात् दोनो ही नही हैं। आश्चर्य की बात है कि इसके बाद भी गुरुओ को नग्न रूप मे गुरु मानते हैं, लेकिन इनके इस परपरागत हठाग्रह के कारण गुरु इन्हे उपेक्षित किये हुए हैं अर्थात आहार नहीं लेते। यह तो स्वाभाविक रूप से देखा जाता है कि किसी कारण वश किसी से आहार न लिया जाये तो उसका भी गुरुओ के प्रति वह समर्पण भाव नहीं होता या रह जाता जो आहार ले लेने पर होता है या रहता है। यही कारण हे कि ये तारण पथी गुरुओ के प्रति इतने समर्पित नहीं हैं जितना होना चाहिए। इस बात की पुष्टि इसी समाज से बना एक मुनि कर रहा है जब हम जैसे मुनि किसी स्थान पर पहुचते हैं, ये लोग विशेष कोई रुचि नहीं दिखाते, लेकिन उपरोक्त साधु के पहुचने पर सक्रिय हो जाते हैं, सेवा मे, क्योकि वे इनसे आहार ले लेते है। कहने का तात्पर्य है- इन्होने पाषाण मे नग्नत्व की उपेक्षा की, तब नग्नत्व (गुरुओ) ने भी इनकी उपेक्षा कर दी अत नग्नत्व मात्र से उपेक्षित हो गये। इनकी तो एक ऐसे ब्राह्मण जैसी दशा है जो हमारे प्रतिपूर्ण समर्पित थे सेवा कार्य मे, लेकिन पाषाण मे नग्नत्व को देखना भी नहीं चाहते थे। विचारे उनके समर्पण मे कितनी वास्तविकता रही होगी। जिनकी समीक्षा की जा रही है उनकी इनसे विपरीत स्थिति है अर्थात् ये पाषाण मे नग्नत्व को स्वीकार करके भी मोक्ष प्राप्ति मे स्व-व-पर के लिये नग्नत्व आवश्यक नहीं समझते अन्यथा "भावेण होई णग्गो" कुन्द कुन्दाचार्य की गाथा के इस एक चरण पर ही जोर क्यो देते। फिर भी यथावसर उसकी उपयोगिता बतलाना मात्र एक बहाना है।

पहले भी बताया जा चुका है कि अपनी मान्यता को दूसरो के सामने सत्य सिद्ध करने के लिये बहुमत का प्रदर्शन अत्यधिक आवश्यक समझा जाता है, अत चिरकाल से उपेक्षित तारण पथियो पर इन्हें हाथ रखना जरूरी हो गया। इसलिये मोक्ष मे साधक, कष्टप्रद, क्रियाओ को अनुपयोगी बता कर एव स्वाध्याय को ही उपयोगी कहकर जिनवाणी

के प्रचार-प्रसार पर जोर देकर तारण पंथियों से हाथ मिला लिया। वे वेसारे विचारे मजबूर हो गये वैसा करने के लिये, लेकिन अधिक समय तक हाथ मिलाये न रह सके। जैसे ही उन्होंने उसकी भावि तीर्थकर के रूप में मूर्ति स्थापित की इन्होने अपना हाथ झटक लिया, क्योकि इसी का समर्थन करना होता तो हम गुरुओ से उपेक्षित क्यो होते जिन्हे हम अभी भी श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं।

तारण पथियो मे कुछ वर्ग ऐसा भी है जो तारण को मुनि के रूप मे सिद्ध करना चाहता है, लेकिन वे इसका कोई ठोस प्रमाण नहीं दे पाते। तथाकथित मुमुक्षु भी इनका अनुकरण कर रहे हैं अर्थात् ये अपने गुरु को अभी से पेपरो के माध्यम से पीछी-कमण्डल बगल मे रखकर, कमर से ऊपर का निर्वस्त्र भाग दिखा कर मुनि के रूप मे सिद्ध करना चाहते हैं। आगामी काल मे उसे अर्हन्त के रूप मे सिद्ध न करने लगे अत समीक्षा के रूप में पूर्व से ही सूचित कर देना उचित प्रतीत होता है।

68. क्या उपचार विनय महान ? हाँ, व्यसनी अफसर का सिर से कर लेते सम्मान।

अध्यापक जी कहने लगे-महाराज जी ! हमारे सह अध्यापक जी की ऐसी धारणा है कि मुनि से अच्छे तो हम ही हैं। हमने कहा-भाई ! कोई किसी से किसी अपेक्षा से अच्छा हो सकता है। उनसे पूछ लेना कि साधुओ से सर्वथा अच्छे हैं या कुछ या बहुत कुछ अच्छे हैं। सर्वथा तो अच्छे हो नहीं सकते। हो सकता है- शब्द ज्ञान की अपेक्षा अच्छे हों। महाराज श्री ! एक दिन मैने कहा- आप महाराज श्री के पास चलेगे क्या ? उन्होने स्पष्ट मना कर दिया। कुछ सोचकर कहने लगे- उन्होने मुझे बुलाया है क्या ? नहीं, मैं अपनी इच्छा से कह रहा हूँ। हमने कहा- मैं बुलाता तब वे आजाते क्या ? कहा नहीं जा सकता। क्योकि ऊपर से आदेश होता है कि किसी साधु के पास या सामने जाना ही नहीं। खासकर बिके हुए लोग इसका कट्टरता पालन करते है। किसी ने इसमे ढील दी तो लगे हाथ शिकायत पहुच जाती है। जब उन्होने स्पष्ट मना किया तो हमने कहा- आप नमस्कार नहीं करना। वे नहीं माने। आपका उनके बराबर का आसन लगा देगे। कहने लगे- उनके पास जाना ही तो विनय है। हमने कहा- तब क्या महाराज श्री से ही आग्रह करे आप के पास आने का ? कहने लगे- नहीं वे हमारे पास क्यो आयेगे। और क्रोधित से होते हुए कहने लगे- आप मेरी परीक्षा तो नहीं कर रहे ? हमने कहा- आप को ऐसा समझ लेने मे भी मुझे कोई आपत्ति नहीं है। जब दिगम्बर भेष के विषय मे इस प्रकार कहते हैं कि पुशवत् उसमे भी हमारा कोई आदर भाव नहीं है, तब तो परीक्षा करनी ही होगी कि साधु भेष के प्रति जो घृणा के बोल हैं वे तुम्हारे स्वय दिमाग की उपज है या प्राप्त धन का नशा बोल रहा है। शराबी के नशे के समान। आप साधुओ के सामने भी नहीं आना चाहते और साधु तुम्हारे

पास आये वह भी तुम्हें अच्छा नहीं लगेगा। यदि वास्तव मे उनमे सर्वथा विनय का भाव नहीं होता तो आपको किसी प्रकार का भय नहीं होता। किसी का कोई पशु तुम्हारे यहाँ घर में घुस जाये तो डण्डा मारकर निकाल दोगे। मदिर और धर्मशाला के तुम व्यवस्थापक हो। साधु संत आते ही रहते हैं। कभी प्रतिबध लगाया रुकने पर या रुके तो डण्डे के बल पर बाहर किया या कर सकते हो ? नहीं। ऐसा कुछ करने की आप लोगो मे तो क्या आज के कानून मे भी ताकत नहीं है। जब साधु भेष के प्रति पशुवत् आदर भाव नहीं एव साधुओ का कोई अनादर करे इसका तुम्हे कोई दु:ख नहीं, तब तो तुम्हे मुनि भक्तो के प्रति भी ऐसा ही अनादर भाव होना चाहिए, किन्तु नहीं है क्योकि साधुओ के सच्चे भक्त अपने ही माता-पिता के प्रति दिन पैर छुआ करते हो, उनकी सेवा करते हो और छात्रो को भी वैसा करने का उपदेश देते हो। वे कहने लगे - यह तो लोक व्यवहार है। हमने कहा - साधुओ की विनय भी लोक व्यवहार है। कहने लगे - साधु तो द्रव्य लिगी (मिथ्यादृष्टि) होते हैं। हमने कहा- ऐसे साधुओ के भक्त होने से तुम्हारे माता-पिता भी वैसे ही हुए। इतना ही नहीं आपका को स्वय ज्ञात है कि हमारे उच्च शिक्षाधिकारी मिथ्यादृष्टि ही नहीं व्यसनी भी हैं फिर भी तुम उनके सामने हाथ जोड लेते हो, कभी पैर भी छू लेते हो और लोक व्यवहार कहकर निर्दोष होना मान लेते हो ऐसी स्थिति मे तुम्हे साधु भेष से अकारण ही द्वेष है ऐसा समझना चाहिए।

69. क्या उपचार विनय महान ? नहीं, वीस के विरोधी रखते तेरह पर श्रद्धान।

अणुव्रत एव महाव्रतो को एकात से हेय (त्याज्य) कहने वाले एव निमित्त-नैमित्तिक सबध को न मानने वाले न मानकर मुनि आदि भेष को निष्प्रयोजनीय बताने वाले भी महाव्रती भेषधारियो की बातो, आज्ञा, आदेशो पर विशेष रूप से गौर किया करते हैं। इसके स्पष्टीकरण के लिये यह बताना आवश्यक है कि इस मत को मानने वाले नियम से तेरह पथी ही अपने आपको मानते हैं। यही कारण है कि वे वीसपथी साधु और उनके भक्तो के सक्त विरोधी होते हैं। एक वीस पथ के अनुयायी आचार्य ने अपने भक्तो को लिखित आदेश दिया था (जो मदिरो-मदिरो मे टागा गया था) कि इनके द्वारा लिखित, अनुवादित, सम्पादित एव इनकी सस्थाओ से प्रकाशित ग्रथों का बहिष्कार किया जाये अर्थात् इन्हे मदिरों, ग्रथालयो मे न रखे जाये। रखे हों तो उन्हे निकाला जाये, क्योंकि उनमे जिनागम के विरुद्ध लिखा एव मिलाया गया है। इस आदेश के कुछ ही समय बाद एक तेरह पथी आचार्य का उनकी सघस्थ फोटो सहित विशाल काय पत्रिका पढने मे आई। उसमें उपरोक्त आदेश के विपरीत आदेश प्रसारित था कि कहीं से भी प्रकाशित ग्रथो का बहिष्कार कहीं से भी न किया जाये। उनमे ऐसी कोई विरुद्ध बात नही लिखी गई जिससे

उन्हे बहिष्कृत करके जिनवाणी का अनादर किया जाये। ऐसा कहलवाकर पत्रिका प्रकाशित करने वाले तथा कथित मुमुक्षुओ के अतिरिक्त दूसरे नहीं हो सकते। विचारणीय हो जाता है कि वीस पथी आचार्य के आदेश को अन्यथा सिद्ध करने के लिये तेरह पंथी आचार्य को माध्यम क्यों बनाया, किसी पडित आदि को क्यों नहीं, यदि भेष महत्व हीन होता है तो। इससे सिद्ध होता है कि उनकी दृष्टि मे भेष महत्वपूर्ण है। इस बीच मुमुक्षुओं की ओर से यह भी सुनने मे आया था कि आचार्यों, मुनियो को तो उपदेश देना चाहिए, आज्ञा या आदेश नहीं। अपने पक्ष के आचार्य के विषय में ऐसा कुछ नहीं।

पहुच गया ऐसा ही मुमुक्षु एक साथ साधु के पास साहस करके। कहने लगा- क्या होता है भेष से ? साधु ने कहा कोई एक गृहस्थ भोजन करने के लिये बैठा। अनुकूलता न मिलने पर क्रोधित हो आवेश मे थाली एक ओर खिसकाकर होटल पर भोजन कर आया। क्या इसी तरह वैसी ही कषाय के आवेश मे साधु भेष मे भी किया जा सकता है ? नहीं, वह तो उससे कहीं बहुत क्रोधावेश मे भी वैसा नहीं कर सकता। क्या कारण है ? कहने लगा- महाराज समझ मे आ गया। यह बात हमारे अनुभव की है। इस भेष के माध्यम से बडे-बडे अनर्थों से बचा जा सकता है। मन मे आ भी जाये कोई अनर्थ, लेकिन वचन एव काय मे आने मे यह भेष बाधक है। निमित्त पाकर जब कभी पद विरुद्ध होने की स्थिति बनती है, तब बाह्य भेष पर दृष्टि स्वयमेव चली जाती है कि यह तुम्हारा कर्तव्य नहीं।

70. क्या उपचार विनय महान ? नहीं, भेष से विद्वेष है, ऐसा ही पड़ता है जान।

एक कम वय के ब्रह्मचारी से, इन्हीं तथाकथित मुमुक्षुओ के द्वारा सिखाये गये दो बालक कह रहे थे-यह भेष धारण क्यो कर लिया इससे होता क्या है। इसी बीच हमारा भी वहा पहुचना हुआ। हमे देखते ही दोनो वहाँ से भाग खडे हुए। यह बात ब्र जी से ही ज्ञात हुई। हमने कहा- तुमने क्या जबाव दिया ? कहने लगे- आप को देखते ही भाग गये। अवसर ही नहीं मिला कुछ कहने का। अवसर मिलता तो क्या कहते या कभी कोई ऐसा कहने लगे तो क्या जबाव दोगे ? कहने लगे- आप ही बताये क्या कहना चाहिए ? पहली बात तो "ईंट का जबाव पत्थर से देना चाहिए कि तुमने भी यह भेश धारण कर रखा है और तुम्हारी ही दृष्टि से भेष मात्र से कुछ नहीं होता तो तुम भी इसे छोड़ो, यदि नहीं छोड सकते तो इस भेष से द्वेष बुद्धि छोडो। यदि कहो कि हमने भेष धारण कर रखा है वह सार्थक हैं तो तुम जिसे गुरु कहते हो उससे कहना चाहिये था कि गुरु जी ! हमारे जैसे धोती-कुरता या फुलपेट शर्ट पहनो क्यो ये लटकाये रहते हो लगोटी, चद्दरा ? इनकी समीचीन बुद्धि का दिवालिया देखो कि किसी के दिगम्बर भेष धारण कर लेने से कुछ नहीं

होता और जिस मूर्ति पर वीस पथी चन्दन लगा देते हैं उसे ये पूज्य नहीं मानते। इन्हीं में से अधिकाश लोगो का मानना है कि जो साधु सोते समय चटाई का उपयोग करते हैं, वे वन्दनीय नहीं है और जिसे ये गुरु मानते उसने जीवन पर गद्दो पर ही जिंदगी गुजारी और गुजर गया। उसकी ये गुरु मूढ अष्ट द्रव्य से पूजा करते हैं। इस विषय मे भी इनमें मतभेद है। कुछ लोग उसकी पूजा के सक्त विरोधी हैं। इस क्रिया पर एक दिन विवाद छिड गया। जो विरोधी हैं वे एक दिन मुनि भक्तो से आकर कहते है- उन लोगो को मारो साले असयमी की अष्ट द्रव्य से पूजा कर रहे हैं। भक्तो न कहा हमसे क्या कहते - हो तुम्हीं ने उन्हे सिर पर चढाया है तुम ही निपट लो।

इन्हीं से कोई पूछ लेता है कि जिस असयमी को आप गुरु कहते हैं, क्या शास्त्रो मे जो गुरु का लक्षण बताया है वह उसमे घटित होता है ? उत्तर मिलता है- उनका हमारे ऊपर बडा उपकार है। पहली बात तो यह है कि "जब एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं करता" तब उपकार्य उपकारक भाव बनता ही नहीं। दूसरी बात उपकारी होना यह गुरु का लक्षण नहीं है। समतभद्र आचार्य के अनुसार गुरु का लक्षण जिसमे पाया जाता, उससे किसी का उपकार हुआ हो या ना हुआ वही गुरु है। क्या करे ये बेचारे टुचपुन्जहा। इनके दिमाग की दशा क्षुल्लक के खण्ड वस्त्र की तरह है- पैरो को शीत से बचाता हैं तो सिर नहीं बचता और सिर बचाता हैं तो पैर नहीं बचते। आखिर अपनी मान्यता को सुरक्षित रखने के लिये किन-किन आक्षेपो का सामना कर सकेगे इनीगिनी क्लासो मे उपस्थित होकर।

71 क्या उपचार विनय महान ? नहीं, सहधर्मी सहधर्मी में होने लगी विधर्मी की पहचान।

एक बार एक क्षुल्लक जी अपने गुरु जी से पृछ रहे थे- गुरु जी ! केश लोच करते समय इतना कष्ट नहीं होता जितना सहधर्मी के अपशब्द बोल देने पर होता है अर्थात् अनादर करने या विनय न करने पर होता है, ऐसा क्यो ? उत्तर मिला- जो जिसके जितने निकट होता उसकी प्रत्येक क्रियाओ पर विशेष गौर किया जाता है। यह तो अनुभव की बात है कि सहधर्मी के आदर करने पर उतना गौर नहीं किया जाता या महत्व नहीं दिया जाता जितना उसके अनादर पर गौर किया जाता है। उसी प्रकार एक विधर्मी के द्वारा आदर किये जाने पर गौर किया जाता है या महत्व दिया जाता है उतना उसके अनादर करने पर गौर नहीं किया जाता। दूसरे शब्दो मे कहा जाये- सहधर्मी की डाट जितनी असर करती है उतनी विधर्मी की मार भी असर नहीं करती। जैनेतरो और श्वेताम्बरो को तो दूर छोडिये इस समय दिगम्बर भी आपस मे विधर्मी की दृष्टि से देखे जाने लगे हैं। प्रसग मे मुनि भक्तो की

अपेक्षा तथाकथित मुमुक्षु आपस में अपने आपको सहधर्मी मानने लगे हैं अतः साधु लोग भी उनके द्वारा किये जाने वाले आदर पर जितना गौर करते हैं उतना अनादर किये जाने पर नहीं और मुनि भक्तो के द्वारा किये जाने वाले अनादर पर जितना गौर करते हैं उतना आदर किये जाने पर नहीं।

कुछ ऐसे भी विवेकी मुनि भक्त हैं जो शिथलाचारी साधुओ की विनय आदि नहीं करते, कुछ ऐसे भी मुनि भक्त हैं जो साधुओ के शिथलाचार और गैरशिथलाचार से प्रयोजन नहीं रखते, वे मात्र पहुचे हुए पुण्यवान साधुओ से मतलब रखते हैं और विनय आदि करते हैं, अधिकाश ऐसे भी हैं जो साधुओ का आचरण नहीं मात्र शक्ल देखते हैं अत उपरोक्त साधु क्रमश उपरोक्त मुनि भक्तो के द्वारा किये जाने वाले आदर अनादर पर विशेष गौर किया करते हैं।

किसी अपरिचित व्यक्ति के द्वारा की जाने वाली और नहीं की जाने वाले विनय पर मध्यस्थता उस समय तक बनी रहती है जब तक उससे परिचय न हो जाये कि यह मुनि भक्त या अभक्त, जैन है या जैनेतर। ज्ञात होने पर कि मुनि भक्त है और विनय नहीं कर रहा है तो उपरोक्त मुनि भक्तो मे किस श्रेणी का होगा। अधिकाश तथाकथित मुमुक्षुओ का मानना है कि आजकल के साधुओ से तो हम ही अच्छे हैं। इन्हें ऐसे कोरे मुनि भक्तो का बल प्राप्त है, जो मुनियो का पक्ष लेकर भी उनकी सेवा से कोसो दूर हैं। ऐसे भक्त जब किसी अभक्त पर आक्षेप करते हैं कि ये मुनियो को नहीं मानते, तब किसी से सुनना भी पडता है कि तुम मे और हममे अन्तर इतना ही है कि तुम नमस्कार कर लेते हो। इसके अतिरिक्त उनकी सेवा के नाम से हम तुम दोनो ही उदासीन है। थोडा सा अन्तर और है कि तुम पाव दबा देते हो और हम प्रवचन सुन लेते है।

72. क्या उपचार विनय महान ? नहीं, जिनवाणी रद्दी से चलती पान की दुकान।

पान ठेले पर पान खाने गये एक जैन ने देखा कि इसके पास रद्दी के रूप मे मोक्ष मार्ग प्रकाशक के बहुत सारे पन्ने पडे हैं। उसने दुकानदार से पूछा- ये कहाँ से लाये ? उसने कहा- अमुक प्रेस से। वह प्रेस पहुचा। पूछा, पता चला एक तथा कथित मुमुक्षु ने वह शास्त्र छपवाया था। उसके घर गया। पूछा ! वह कहने लगा- मुझे जितनी जरूरत थी उतना ले आया बाकी छोड आया। उन्होने कहा- जितनी आवश्यकता थी उतना ही छपवाना था। कहने लगा- उससे अधिक छाप दी तो मे क्या करु। घर ले आते। क्या करता घर लाकर ? जिन वाणी की अविनय तो नहीं होती जो कि पान वाला पान बाधकर, खाने वाले रास्ते मे फेककर और रास्ते चलने वाले पैरो से रोदकर कर रहे हैं। कहने लगा- जो खराब हो गये

उन्हें भी ले आता क्या ? हाँ। वह चुप रह गया। जिस समय प्रेस (छापाखानों) का आविष्कार हुआ था और शास्त्रो को भी वहा से छपवाने लगे थे उस समय विनय का सच्चा स्वरूप समझने वालो ने प्रेस से छपवाने वालो का बहुत विरोध किया था, लेकिन उनकी एक भी नहीं चली। जिस समय शास्त्र-हाथ से लिखे जाते थे उस समय कितना ध्यान रखा जाता था वह प्रेस मे कुछ भी नहीं रखा जाता। वर्तमान मे कितने लोग जानते होगे कि उपरोक्त विरोध हुआ होगा।

जब इनके द्वारा लिखित पोथियो का बहिष्कार मुनि भक्तो द्वारा किया जाता है, तब ये जिनवाणी के प्रति बडे विनयवन्त हो जाते हैं। उस समय विनय व्यवहार धर्म उपादेय हो जाता है। पत्रिकाओ के माध्यम से चिल्लाना प्रारम्भ हो जाता है कि जिनवाणी का अविनय किया जा रहा है।

एक क्षुल्लक जी जो इस समय मुनि हैं, वे इनके यहाँ से प्रकाशित ग्रथो को पढना दूर छूना भी नहीं चाहते। उन्होने क्षुल्लक अवस्था मे इन लोगो के सामने इनके द्वारा प्रकाशित ग्रथों के प्रति इस प्रकार की उपेक्षा की कि इन्हे वह उपेक्षा सहनशीलता के बाहर हो गई और इन्होने थाने मे जाकर क्षुल्लक के खिलाफ मान हानि का दावा पेश किया एव उन्हे बदी बनाने का आग्रह किया। थानेदार की समझदारी के कारण उन्हे सफलता नहीं मिली। इस समय तो इन्होने जिनवाणी के प्रति विनय का काफी प्रदर्शन किया, लेकिन जब ये स्वय जूते पहनकर जिनवाणी को मदिर से लाते ले जाते हैं और उसी बीच लघुशका आ जाये तो काख (बगल) मे दबाकर निपट लिया करते हैं। कहीं बाहर जाना हो तो जिनवाणी को अटैची/थैले मे रख लेते है और जहाँ-कहीं जिस किसी अवस्था मे बैठकर या लेटे-लेटे भी पढ लिया करते हैं, ऐसी स्थिति मे विनय हेय हो जाती है। अब इन पर मानहानि का दावा कौन पेश करे। पहले भी कह आये हैं कि शास्त्रो के प्रचार प्रसार का ढग ईसाईयो जैसा है अन्तर इतना ही है कि ये गाडी मे बेठकर रास्ते मे शास्त्रो को पत्रिकाओ के रूप मे फेकते हुए प्रचार नहीं कर रहे हैं आने वाले समय मे वेसा करन लगेगे ऐसी सम्भावना से नकारा नहीं जा सकता। "सभोग से समाधी" बताने वाले का अनुकरण तो करने ही लगे हैं- जन्म, मरण एव विवाह आदि के अवसर पर प्रसाधन की, भोगापभोग की वस्तुओ के स्थान पर आगत मेहमानो को शास्त्र भेट करते हुए देखे एव सुने जाते है। भले ही वे किसी के लिये उपयोगी हो या न हो अर्थात् पढने की नाम मात्र भी रुचि न हो। कभी भी खोल कर न देखे ग्रहण कर लेने के बाद, लेकिन भेट के रूप मे स्वीकारना ही होगा। ऐसे लोगो के मुख से सुना गया है कहते हुए कि पोथी हमारे क्या काम की है यह तो पडितो के हाथो मे शोभा देती है ऐसा कहकर दूसरो को ही पकडा देते हैं कौन ले जायेगा घर तक यह भार। वस्तुत शास्त्र तो उन्हे भेट करना चाहिए जो पढने मे रुचि के साथ-साथ पात्रता रखते हो।

73. क्या उपचार विनय महान ? नहीं, खरीद कर भेंट करना, करना गज स्नान।

धवला ग्रंथ जी की वाचना के अन्त मे विद्वानो को एक एक हजार रुपय से सम्मानित किया गया सभी ने अपने जेब गरम कर लिये, लेकिन एक विद्वान अपनी उदारता की कोरी सफाई देते हुए कहने लगे- मेरे जीवन भर के खर्च की जिम्मेदारी अमुक चन्द जी ने ले ली है अत मुझे आर्थिक समस्या नहीं है। इसलिये मैं इन पैसो से ग्रथ खरीद कर एक अग्रेज भाई को भेट करना चाहता हूँ उसने मुझसे मागे हैं। इन विद्वानो की मूर्खता पर आश्चर्य होता है। सबसे पहली बात तो यह है कि जिनवाणी (शास्त्रो) को आजीविका अथवा धन सग्रह का साधन बनाना ही जिनवाणी की अविनय है। दूसरी बात, जिनवाणी खरीदना बेचना भी जिनवाणा की अविनय है। तीसरी बात अपात्र को भेट करना भी अविनय ही है।

अग्रेजो के बारे मे सुना है कि वे मल विसर्जन के बाद मलद्वार को पानी से नहीं कागज से साफ किया करते हैं। जिनकी स्पष्ट रूप से काय शुद्धि नहीं है ऐसे लोगो को ये पडित शास्त्र भेट करना निर्दोष मानते हैं। यहां पडित साधुओ को आहार देने मे उनकी बाल की खाल निकालते है। खरीद कर भेट देना यह तो गजस्नान जैसी क्रिया हो गई। अन्तर इतना है कि वह स्नान करके धूल डालता है और ये धूल डालकर स्नान कर लेते है निष्प्रयोजनता दोनो मे समान है। कर्मनिर्जरा किसी के भी नही है।

धवला जैसे ग्रथो की रचना कितनी मन, वचन,काय की शुद्धि पूर्व हुई है इसके लिये इतिहास साक्षी है। जिन पण्डितो ने इसका हिन्दी अनुवाद किया है उनमे से कुछ पण्डितो के कृत्यो के बारे मे सुनने से लगता है उन्हे अनुवाद करना तो दूर इन ग्रथो को छूने का भी अधिकार नहीं था। एक पण्डित के पास पढने के लिये गये एक ब्रह्मचारी जी से ज्ञात हुआ कि वे होटल की आलू की सब्जी और पुडी खाने के बड़े शौकीन थे और उनके साथी मैदा की जलेबी खाने के शौकीन। जिसे एक श्रावक छू भी नहीं सकता। यह भी ज्ञात हुआ कि धवला की एक पक्ति का अनुवाद किया जाता था और एक ग्रास मीठा खाया जाता था। शास्त्रो के अविनयी पडितो को इन मुमुक्षुओ ने मुह मागा पैसा देकर अपने पक्ष मे कर लिया। मानो किसी के द्वारा परिश्रम से बनाई गई दाल में नमक-मिर्च डालकर अपना बना लिया हो। ऐसे समय मे विनय हेय हो जाता है। जिनवाणी को शास्त्री कहने वाले इस अविनयी जैसा कोई अविनयी नही होगा।

74. क्या उपचार विनय महान ? नहीं, जब जूतों की शान पर होगा जिनवाणी का पान।

इन मुमुक्षुओं को व्रतो की तरह स्वच्छता ने विनय भी बाधक है अत, जहाँ-कहीं, जब कभी इन्हें अपनी सुविधा के अनुसार चलने में परेशानी का अनुभव हुआ और इन्होने उसे नकारने का हर सम्भव प्रयास किया। इन्हीं मे एक वर्ग ऐसा भी है जो अपने आप को शुद्ध तेरह पथ आम्नाय का स्वीकार करके खडे होकर पूजन करने पर ही जोर दिया करता है, क्योकि बैठकर पूजा करना देव, गुरु, शास्त्र अपमान अविनय है। इन्हीं मे एक वर्ग ऐसा भी है जो जमीन पर बैठकर पूजा करना अपना अपमान समझता है अन्यथा यह कुर्सी पर बैठ टेबिल पर द्रव्य की थाली रखकर पूजा को क्यो करता। पूजन ही नहीं सामूहिक स्वाध्याय एव भोजन भी कुर्सी पर बैठ टेबिल सामने रखकर किया जाता है। व्यक्तिगत रूप से तो करते ही हैं। ऐसे प्राय वे लोग हैं, हो सकते हैं, जिन्हे स्कूलो/कालेजो की हवा लगी है। वह समय दूर नहीं जब भोजन की तरह पूजन एव स्वाध्याय करते समय भी जूता उतारना इनकी शान के खिलाफ हो जाये। इन्हे अग्रेजो का वशज कहना चाहिए। छुआछूत से ना इन्हे परहेज नही है, जबकि धुले हुए वस्त्रो को पहनने के बाद एक बार भी लघुशका या दीर्घशका की जाये तो वे वस्त्र शुद्ध नहीं रह जाते लेकिन इस तरह शुद्धि का ध्यान रखने वालो को ये मूर्ख समझते हैं। सघस्थ ब्र जी को बैठकर पूजा करते हुए देखकर एक तथाकथित मुमुक्षु कह रहा था कि इन्हे खडे होकर ही करना चाहिए। हमने कहा-जो कुर्सी पर बैठकर फुलपेन्ट शर्ट पर पूजा करते है उनकी अपेक्षा ना ये बराबर अपराधी है, क्याकि उपरोक्त तरीके से की जाने वाली राजसिक एव तामसिक वृत्ति की सूचक है विनय की नहीं। साथ ही सात्विक देवादि की अविनय हा नहीं महाअविनय का सूचक है। अनुभव की बात है कि अनभ्यास दशा मे खड्गासन की अपेक्षा पद्मासन, अर्धपद्मासन आदि से सामायिक करने मे एकाग्रता विशेष होती है उसी प्रकार पूजन के विषय मे समझना चाहिए। वस्तुत विनय अविनय का बाह्य क्रियाओ से इतना सबध नहीं है जितना भावो से है। प्रमाद अविनय का मुख्य कारण है। इन तथाकथित मुमुक्षुओ ने भी वेतन सेवी पुजारी लगा रखे हैं। हम समझते हैं- ऐसे लोगो के भरोसे पर होने वाली पूजा पूजा नही, अपितु महा अविनय है।

एक छोटे से गाव मे कुल मात्र पाच घर जैन समाज के। एक परिवार का तीन हजार रुपये साल दिये जाते थे। उसमे कैसी और कितनी द्रव्य चढाना एव कितना वेतन लेना यह उसकी इच्छा पर निर्भर था प्रतिदिन कब और कितनी देर पूजन करता होगा यह तो भगवान जाने लेकिन हमने एक ही दिन देखा दो मिनिट भी नहीं लगे होगे एक थाली की द्रव्य दूसरी मे भरते हुए। यह अविनय की चरम सीमा है। इस पर गौर न करके बैठकर

पूजा करने में रुचि रखने वाले बैठकर करने पर जोर देते हैं और खड़े होकर करने में रुचि रखने वाले खडे होकर करने पर बल दिया करते हैं शेष अनादर में दोनीं समान है। विशेष "नग्नत्व समीक्षा" अ काण्ड में।

तथाकथित मुमुक्षु ने एक पुजारी की शिकायत की कि वह भगवान के अभिषेक/ प्रक्षाल के नाम पर पिटाई कर रहा था ? हमने कहा- तुम्हे उस समय विचार करना चाहिए बीस-बाईस फुट के खड्गासन मुद्रा के भगवान हैं और अभिषेक/प्रक्षाल की समुचित व्यवस्था नहीं है, तब भगवान का प्रक्षाल उपरोक्त तरीके के अलावा और कैसे किया जा सकता। तुम्हें तो व्यवस्थापक को सूचित करना चाहिए कि प्रक्षाल वगैरह की समुचित व्यवस्था की जाये न कि पुजारी का उपहास करने लगे। "विनय" इस करण के उपसहार मे कहना यह है कि विनय व्यवहार नय है और प्रवृत्ति में कभी हेय नहीं हो सकती।

75.क्या नय अर्थ महान ? नहीं, जो निर्णय को निश्चय माने मिथ्यादृष्टि जान।

कोई भी व्यक्ति शास्त्रो के विषय मे कुछ भी ज्ञान न रखता हो, लेकिन निश्चय - व्यवहार, हेय-उपादेय शब्दो को प्राय सभी जैन जानने लगे हैं, भले ही इनका न शाब्दिक अर्थ जानते हों न रूढ अर्थ व्याकरण के बिना। और दोनो के अतिरिक्त आगम मे सात नय बताये गये हैं उनका स्वरूप समझे बिना उपरोक्त दोनो नयो के अर्थों का ज्ञान हो ही नहीं सकता। नयो का विशेष रूप से कथन करने वाले शास्त्रो के अध्ययन से ऐसा ज्ञात ही होता है। निश्चय उपादेय है और व्यवहार नय हेय यह भी धारण बन चुकी है। यह भी चर्चा जोर पकडे हुए है कि पहले कौन होता है। जिनकी दृष्टि मे व्यवहार एकान्त से हेय ही है उनकी दृष्टि मे वह पहले हो ही नहीं सकता। तथाकथित मुमुक्षुओ ने निर्णय को ही निश्चय समझ लिया हैं कि पहले मोक्ष जाने का निश्चय होता है और वहा जाने का प्रयास (व्यवहार) होता है, ऐसा कहकर भोले-भाले लोगो को वरगलाया जाता है, लेकिन उन्हे समझना चाहिए कि निश्चय मे और निश्चय नय मे बहुत अन्तर होता है। निर्णय का पर्यायवाची निश्चय तो पशु को भी हो जाता है, लेकिन निश्चय नय तो छटवे गुणस्थानवर्ती साधुओ को भी नहीं होता, क्योकि वहाँ प्रवृत्ति एव प्रमाददशा है जो निश्चय नय के होने मे बाधक। यह तो सर्वमान्य है कि व्यवहार निश्चय का कारण है निश्चय व्यवहार का नहीं। और यह भी मान्य है कि कारण कार्य के पहले ही हुआ करता है ऐसी स्थिति मे कहने की आवश्यकता ही नहीं है कि कौन पहले होता है। दूसरी बात, व्यवहार को एकान्त से हेय (त्याज्य) मानने/कहने वालो को यह कहने का अधिकार ही नहीं है कि दोनो का क्रम क्या है अन्यथा तो यह स्पष्ट रूप से बहाना है कि व्यवहार बाद मे होता। कारण के पहले कार्य

हो गया तो कारण की आवश्यकता ही कहाँ है। हेय कहने की अपेक्षा बाद मे कहना यह मायाचार है। निश्चय नय का शाब्दिक अर्थ है- न जिसमे कुछ जोडा जाये और न निकाला जाये। और अखण्ड द्रव्य मे जो भेद करता है वह व्यवहार कहलाता है।

मतार्थ को न जानने वाला ही जानता है कि जैनमत मे ही प्रमाण के साथ साथ सापेक्ष नयो से वस्तु तत्त्व जाना जाता है। अन्य मतो मे नयो का कोई उल्लेख नहीं है इसलिये तो एकान्त से जकडे हुए है।

द्रव्य दृष्टि (निश्चय दृष्टि) सो सम्यग्दृष्टि और पर्याय (व्यवहार) दृष्टि सो मिथ्यादृष्टि। यह भी एक नारा है इनका, क्योकि स्त्री मुक्ति समर्थन का प्रतिनिधित्व करने वाले "एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं करता" इस मिथ्या मत मे व्यवहार दृष्टि बाधक है। साख्य पर्याय (उत्पाद, व्यय) को नहीं मानते और बौद्ध द्रव्य (ध्रौव्य) को नहीं मानते। मानते भी हैं तो काल्पनिक मानते हैं। जिनकी समीक्षा चल रही है वे द्रव्य को त्रैकालिक शुद्ध मानकर पर्याय को ऊपर ऊपर होना मानते है। दूसरे शब्दो मे यो कहा जाये कि साख्य विशेष को नहीं मानते और बौद्ध सामान्य को नहीं मानते एव योगमत वाले दोनो को मानकर भी एक दूसरे मे सर्वथा पृथक् मानते हैं। उसी प्रकार ये मुमुक्षु द्रव्य पर्याय दोनो के अस्तित्व को स्वीकार करके भी दोनो को परस्पर मे भिन्न मानते है अत ये साख्य एव बौद्ध की अपेक्षा योगो के अधिक निकट हैं। इनकी दृष्टि मे पर्याय को शुद्ध बनाने का पयास किया जाता है, जो पानी मे उठे बुलबुले को शुद्ध बनाने के समान निरर्थक है।

जिस किसी द्रव्य का जिस किसी दृष्टि से जिस समय विचार करते हैं, उस समय वह वैसा हो नही जाता, अपितु होने की योग्यता के आधार पर वैसा कह दिया जाता है। जैसे सिद्ध के समान शुद्ध हैं ससारी जीव का अर्थ है वैसा होने की योग्यता। जिसे दूसरे शब्दो मे कहा जाता है कि सिद्ध तो साक्षात् सिद्ध है और ससारी परपरा से सिद्ध है अन्यथा ससारी यह उपाधि क्यो लगाई जाती साक्षात् सिद्ध होता तो।

76. क्या भावार्थ महान ? नहीं, भाव-अर्थ को ग्रंथ मानना जन्मजात अज्ञान।

ऐसे ही एक मुमुक्षु पण्डित, छुट-पुट ग्रथो को पढकर यह मान चुके थे कि हमने बहुत कुछ पढ लिया। एक दिन तत्त्व चर्चा करने के उद्देश्य से आ गये हमारे पास। कहने लगे- चर्चा करना चाहते हैं। हमने कहा- चर्चा करने का उद्देश्य हार-जीत का है या तत्त्व निर्णय का। जिसे न्याय की भाषा मे विजिगीषु (जीतने की इच्छा) या वीतराग (तत्त्व का निर्णय) कथा कहते हैं। कहने लगे- हमे तो तत्त्व का निर्णय करना है। हमने कहा-आप बताएँ-चर्चा का आधार ग्रथ होगे निर्ग्रंथ/ निराधार ? कहने लगे- शास्त्रों के आधार पर ही होगी। हमने कहा- चारो अनुयोगो के आधार पर होगी ? कहने लगे- नहीं, मात्र द्रव्यानुयोग के आधार पर। हमने कहा- किस आचार्य को और द्रव्यानुयोग के किन ग्रथो को आप प्रमाणिक मानते हैं ? कहने लगे- कुन्दकुन्दाचार्य द्वारा रचित समयसार को और इसी के समर्थक द्रव्यानुयोग के ग्रथो को और इन ग्रथो को जिन आचार्यों ने लिखा है उन्हे भी प्रमाणिक मानते हैं। हमने कहा- किसी भी अनुयोग का ग्रथ हो मुख्य रूप से सस्कृत एव प्राकृत भाषा मे लिखा गया है, आचार्यो द्वारा। आप किस भाषा के जानकार हैं ? कहने लगे- हम तो मात्र हिन्दी जानते हैं। हमने कहा-आप लोगो की दृष्टि में प्राकृत भाषा मे लिखा गया शास्त्र ही समयसार है या उसके ऊपर लिखी गई सस्कृत एव हिन्दी मे लिखी टीकाए और भावार्थ, विशेषार्थ, अन्वयार्थ टिप्पणी भी समयसार है ? काफी देर तक बौद्धिक श्रम करने के बाद भी उन्हे ठीक उत्तर न सूझा। कहने लगे- ऐसा कुछ पूछने से आपका अभिप्राय क्या है ? अभिप्राय यह है कि इस समय लाग प्राय प्राकृत, सस्कृत मे तो समयसार पढते ही नहीं, यहाँ तक हिन्दी अनुवाद भी नहीं पढते और भावार्थ, विशेषार्थ पढ कर कहा करते है कि समय सार मे, प्रवचनसार मे ऐसा लिखा है। हम जैसे लोग जिन्होने तीनो भाषाओ मे उपरोक्त ग्रथ पढे हैं, समझ जाते है कि यह समयसार नहीं, अपितु भावार्थ या विशेषार्थ है, लेकिन जिन्होने नहीं पढे वे तो धारणा ही बना लेते हैं समयसार मे ही लिखा है।

वर्तमान मे स्वय प्राकृत, सस्कृत भाषा पढाना तो दूर पढने, पढाने वालो को समय बर्बाद करना कहते हैं, ऐसे लोगो से कहा जाता है या ऐसे लोग कहते हैं कि हिन्दी अनुवाद पढकर क्यो समय बर्बाद करे या करते हो विशेषार्थ, भावार्थ पढ लो उसी से समझ मे आ जायेगा। कहने लगे- आप भावार्थ एव विशेषार्थ को इतना उपेक्षित क्यो करते हैं, उसमें तो सारे ग्रथ का सार भरा होता है और जिसने विशेषार्थ आदि लिखा उसने ग्रथ के सार को समझ कर ही लिखा होगा ? हमने कहा- आचार्यों के अभिप्राय की नासमझ के कारण

अज्ञानता से गलत बोलना या लिखना अलग बात है और जानबूझकर हठाग्रह से बोलना, लिखाना अलग बात है। कुन्द कुन्द स्वामी ने ऐसे लोगों को कुदृष्टि कहा है कि जो मति, श्रुत ज्ञान के बल पर जो जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कहे हुए की मनमाने ढग से व्याख्या करता है। समयसार मे निश्चय स्तुति एव व्यवहार स्तुति का जैसा अर्थ स्वय ग्रथकार और उनके टीकाकार आचार्यों ने किया है वैसा उनका (गाथाओ) का अर्थ तुम जिसे गुरु कहते हो उसने नहीं किया ऐसा टेप सुनने से ज्ञात हुआ। अत भावार्थ आदि को ग्रथ नहीं माना जा सकता।

77. क्या भावार्थ महान ? नहीं, आचार्य, कहीं दोस्त तो कहीं दुष्मन समान।

आप लोगो की दृष्टि मे जो भी ग्रथ और उनके रचयिता सर्वथा प्रमाण ही होते हैं या कहीं प्रमाण और अप्रमाण भी हुआ करते हैं ? कहने लगे - यह प्रश्न भी गले नहीं उतरा। मतलब यह है कि कुन्द कुन्द स्वामी ने समयसार के अतिरिक्त और भी ग्रथ लिखे हैं वे सभी प्रमाण हैं या नहीं ? सभी को प्रमाण तो कह नहीं सकते, क्योकि तुम्हारी ही दृष्टि मे उन्हीं के द्वारा रचित चरणानुयोग का ग्रथ मूलाचार प्रामाणिक नहीं है। कहने लगे मूलाचार कुन्द कुन्द आचार्य द्वारा रचित नहीं है, अपितु उन्हीं जैसे नाम के अन्य आचार्य का है। समयसार जैसे ग्रथ लिखने वाले आचार्य तो मूलाचार जैसे ग्रथ नहीं लिख सकते। हमने कहा- ग्रथ ही नहीं अध्याय, अध्याय ही नहीं, श्लोक के चार चरणो मे से कोई एक चरण भी तुम्हारी मान्यता के खिलाफ है तब या तो वह किसी ओर ने जोड दिया है या व्यर्थ ही लिखा गया है। जैसे आप लोगो के द्वारा ही कहा जाता है- उमास्वामी ने तत्त्वार्थ सूत्र के आदि के तीन चार अध्याय व्यर्थ लिखे हैं अर्थात् एक ही आचार्य एव ग्रथ आप लोगो की दृष्टि मे प्रमाण भी हैं और अप्रमाण भी। तुम्हारी ही दृष्टि से सर्वथा अप्रामाणिक ग्रथ मे भी अपने मतलब की बात मिलती है तो उसे प्रामाणिक मान लेते हैं। तत्त्वार्थ सूत्र जैसे ग्रथ को तुम्हे छूने का भी अधिकार नहीं है। किसी भी तरह काट-छाट करके उसे द्रव्यानुयोग का ही सिद्ध करके अपना पक्ष पुष्ट नहीं कर सकते, क्योकि उसमे प्रथमानुयोग को छोडकर तीनो अनुयोग स्पष्ट रूप से समाये हुए हैं। ऐसे ग्रथ पर कुत्सित हिन्दी टीका, भावार्थ, विशेषार्थ अन्वयार्थ लिखकर अपनी कुदृष्टि का परिचय दिया है

जयसेन आचार्य ही नहीं उनके द्वारा लिखी गई टीकाए इनके लिये दुश्मन भी हैं और दोस्त भी। जब इनकी मान्यता पर कुठाराघात करती हैं तो दुश्मन हो जाती हैं, लेकिन जब विषय को समझने मे सहायक होती हैं दोस्त हो जाती हैं। शान्ति भक्ति में शान्तिनाथ भगवान की स्तुति करते हुए पूज्यवाद जी कहते हैं- "हे भगवन् ! भव्य जण स्नेह से आपके चरणो की शरण को प्राप्त नहीं होते अपितु उसमे कारण विचित्र कर्मों या दुःखों के

समूह सहित संसार रूपी भयंकर समुद्र है।" उसी प्रकार जयसेन आचार्य जी की टीकाओं से दोस्ती का कारण अमृत चन्द्र आचार्यों जी की टीकाओं का जटिल/कठिन होना है। जिसे हिन्दी टीकाकार भी हिन्दी टीका करके सहज नहीं बना पाये कि जिसे शब्दार्थ, मतार्थ, आगमार्थ, नयार्थ के समझे बिना भावार्थ मात्र से गले उतारा जा सके। जयसेन आचार्य से दोस्ती यह बात विपक्षियो को बताना नहीं चाहते इसलिये तो जहाँ अमृत चन्द्र आचार्य जी की टीका मे कठिनाइ आती है तो जयसेन जी की टीका को चुपचाप देख लेते हैं कि कोई देख न पाये। इन टीकाओं के विषय मे इन तथाकथित मुमुक्षुओ मे भी मतभेद है। इनमे एक वर्ग ऐसा भी है जा मायाचार न करके स्पष्ट रूप से दोनो मे दोस्ती करके चलता है लेकिन इन्हीं के यहाँ से प्रकाशित जयसेन जी की टीका की हिन्दी मे अपनी मान्यता थोपी हैं। समयसार मे जहाँ ज्ञानी शब्द आया है वहाँ उसके सामने कोष्टक मे चतुर्थ गुणस्थनवर्ती जीवो से लेकर अर्थ किया है। जबकि आचार्य ने समयसार पढने का अधिकार भी इन्हे नहीं दिया।

78. क्या भावार्थ महान ? नहीं, शुभ आदि के सत्यानाश से होगा, इनको केवल ज्ञान।

कहने लगे- चतुर्थ गुणस्थान मे शुद्धोपयोग होता है। हमने कहा- तुम्हार पक्ष के एक व्यक्ति भी कह रहे थे। हमने उसका कारण पृछा- कहने लगे- अनतानुबधी कषाय की चौकडी का अभाव हो चुका है। हमने पूछा- कहाँ लिखा है कि अनतानुबधी के अभाव मे शुद्धोपयोग होता है ? कहने लगे समयसार मे। विशेषार्थ, भावार्थ या अन्वयार्थ में लिखा हागा। वे सुनते ही बगले झाकने लगे, क्योकि विशेषार्थ मे ही पढा था मूल ग्रथ मे नहीं।

प्रवचनसार मे जो शुद्धोपयोगी का लक्षण किया है वह चतुर्थ गुणस्थानवर्ती के ही नहीं छटवे गुणस्थानवर्ती मे भी घटित नहीं होता। "जिसने पदार्थों को अच्छी तरह से जान लिया है, सयम और तप से सहित हैं, राग से रहित हैं, सुख-दु.ख मे समता भाव है वह श्रमण शुद्धोपयोगी है। ये विशेषताये चौथे गुणस्थानवर्ती मे नहीं होती, फिर वहाँ वैसे उपयोग की कल्पना कैसी ? कहने लगे- शुद्धोपयोगी होने मे उपरोक्त विशेषताओ का होना कोई आवश्यक नहीं है। उसके होने मे बाधक शुभोपयोग है अत. शुभोपयोग, का अभाव सो शुद्धोपयोग। हमने कहा- तब अशुभोपयोग के अभाव मे शुभोपयोग, शुद्धोपयोग के अभाव मे केवल ज्ञान और केवल ज्ञान के अभाव में मोक्ष होता होगा। कहने लगे - केवल ज्ञान का अभाव नहीं होता है और न उसके अभाव में मोक्ष। हमने कहा-क्यो नहीं हागा जब कार्य के होने मे अभाव कारण है। दूसरी बात, न्याय शास्त्रों में अभाव का उल्लेख दो प्रकार से किया है- तुच्छाभाव (प्रसज्जप्रतिषेध) और भावान्तर स्वभाव (पर्युदासपक्ष)। जैनाचार्यों ने भावान्तर स्वभाव रूप अभाव को ही वास्तविक माना है और तुच्छाभाव को

मिथ्या कहकर उसका निषेध किया है। ऐसी स्थिति मे शुभोपयोग के अभाव से शुद्धोपयोग होता है, ऐसा मानने पर अशुभोपयोग शुद्धोपयोग का कारण होगा, क्योंकि शुभोपयोग का अभाव ''भावान्तर स्वभाव'' के अनुसार अशुभोपयोग रूप ही होता है। क्योकि शुभोपयोग का अभाव शुद्धोपयोग रूप तो हो नहीं सकता, क्योकि उसी का कारण वह स्वय नहीं हो सकता। यदि अभाव का अर्थ भावान्तर स्वभाव न माना जाये तो तुच्छाभाव नहीं चाहते हुए भी स्वीकार करना होगा, जो सिद्धात विरुद्ध है।

शुद्ध शुभ एव अशुभ ये तीनो आत्मा की ही परिणति है, लेकिन एक समय मे एक ही होती है जैसे रोटी तीन प्रकार की होती हैं-पाटे की, तवे की, और थाली की। तीनो ही आटे की ही परिणनि है। पाटे की रोटी का अभाव सो तवे की रोटी, या तवे की रोटी का अभाव सो थाली की रोटी या थाली की रोटी का अभाव सो पेट का भरना। यहाँ ''अभाव'' का अर्थ तुच्छाभाव लिया जाये तो पेट मे रोटी पहुच नहीं पायेगी, न तवे पर पहुचेगी और न थाली मे, क्योकि पाटे पर से फेक दी जायेगी। जिस प्रकार अशुभोपयोग/सक्लेश की क्रमश घटती हुई स्थिति जब चरम सीमा पर पहुचती है तब शुभोपयोग/विशुद्धि का कारण होती है। उसी प्रकार शुभोपयोग/विशुद्धि की क्रमश बढती हुई स्थिति जब चरम सीमा को प्राप्त होती है, तब शुद्धोपयोग मे कारण होती है।

79 क्या भावार्थ महान ? नहीं, दुनियाँ को विश्वास दिलाने करते कोशापान (कसम)।

(एक महिला दूसरी से कह रही थी-भगवान कसम चौथे मे शुद्धोपयोग होता है)

द्रव्य सग्रह म नेमी चन्द्र आचार्य एव उनके टीकाकार ने जो धर्मध्यान का समीचीन विवेचन किया है। लेकिन तथाकथित मुमुक्षु पण्डितो द्वारा ही नहीं ऐसे ही मुनियो, आर्यिकाओ क्षुल्लक-क्षुल्लिकाओ द्वारा उसे अधूरा एव गलत ढग मे प्रस्तुत एव विवेचित किया जाता है। जयसेन आचार्य जी ने शुद्धोपयोग की शुक्ल ध्यान के साथ तुलना की है अर्थात् अध्यात्म भाषा मे जिसे शुद्धोपयोग कहते हैं उसको आगम भाषा मे शुक्ल ध्यान कहते हैं, लेकिन शुद्धोपयोग को चौथे गुणस्थान मे मानने वाले धर्म ध्यान को शुद्धोपयोग का पर्यायवाची मानते हैं जो कि सिद्धात के विरुद्ध है।

द्रव्य सग्रह के टीकाकार ब्रह्मदेव सूरि ने ''एक से तीन तक अशुभोपयोग, चार से छह तक शुभोपयोग और सात से बारहवे गुणस्थान तक शुद्धोपयोग माना है'', लेकिन सातवें, गुणस्थान से जो शुद्धोपयोग का कथन किया है वह उपचार से है। मुख्य रूप से शुद्धोपोग वही है जो केवल ज्ञान प्राप्त करा दे, सो वह बारहवे गुणस्थान मे होता है। प्रश्न हुआ कि पहले से लेकर बारहवे गुणस्थान तक अशुद्ध निश्चयनय होता है, तब अशुद्ध

निश्चय.नय मे शुद्धोपयोग कैसे होगा ? उत्तर सातवें से शुद्ध का आलंबन है, शुद्ध का ध्येय हे, शुद्ध का कारण है अत शुद्ध है, वस्तुतः नहीं। तीनो उपयोगों का चौदह गुणस्थानों मे विभाजन हो जाने के बाद अब गुजाइश ही नहीं रह जाती शुद्धोपयोग को चतुर्थ गुणस्थान् मे जबर्दस्ती थोपने की अन्यथा जयसेन आचार्य और उनकी टीका को प्रमाण मानकर भी उन्हें पूर्वा पर विरुद्ध सिद्ध करके अप्रामाणिक नहीं मानते हुए अप्रमाणिक सिद्ध करना है। क्योकि उन्होने भी तीनो उपयोग का विभाजन उपरोक्त ढग से किया है। अमृत चन्द आचार्य जी लिखते है- ''कषाय का सद्भाव होने से गृहस्थो को निश्चय धर्म का अवकाश नहीं है, इसे इसी प्रकरण मे आगे उदाहरण सहित स्पष्ट करने वाले हैं।

आगम भाषा मे सम्यग्दर्शन (सात प्रकृतियो का क्षय, क्षयोपशम, उपशम) कहते हैं उसी को अध्यात्म भाषा मे शुद्धात्मा के अभिमुख कहते् हैं, शुद्धात्मा की अनुभूति नहीं। अभिमुख का अर्थ है गन्तव्य दिशा की ओर मुख हो जाना और कदम रखना अनुभूति है। सम्यग्दर्शन अभिमुख होने का नाम है अनुभूति का नहीं। क्रियायें तीन प्रकार की होती हैं- करोति, भवति एव अस्ति। छठवे गुणस्थान तक करोति क्रिया चलती है और जहा तक बुद्धि पूर्वक राग करता है वहाँ उपचार से शुद्धोपयोग नहीं होता। भवति क्रिया सातवे से नवमे तक होती है वहाँ तक उपचार से शुद्धोपयोग होने में कोई बाधा नहीं है, क्योंकि सज्वलन कषाय की मद दशा होती रहती है। दशवे मे ''अस्ति'' क्रिया होती है जहाँ राग रहता। वह भी उपचार से शुद्धोपयोग होने मे बाधक नहीं है। यथाख्यात चरित्र मे बाधक अवश्य है।

पडित परम्परा मे चौथे गुणस्थान से स्वरूपाचरण चारित्र मानने की परम्परा चल पडी वह भी अर्वाचीन पण्डितो से जबकि यह आर्ष परम्परा नहीं है। आर्ष परपरा तो चौथे मे सम्यक्त्वाचरणचरित्र मानने की है, जिसका अर्थ है पच्चीस दोषो से रहित सम्यक्दर्शन का पालन करना।

80 क्या भावार्थ महान ? नहीं, कषाय श्वान सद्भाव में, होता निज का भान।

हम उन पण्डितो आदि से पूछना चाहते हैं, जो चतुर्थ गुणस्थान से या उसमे स्वरूपाचरण चारित्र मानते हैं किसी भी गुणस्थान मे दो उपयोग तो नहीं होते ? उत्तर नहीं मे ही मिलेगा अर्थात् तीनो उपयोगो मे से कोई एक ही होगा एक गुणस्थान मे। यह भी मानते होगे या मानना ही होगा कि पूर्व-पूर्व के गुणस्थानो से उत्तर-उत्तर के गुणस्थान विशुद्धि की अपेक्षा से श्रेष्ठ होते हैं। यह भी मानना होगा कि सम्यक्त्वाचरण, देश चारित्र एव सकल चरित्र की अपेक्षा स्वरूपाचरण चारित्र विशुद्ध होता है, क्योंकि यह निवृत्ति मे होता है और वे प्रवृत्ति मे ही होते हैं। प्रवृत्ति की अपेक्षा निवृत्ति श्रेष्ठ है। उपरोक्त व्याख्या के

अनुसार जो चतुर्थ गुणस्थान मे स्वरूपाचरण चारित्र मानते हैं। उन्हे या तो एक गुणस्थान में दो उपयोग मानना पडेगे या चतुर्थ गुणस्थान को पांचवे-छटवे से विशुद्ध और श्रेष्ठ मानना पडेगा जबकि ऐसी मान्यता सिद्धांत विरुद्ध है। जो चौथे मे स्वरूपाचरण मानते हैं वे सम्यक्त्वाचरण तो मानेगे ही नहीं, लेकिन उन्हे पाचवे में देश चारित्र और छठवे में सकल चारित्र तो मानना ही होगा, लेकिन यहाँ स्वरूपाचरण चारित्र नहीं होता।

किन्हीं का कहना है- कि सम्यग्दर्शन होते ही एक समय की क्षणिक शुद्धात्मानुभूति होती है। हम पूछना चाहते हैं वह एक समय की ही क्यों होती है उसे तो जब तक सम्यग्दर्शन रहता है तभी तक होती रहना चाहिए, क्योकि उन्हीं की मान्यतानुसार सम्यग्दर्शन की अनुभूति के साथ और अनुभूति का सम्यग्दर्शन के साथ अविनाभाव सबध है न।

"दुर्जन सतोष न्याय" के अनुसार- थोडी देर के लिये मान भी लिया जाये कि चतुर्थ गुणस्थान मे शुद्धोपयोग होता है, लेकिन वैसा मान लेने का तुम्हारा अभिप्राय क्या है ? क्या यह तो नहीं मान बैठे कि अब साधु बनने की आवश्कता नहीं है सीधे यहीं से केवल ज्ञान प्राप्त कर लेगे। जिस अवस्था मे रहते हुए श्रावक के एक मूलगुण रात्रि भोजन त्याग है उसको निर्दोष पाल नहीं सकता क्या वह उसी अवस्था मे रहते हुए शुद्धात्मानुभूति कर सकता है ? नहीं।

गाव मे एक ही तो कुआ था जिसका पानी मीठा था। उसी मे दुर्भाग्य से एक दिन, लडते लडते चार कुत्ते गिर गये, मर गये, गल गये, सड गये। सारा पानी दुर्गन्धित हो गया। गाव मे त्राहि-त्राहि मच गई। पहुच गये एक मात्रिक के पास। उसने विधि बताते हुए मत्र लिख कर दे दिया। गाव के प्रत्येक व्यक्ति न उस मत्र का उसी विधि से प्रयाग किया। लेकिन सफलता नहीं मिली। उन्होने पुन पहुचकर उलाहना देते हुए कहा- इस मत्र ने कोई काम नहीं किया। मात्रिक ने विचार कर, पूछा-आप लोगो न उन गिरे हुए कुत्तो को निकालकर बाहर किया कि नहीं ? लोग कहने लगे- आपने ऐसा कहाँ कहा। मात्रिक ने माथा ठोकते हुए कहा हम नहीं समझते थे सारे गाव के लोग इतने मूर्ख होंगे। जाओ ! पहले उन्हे निकालकर बाहर करो फिर मत्र पढकर पानी छोडना। इस मत्रित जल के प्रभाव से पानी दुर्गंध छोड देगा।

81. क्या भावार्थ महान ? नहीं, बालक वत् दर्शन हो जायें, चक्षु से भगवान।

इन मूर्ख तथाकथित मुमुक्षुओ की ठीक यही स्थिति हैं। जिस अवस्था मे ये अभी हैं उस में चारो तो छोडिये किसी एक कषाय रूपी कुत्ते का अभाव नहीं हुआ है। ऐसी स्थिति

में ये स्वाध्याय मात्र करके शुद्धात्मा की अनुभूति करना चाहते हैं अथवा शुद्धात्मानुभूति होती है/ होना मानते हैं। इन्हें वैसी तो नहीं अपितु कषाय के सडाध की अनुभूति अवश्य होती है जिसे ये शुद्धात्मानुभूति मान बैठे हैं और भोले भाले लोगों को वैज्ञानिकों की तरह बेवकूफ बनाते रहते हैं। पहली भूल तो यह है कि निरतर भ्रमण करते रहने वाले सूर्य की तरह चन्द्रमा को स्थितर मानते हैं। दूसरी असम्भव बात उस पर पहुँचने की करते हैं। वस्तुत तो इन्होने किसी ऊचे पर्वत को चन्द्रमा मान लिया है और उसी पर उतर कर चन्द्रमा पर उतरना समझ लिया है।

ससारी जीव की शरीर मे वर्तमान दशा पाषाण मे स्वर्ण, दूध में घी एव तिल मे तेल जैसी है। गौ रस दूध एव दही की स्थिति मे हो तो घी का स्वाद नहीं मिल सकता। उसी प्रकार कषाय सहित आत्मा को शुद्धात्मानुभूति नहीं हो सकती।

एक महिला भगवान की प्रतिमा के सामने रो रही थी। पूछने पर कहती है- मुझे आत्मा के दर्शन नहीं हो रहे हैं। उसे समझाया-आत्मा अमूर्त है उसे चर्म चक्षुओ के माध्यम से नहीं देखा जा सकता। जल स्वच्छ और निस्तरग हो तो उसमे पढी हुई वस्तु दिख जाती है अन्यथा नहीं। उसी प्रकार कषाय से मलिन एव राग-द्वेष रूपी लहरे जिसमे उठ रही हो उस आत्मा को आत्मा के दर्शन नहीं हो सकते। चर्म चक्षुओं से दर्शन करने वाले लोगो की दशा उस बालक जैसी होती है जो एक महात्मा जी के पीछे पड गया कि आप जब कभी भी गाव मे आते हैं और आत्मा को जानो, समझो यही बात दुहराते हैं। मुझे दिखाओ हाथ पर रखकर आत्मा किस चिडिया का नाम है, कैसी है। महात्मा बोल- वह देखने, दिखाने की वस्तु नहीं है बेटा, अनुभव करने की चीज है। यह बालहठी नहीं माना साधु को परेशान करने लगा। उन्होने समझाने के लिये जहा वह खडा था धक्का दे दिया। वह गिर पडा, चोट आ गई, रोने लगा। क्या हुआ बेटा ? कहने लगा- चोट लग गई, दर्द हो रहा है। कहाँ है दर्द हाथ पर रख कर दिखा। उसने कहा- वह दिखाया नहीं अनुभव किया जा सकता है। उसी प्रकार आत्मा दिखाई नहीं जाती अनुभव की जाती है साधु महात्मा ने कहा।

एक महिला एक पण्डित जी से कह रही थी- मुझे आत्मा से साक्षात् हो गया है। उन्होने पूछा-कैसी है आत्मा ? उत्तर मिला- सफेद-सफेद। उन्होने कहा-अभी तुम मिथ्या दृष्टि हो। सफेद वर्ण है और वह पुद्गल का गुण है, आत्मा का नहीं। मिथ्या दृष्टि हो तो, सुनते ही आग बबूला हो गई।

82. क्या भावार्थ महान ? नहीं, क्यों करती हो व्यंग्य, निषेध और देने में व्यवधान।

आदि के तीन काण्डों में एक डॉक्टर के साथ हुई चर्चा का पहले उल्लेख कर आये हैं। वे उस महिला से पूछते हैं- "मुनि को भोजन देय फेर निज करें अहारे" छहढाला की

इस पक्ति का अर्थ आप लोगो को समझ मे नहीं आया क्या ? कहने लगी, क्यो नहीं आया, यह बहुत सरल पक्ति है अनपढ भी समझ जाता है। फिर तुम्हारे पण्डितो को इस पंक्ति पर टिप्पणी लिखने की आवश्यकता क्यो पडी कि जिन शास्त्रो मे दान देने का विधान है वे शास्त्र कुशास्त्र हैं। उपरोक्त पक्ति का यही भावार्थ है क्या जो इन कुदृष्टियो ने निकाला है ? कहने लगी- आप तो मुनि भक्त हैं, लेकिन हमने कभी आपको साधुओ को आहार देते हुए नहीं देखा आप देते हैं आहार ? डॉक्टर ने कहा- हम देते हैं या नहीं देते, लेकिन तुम्हारे जैसे निषेध तो नहीं करते और न विघ्न ही करते हैं तुम लोगो की तरह। और न देने वालो पर व्यग्य करते हैं।कहने लगी- आप लोग तो हम लोगो को व्यर्थ ही बदनाम करते हैं। कब विघ्न किया ? पिछले चातुर्मास मे अमुख मुनि महाराज से रुष्ट होकर उन्हें आहार में ग्रास के साथ जान बूझकर बाल देकर अन्तराय कराने की कुयोजना किसने बनाई थी एक महिला को नियुक्त करके। डॉ कहने लगे- ऐसा सुनते ही पहले वह बगले झाकने लगी। लगा कि सोच रही हो कि हमारा या षडयत्र इन तक कैसे पहुच गया। फिर सफाई देती हुई कहने लगी, ये सब मनगडत बाते गढ कर हम लोगो को बदनाम करने का षडयत्र है आप लोगो का। बताइये किस पर व्यग्य और किसका उपहास किया ? अमुक महिला बता रही थी कि जब हम पडगाहन के लिये खडे होते हैं तब कहती हैं कि कर लें पडगाहन नहीं तो नरक चली जायेगी। ऐसा सुनकर भी वह हडबडा गई, लेकिन इस बार सफाई न दे सकी और विषयान्तर होने की कोशिश करने लगी- पात्रापात्र का विवेक तो होना ही चाहिए। कडवी तूबी मे दूध डालने से कडवा ही होता है। डॉक्टर ने कहा- लगता है- हमारी श्रीमति जी आप लोगो के द्वारा वरगलाई जा रही हैं। कैसे ? उनकी साधुओ के प्रति बदलती हुई मानसिकता को देखते हुए। एक दिन कह रही थी- अमुक पडित जी कह गये हैं- अमुक मुनि यहाँ आये तो उनके प्रवचन सुनने जरूरी जाना, बहुत अच्छा बोलते है। हमने कहा- ऐसा भी कह गये होगे कि उन्हे आहार दान भी देना ? नहीं, तब तुम्हे उपदेश सुनने का अधिकार कहा है। वे अर्हन्त तो हैं नहीं कि वे हमेशा तुम्हे बिना आहार किये उपदेश देते रहे। कहने लगी- हम नहीं देगे तो क्या हुआ और तो देगे/ देते ही हैं। माने उनके बल पर मुनि महाराज से धर्म लाभ लेगी जिन का लोग उपहास करते हैं, व्यग्य करते हैं आहार देते समय। तुम्हारी तरह सभी टाल दे दूसरो के ऊपर तो कितने दिन तुम्हे उपदेश मिलेगा। कहने लगीं- सभी तो नहीं करते वैसा। फिर तुम क्यो करती हो वैसा। मुनि महाराज भी किसी पँडित के बारे मे कहे कि उनका उपदेश सुनने तो जाना लेकिन निमत्रित करके आहार नहीं कराना टाल देना कि दूसरे करायेगे। कहने लगी- वे ऐसा कहेगे ही क्यो ? फिर पण्डित जी वैसा क्यो कह गये। कहने लगीं- मुनि महाराज कहते हैं "अव्रतियो को उपदेश देने का अधिकार नही है। ठीक कह रहे थे। कैसे ? तुमने दोनो के उपदेश सुने हैं। सच बताना- प्रभाव किसके उपदेशो का पडता है। वे विषयान्तर होती हुई कहने लगीं- साधु लोग उपदेश देने मे लापरवाही वरत रहे हैं/ बरतते रहे हैं। डॉक्टर कहने लगे- वे इसके अतिरिक्त और भी कार्यों मे लापरवाही बरत रहे हैं। उदाहरण के लिये- शक्ति के अभाव मे

जगल मे नहीं रहते, तब पडित लोग जगल मे जाकर क्यो नहीं रहने लगते, क्योकि कष्ट होता है (व्यग्य)। कहने लगी, पण्डित जी कह रहे थे मुनि मिथ्या दृष्टि होते हैं। डॉक्टर कहने लगे- फिर तुम लोगो को आदेश क्यो दे गये मिथ्या दृष्टि से उपदेश सुनने के लिये ? लगता है उपदेश देते समय साधु सम्यग्दृष्टि हो जाते हैं और आहारादि के समय अर्थात् शेष समय मे मिथ्या दृष्टि बने रहते हैं। अत उपदेश सुन लेते हैं, सेवा नहीं करना चाहते। ऐसा ही एक मुमुक्षु मुनि महाराज का उपकार मान रहा था उनके सामने कृतज्ञता प्रगट करते हुए कि आपके उपदेश से कुमार्ग से बच गया। महाराज ने कहा- उन भक्तो/सेवको के सामने पहले कृतज्ञता प्रगट करो जिनकी सेवा के बल पर तुम्हे हमारे उपदेश सुनने के लिये मिले।

83. क्या भावार्थ महान ? नहीं आहारदान नरक भेजेगा, रोकेगा "अनुदान"।

नग्नत्व मे चतुर्थ काल जैसी निर्दोषता चाहने वाले, इनकी वर्तमान दशा को देखते हुए लगता है कि इनमे पचम काल के साधुओ की सेवा करने की भी योग्यता नहीं है। आखिर क्यो देखना चाहते हैं नग्नत्व को निर्दोष ? क्या उनके सामने आने या उनके सामने जाने पर इन्हे घुटने टेकने पडते हैं इसलिए। और कहीं न टेकने पडते तो शायद उन्हे निर्दोष देखने की आवश्यकता नहीं पडती। जिस प्रकार अपने और अपने जैसे सवस्त्र सहधर्मी के सामने घुटने टेकने नहीं पडते इसलिये अपने को और उनको निर्दोष देखने की आवश्यकता नहीं है। तुम्हारे घुटने मात्र टेक देने से साधुओ का कौन-सा प्रयोजन सिद्ध हो जाता है ? क्या इतने मात्र से उनका पेट भर जायेगा ? उनकी नैया पार हो जायेगी। आज घुटने टेक देने मात्र से तुम उनमे चतुर्थ काल जैसी छटा देखना चाहते हो और कहीं आहारादि देकर सेवा करते तो उनमे अरहत अवस्था के भी स्वप्न देखने लगते।

अणुव्रत-महाव्रत के समान दान देने को हेय (त्याजय) कहने वालो मे से एक व्यक्ति कहने लगे हमसे-दान नहीं देना चाहिए। दान देना शुभ भाव है और शुभ हेय है। हमने पूछा ओर लेना हेय है या नहीं ? वे सोच मे पड गये। हमारे उपदेश सुनने मे काफी रुचि रखते थे। उपदेश की प्रशसा भी किया करते थे कि आप का उपदेश बडा मार्मिक होता है। उनसे पूछा- देय (देने योग्य द्रव्य) चार प्रकार का होता है- आहार, औषधि, उपकरण (शास्त्र, पिच्छी, कमण्डल) आवास (अभयदान) इनमे आहार दान ही हेय हैं या सभी ? सभी तो कह नहीं सकते, क्योंकि अभी दो दिन पहले ही आपने हमे शास्त्र भेट किया था और इसी से सिद्ध होता है। कि जो तुम आहार दान को हेय कह रहे हो वह तुम्हारी निजी मान्यता नहीं, अपितु थोपी गई है दूसरों के द्वारा या तुम्हारी दान देने से अरुचि है या योग्यता नहीं है। देने की तरह तुम लेने को भी हेय नहीं कह सकते क्योकि तुम्हारी गुरुओ से ज्ञान दान लेने की रुचि लेने को उपादेय सिद्ध कर रही है, क्योंकि -दिये बिना लिया- दिया जाना सम्भव नहीं है।

तथाकथित मुमुक्षु एक पण्डित स्वरचित एक पुस्तक, मूल्य 50/- भेंट करने लगे। हमने कहा इसकी जगह एक गिलास पानी भेट कर सकते हो ? वे समझ गये हमारे अभिप्राय को। किकर्तव्य विमूढ हो गये कि क्या उत्तर दे। शायद यह सोच रहें हो कि जब हम एक गिलास पानी देने को हेय कहते है तब किस मुँह से हम स्वलिखित को शास्त्र कहकर भेट करने आये हैं। देखा तो यहाँ तक गया कि गुरुओ को भी शास्त्र भेट कर प्रसन्न होने वाले, उसे उपादेय समझने वाले आहार देना तो पाप समझते ही हैं देखना भी पाप समझते हैं।

कुछ तथाकथित मुमुक्षुओ की इससे भी बद्तर स्थिति है- आहार दान देने वालो को सातवे नरक चले जाने का भय दिखाते हैं और आहारादि के लिये गये साधुओ को परोक्ष रूप मे जहॉ वे विराजमान रहते हैं वहाँ रखी-चोकी पर शास्त्र भेट कर जाते हैं, तब ये कौन से नरक जायेगे ? दूसरी बात, इनकी दृष्टि मे आहार देने की अपेक्षा साधुमात्र कुपात्र है, लेकिन एक व्यासनी, मिथ्यादृष्टि को शास्त्र देने की सार्थकता समझते हैं। इतना ही नहीं, इन्हीं के पक्ष का कोई व्यक्ति अच्छा वक्ता हो तो उससे सुनने मे परहेज नहीं। आक्षेप होने पर कहते हैं- हमे तो उसके गुण देखना चाहिए अवगुण नहीं। साधुओ को आवास दान देने मे इन्हे न मुनि भक्तो का नरकवास दिखता है और न अपना ही। कभी किसी से कहते हुए भी नहीं सुने गये कि आवास दान देते हो तो सातवे नरक जाओगे, अपितु किसी पहुचे हुए साधु सघ के आने पर तावड तोड व्यवस्था करते हुए देखे/ सुने गये हैं यदि उस आवास स्थान की व्यवस्था के व्यवस्थापक स्वय हुए तो। जहाँ कहीं से भी ग्रथ का प्रकाशन होता है उसकी कीमत कम करने के लिये लोग सहयोग देते हैं या सहयोग लेते हैं। उस सहयोग के लिऐ ''दान'' शब्द की जगह ''अनुदान'' शब्द का प्रयोग किया करते हैं। लगता हैं ''अनु'' उपसर्ग इन्हे नरक जाने से रोक लेगा।

84. क्या भावार्थ महान ? नहीं, पद्मावती पूजते रहना साधू को न देना दान।

जिनकी यहाँ चर्चा चल रही है उनके अनुकूल बोलने वाले साधु एव आगम/शक्ति के अनुसार निर्दोष रूप से चलने वाले साधुओ के प्रति अपनी श्रद्धा का प्रदर्शन करने अर्थात् अमुक मुनि बहुत अच्छे हैं, उनके सामने झुकने वाले भी आहार देने का अवसर आने का कतरा जाते है।

जिनवाणी के प्रचार-प्रसार मे लगे हुए लोगो का, पास ही के एक गाव से फोन आया, जहाँ एक साधु सघ विराजमान था कि हम आप लोगो के यहाँ शास्त्रो के प्रचार के लिये आना चाहते हैं। आप लोग गाव के बाहर तक आइये गाजे-बाजे के साथ लेने के लिये। लोगो ने कहा- यहाँ साधु लोग विराजमान हैं जिन्हे आप मानते नहीं और कोई तैयार

भी नहीं आप लोगो को यहाँ बुलवाने के लिये, इसलिए आपका आना उचित नहीं है। वहाँ से आवाज आई-हम मुनि महाराज के प्रवचन सुन लेगे। लोगों ने कहा- आप उन्हे नमस्कार करेगे, आहार देगे ? वहाँ से कोई आवाज नहीं आई। आखिर आहार देने से इतना कतराते क्यो ? वही नवधा भक्ति करना पडती है। साधुओ के सदाचार से ही इन्हे प्रयोजन हो सो भी बात नहीं, क्योकि बाहर से बुलवाये गये किसी व्यसनी चरित्रहीन पडितों के भी नम्बर लगाने होते हैं, लिस्ट टागनी होती है कि कब-कब, किस-किस के यहाँ इनके भोजन होगे। अरे, यह कल्पना करे तो आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि किसी साधु को, नहीं चाहते हुए कारण वश नहीं दुर्भाग्य से साधु पद छोड पण्डित बनना पड जाये तब उसे आहार कराने मे कतराने की आवश्यकता नहीं पडेगी जो साधु अवस्था मे पडती थी, क्योकि नवधा भक्ति बीच मे नहीं आयेगी।

चरित्रवान एव चरित्रहीन के समान इन्हे सम्यक्त्व एव मिथ्यात्व से भी प्रयोजन नहीं है। कैसे ? एक बाप के सभी बेटे धार्मिक एव लौकिक कार्यों मे एक मत हों यह कोई जरूरी नहीं है। उसी प्रकार सभी तथा-कथित मुमुक्षु अभिषेक, पूजन जैसे धार्मिक कार्यों मे एक मत नहीं है। मुनियो को मानने और न माने के विषय में सभी एक जैसे कट्टर नहीं हैं। लेकिन इतना अवश्य है कि जब किसी को आर्थिक सहयोग देकर अपने पक्ष मे बनाया जाता है, उसे पूजन, अभिषेक के विषय मे कट्टरता से प्रतिबधित नहीं किया जाता जितना की साधुओ के नमस्कार आदि के विषय मे। नग्नत्व के प्रति जन्म जात द्वेषी का प्रभाव इतना जबर्दस्त है कि जो एक व्यक्ति के साथ घटित घटना से सिद्ध हो जाता है।

वैसे तो ये पद्मावती जैसे देवी- देवताओ के मानने के सक्त विरोधी हैं लेकिन निम्नलिखित घटना से लगता है कि उनके प्रति भी इतना द्वेष नहीं है जितना दिगम्बर भेष के प्रति। देव, शास्त्र, गुरु के साथ एक व्यक्ति पद्मावती का भी उपासक था। आर्थिक सकट की स्थिति मे उसने इनसे इस शर्त पर सहायता ली कि हम पद्मावती को नमस्कार करना आदि नहीं छोड सकते, क्योकि उसे उसके नाराज होने का डर था। महाराज तो नाराज होते ही नही, तब उनसे डर कैसा। मुमुक्षु इस शर्त पर भी तैयार हो गये सहायता देने के लिये, और दी भी।

85 क्या भावार्थ महान ? नहीं, मुल्लोवत् मुनि विरोध में चलती रही जवान।

एक बार एक मुनि भक्त ने एक आचार्य से कहा- महाराज। ये लोग मुनियो का विरोध करते हैं। आप इनका विरोध क्यो नहीं करते ? आचार्य जी ने कहा- हम जैसा विरोधी दूसरा कोई नहीं है मुनि विरोधियों का। कैसे ? डण्डा लेकर या मुँह से विरोध करना ही विरोध नहीं, अपितु मुनि विरोधियो के सामने मुनि बन जाना ही मुनि विरोधियो

का निर्दोष विरोध है। तुम्हारी तरह एक लडका शिकायत कर रहा था कि मुझे छोड़कर घर के सभी सदस्य मुनि विरोधी हैं। मुझे क्या करना चाहिए ? मुनि बन जाना चाहिए। सयोग की बात है कि कुछ समय साधना करके मुनि बन गया और सभी सदस्य मुनि भक्त। कहने लगा- सभी तो ऐसा नहीं कर सकते। आचार्य जी ने कहा- वे मुनियो को आहार देने का भी विरोध करते हैं, भगवान की पूजा करने का भी विरोध करते हैं। तब क्या तुममे मुनि बनने की तरह दान देने, पूजन करने की भी सामर्थ्य नहीं है। पूछा-पूजन करते हो, मुनियो को आहार दिया कभी ? नहीं। फिर तुम मे और उनमे कोई अन्तर है। तुम्हारी तरह मुनि पर कोरी भक्ति और सहानुभूति दिखाने वाले अनगिनते लोग मिल जायेंगे। शास्त्र समत जिन बातो का वे विरोध करते हैं उनके समर्थको की सख्या बहुत है। कैसे ? जो पूजा, अभिषेक एव साधुओ की सेवा नहीं करते हैं। वे उन्हीं के समर्थक हैं कृत की अपेक्षा से देखा जाये तो। अन्तर कारित और अनुमोदना का ही है।

एक कहने लगे- महाराज श्री ! जो आप से चर्चा कर रहे हैं वे पडित जी है। महाराज ने कहा, शास्त्री परिषद के हैं या विद्वत परिषद के ? कहने लगे, इससे आपको क्या प्रयोजन ? प्रयोजन है, क्योंकि विद्वत परिषद के लोग पहले से ही मुनियो के विरोधी रहे है। इन्हीं का अनुकरण किया है मुनि विरोधियो ने। आगम का उल्लेख है- आदिनाथ से लेकर महावीर पर्यन्त अनेक बार मुनि परपरा का विच्छेद हुआ है। लगता है जब कोई व्यक्ति लुप्त परपरा को साधु बनकर प्रकाश मे लाया होगा तब ऐसे ही सिर फिरे लोगो ने उनका विरोध किया होगा कि जब मुनि परपरा समाप्त हो गई तब तुम मुनि बन कैसे गये। जैसे-कैसे मुसलमानो के प्रतिबध से छुटकारा मिला तो ये पडित मुल्ला पीछे पड गये प्रतिबध लगाने के लिये। ये वैसा करने मे असमर्थ रहे तो तथाकथित मुमुक्षु मुल्ला पीछे पड गये। लेकिन ये मुनि मात्र पर प्रतिबध लगाना तो दूर थोड बहुत शिथलाचार भी कम नहीं कर सके। कम हो भी कैसे, क्योंकि प्रयास भी तो नहीं किया वैसा कुछ करने का। जब से यह लुप्त परपरा प्रकाश मे आई तब से इन पण्डितो का साधुओ के साथ कैसा व्यवहार रहा, कैसा व्यवहार रहना चाहिए था इसे एक घटना के माध्यम से स्पष्ट करे।

86. क्या भावार्थ महान ? नहीं, फालतू जबान (जीव) से लगता, पालतू हो श्वान।

एक जेलर की नियुक्ति हुई। काफी समझदार था। जहाँ नियुक्त हुआ था वहाँ के प्रतिष्ठित व्यक्तियो को आमत्रित किया। सभी मे क्रमश सलाह मागी कि कैदियो के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए ? एक को छोडकर सभी ने प्राय एक जैसी सलाह दी कि उनके साथ हमेशा निर्दयता का ही व्यवहार करना चाहिए अर्थात् कठोर से कठोर दण्ड देना चाहिए, तब समझ मे आयेगा की अपराध का क्या परिणाम होता है। एक ने इनकी सलाह

का विरोध करते हुए कहा- यह कोई आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति अपराध चलाकर या शौक से किया करता हो। मजबूरी में भी हो जाते हैं या करना पडते हैं एवं अपराधी बनता नहीं, बनना पडता है। कुछ तो निर्दोष होते हुए भी पूर्वकृत कर्मों के कारण अपराधी सिद्ध हो जाते हैं फिर सभी के साथ एक जैसा क्रूरता का व्यवहार करना कहाँ तक उचित है। अत उपरोक्त निर्दोष एव वास्तविक अपराधियो के साथ मानवोचित व्यवहार किया जाये तो वे रास्ते पर लाये जा सकते हैं। जेलर को यही सलाह उचित प्रतीत हुई और उन्होने अपने सत्पुरुषार्थ से एक ऐसे खूखार अपराधी व्यक्ति को मानवो की श्रेणी मे ला रखा जिसका नाम सुनकर लोग काप जाते है।

माना कि वर्तमान मे कुछ इनेगिने साधुओ को छोड कर अधिकाश अक्षम्य अपराधो मे लिप्त है, इसमे कारण वे स्वय हो सो भी बात नहीं है। यह बात आगे दृष्टात पर से अच्छी तरह स्पष्ट हो जायेगी ऐसे साधुओ के साथ विद्वत् परिषद के लोगो ने प्राय. पालतू श्वान वृत्ति अपनाई है। विहार करते समय ऐसा प्राय· देखा जाता है कि गाव मे आने से पहले कुत्ते चिल्लाने लगते हैं और सामने आने पर चुप हो जाते हैं एव गाव से बाहर होने पर या आगे बढ जाने पर पुन भोकने लगते हैं। ऐसे कुत्ते भी देखे हैं जो निर्भीकता से सामने आने पर भी भोका करते है, लेकिन ऐसा करने वाले कम ही हुआ करते हैं। मालिक की या अन्य किसी की डाट सुनकर चुप भी हो जाते हैं। ऐसे कुत्ते अपने सहयोग की दम पर भी साहस दिखा देते है। सहयोगियो के बल पर भोकने वाले डाटने पर भी जब नहीं मानते तब मारने की धमकी देते हैं या मार भी देते हैं। उस समय कहना भी पडता है कि रोटी के टुकडे आप देगे ही क्यो यदि वह अपरिचित लोगो के साथ वैसा व्यवहार न करे ता। उसे तो सभी बराबर हैं साधु हो या दुर्जन (चोर)। पण्डित सपरिवार समाज के बल पर पला करत हे। साधुओं के बल पर नहीं। इसलिये साधुओ के द्वारा होने वाले अपराधो पर गोर कर, दूर से या निकट आकर साधुओ के विरुद्ध होकर भोका करते हैं उतना समाज के विरुद्ध होकर नहीं भोकते, क्योकि कुत्ता कभी मालिक के विरुद्ध होकर नहीं भोकता अन्यथा टुकडो की समस्या। कुत्तो की एक विशेषता है कि अपरिचित व्यक्ति के परिचित होने पर फिर उसके विरुद्ध दुबारा कभी नही भोका करते। पण्डित भी कुछ ऐसे भी हैं, कुछ विपरीत भी

87. क्या भावार्थ महान ? नहीं, साधु रहें दूध के धोए हम दुर्गुण की खान।

साधुओ के अपराधी होने के कारणो पर विचार कर गौर न करने वाले इन पण्डितो की स्थिति उस व्यक्ति के समान है जिसने कभी बल्व जलाते-बुझाते नहीं देखा था। ऐसे व्यक्ति से लोगो ने कहा-कुवर साहब जब आप सोने लगे तब बल्व बुझा देना। लोगो के

जाने के बाद वह लगा बुझाने वल्व को मुँह से दीपक की तरह। मुँह से काम न चला तो गमछे से चलाया। सुबह लोगो ने कहा- आपने बल्व नहीं बुझाया ? कहने लगा- भाड मे जाये तुम्हारा बल्व हमारा तो बुझाते-बुझाते मुँह अभी भी दर्द कर रहा है। लोगो ने उसी के सामने एक सेकिंड मे बुझा दी बटन ऊपर करके। साधुओ मे बढते हुए अपराधो को देखने से लगता है पण्डितो की भोक दिनो दिन कम होती जा रही है। कारण को खोजकर एक क्षण मे बल्व बद कर देने वाले विवेकियो की तरह कोई इन पण्डितो को बताये कि मुँह से बल्व बुझाने की तरह सीधे साधुओ से अपराध मिटाये या कम किये नहीं जा सकते हैं। मूढ भक्तो की सख्या/ बहुमत को देखते हुए पण्डितो मे दूर, शक्ति के अनुसार निर्दोष चर्या करने वाले साधुओ मे भी साहस नहीं अपराधो पर रोक लगाने का।

साहसी कुत्ते के समान कोई पण्डित साहस करे किसी साधु के सामने कुछ कहने का तो मुँह की खानी पडती है। एक पण्डित,खेद व्यक्त कर रहे थे उस क्षेत्र पर रहने वाले साधुओ की दयनीय दशा को देखकर जिस पर हजारो यात्री प्रतिदनि दर्शनार्थ पहुचते हैं। उनसे पूछा, पण्डित जी ! रात्रि मे चारो प्रकार के आहार का त्याग तो होगा ही ? अपनी समस्या बताते हुए कहने लगे- नहीं। सात व्यसन त्याग का निर्दोष पालन तो करते ही होगे? कहने लगे प्रयास ता करता हूँ। तब तो आप जैसे पण्डितो को देखकर वे साधु भी खेद व्यक्त करते है जिन्हे देखकर आप खेद व्यक्त कर रहे है। वे अज्ञानता से वैसा कर रहे आर आप ज्ञानी होकर।

ऐसे ही एक विद्वान एक साधु के पास पहुचे। इसी उद्देश्य से कि इनकी उद्दडता पर कुछ अकुश लगाया जा सके मार्ग दर्शन देकर। शुभ समाचार जानने के बाद पूछा- महाराज! आप की पिच्छी बहुत पुरानी हो गई दिखने से ऐसा लगता है। "प्रथम ग्रासे मक्षिका पाता" के अनुसार सुनना पडा- पहले तू अपने आप को तो देखे कि तू कितना पुराना हो गया। सुनकर पण्डित जी का सारा उत्साह ठण्डा पड गया। ऐसी स्थिति मे कमी बताकर सुधार के लिये सुझाव दना बडा मुश्किल है।

शिथलाचारी आचार्य से एक विवेकी ने साहस करके कहा उन्ही का शिथलाचार बताते हुए कि ऐसा क्या ? आचार्य कहने लगे- हम आगम विरुद्ध नहीं चल सकते। जब आगम मे लिखा है कि साधु शिथलाचारी होंगे, तब हमारा या किसी साधु का निर्दोष होना आगम विरुद्ध है। विचारे ऐसे कुतर्की साधुओ को कोई रास्ते पर ला सकता है क्या ? नहीं। सदोषी/अनधिकारी पण्डित ही नहीं निर्दोष/सदाचारी पण्डित अथवा साधु भी उपरोक्त साधुओ के शिथलाचार पर प्रतिबध लगाने की कोशिश करे मूढ मुनि भक्तो की मार नहीं तो डाँट ता सहनी ही पडती है।

88. क्या भावार्थ महान ? हॉ, सेवा से मेवा पातें हैं, सुधर जात इंसान।

महाराज ! आपने यह तो बताया ही नहीं कि खूखार व्यक्ति को जेलर किस प्रकार रास्ते पर लाया था। उत्तर मिला- उचित सलाह देने वाले विद्वान को जेलर सप्ताह में एक दिन उपदेश देने के लिये बुलाने लगे। सभी कैदी प्रसन्न थे, लेकिन उपरोक्त कैदी को यह सब पसद नहीं था। उसने एक दिन विद्वान के ऊपर अपना जूता फेककर मार दिया। शेष कैदियों ने उसकी बुरी तरह से पिटाई कर दी। वह बेहाश हो गया। जेलर साहब उसे अपने कमरे मे ले गये। सोते समय उसकी ओर अपना सिर कल लिया। बहुत रात गये मुंह से कराह निकली। सहानुभूति का हाथ फेरते हुए पूछा-क्या चाहिए ? ऐसी सहानुभूति का उसने जीवन मे पहली बार अनुभव किया था। धीरे से बोला-पानी पीना है। स्वय उठकर उन्होने अपने ही हाथ से पानी पिलाया। पूर्ण स्वस्थ होने तक उनके स्नेह ने उसके हृदय की पूरी कलुषिता धो दी। एक दिन उसने जेलर साहब के पैरो पर सिर रख दिया। उन्होने उसे उठाकर गले लगा लिया। वह बच्चो जैसा रो पडा। उसे लगा-जैसे मा से साक्षात् कार हो गया हो।

हमारा स्वय का, वर्षो का अनुभव कहता है कि अधिकाश साधुओ की सेवा ऐसे भक्तो की भक्ति पर निर्भर है, जो विवेक शून्य है। जो विवेकी है, वे भक्ति शून्य है। कुछ विवेकी भक्त हैं, लेकिन सेवा से शून्य हैं। वे हमेशा साधु सेवा से ही नहीं उनके पास आने से ही कतराते है। साधु जेसे पद पर स्थित ऐसा कोई व्यक्ति नहीं होगा जो जेलर साहब जैसे विवेकवान भक्तो की सहानुभूति पाकर अपने अपराधो को परित्याग कर पश्चाताप करते हुए उसका प्रायश्चित न करे अथात् करेगा ही। जेलर साहब ने उससे सारा इतिहास पूछ लिया कि तुम इस प्रकार के खूखार अपराधी केसे बने। क्या तुम्हारे माता-पिता जी भी ऐसे ही थे ? कहने लगा नही पिता तो मेरे हाश सम्हालने से पहले ही शात हो गये। मुझे तो अपराधी, लोगो की उपक्षा ने बनाया। मा बीमार थी। दवा के लिये पैसा नहीं था। किसी ने सहायता नही की। मुझे चोरी करनी पडी। पकडा गया जेल की हवा खानी पडी। मा बीमारी की दशा मे मर गइ। मुझे अन्तिम क्रिया करने के लिये भी नहीं छोडा गया। जब छोडा गया तो मुझे कोई अपने पास नहीं टिकने देता था अत मजबूरी वश अभी तक मैंने जो किया उसके अलावा और कुछ मुझे सूझा ही नहीं। विद्वान का अपमान करने वाले इस केदी को दण्डित करन का अधिकार तो जेलर साहब को था, लेकिन वे पिटाई करने वाले केदियो एव उनसे पहले आकर जा चुके जेलरो के समान नासमझ नहीं थे। उन्होने समझ लिया था कि यह व्यक्ति शारीरिक एव मानसिक प्रताडना से सही रास्ते पर नहीं लाया जा सकता। इसे तो अब परम स्नेह की आवश्यकता है। कितने बार जेल की सजा भोगने पर भी उमकी अपराधी प्रवृत्ति थोडी बहुत भी घटी नहीं, अपितु बढी ही है। समाधि से विचलित मुनि की शान्ति सागर जी ने परम स्नेह स सेवा की उन्हे नमस्कार किया तब उन्हे सुधरने मे देर नहीं लगी।

सैद्धांतिक दृष्टि से विचार करे तो जब तक पापानुबंधी पाप का उदय रहता है तब तक उसे प्रताडित करके भी रास्ते पर नहीं लाया जा सकता है। उसी प्रकार साधु भेष धारण करके भी उसका अपराधी मन हर किसी से उपेक्षित होकर, तिरस्कृत होकर और भी उग्र हो जाता है अपराध करने के लिये। ऐसे भेष धारियो को जेलर साहब जैसे विवेकी भक्तो की परम आवश्यकता है इस समय भी। अन्यथा उसके और उसके द्वारा हो रहे धर्म के उपहास और पतन को रोका नहीं जा सकता उपेक्षित करके। उन्हीं साधुओ से उनके द्वारा किये या हो रहे अपराधो के कारणो को जानकर दूर किया जाना आवश्यक है कि जब आप आत्म कल्याण के लिए निर्ग्रंथ हुए थे फिर आडम्बर मे कैसे उलझ गये। यह भी अनुभव की बात है कि जब कोई विवेकी भक्त तन, मन धन से साधु सेवा करता है, तब उसकी उस सेवा का प्रभाव एक अलग ही प्रकार का होता हे लेकिन आज का यह प्रबुद्ध वर्ग सेवा और साधु की उपेक्षा करके साधुओ को निर्दोष देखना चाहता है अज्ञानियो की सेवा के बल पर।

89. क्या भावार्थ महान ? हॉ, पर की आग बुझा देने पर बचता है निजी मकान।

इन तथाकथित मुमुक्षुओ की यह भी धारणा है कि दान देने से पर का ही उपकार होता है देने वाले का नही। पहली बात तो यह है कि यह धारणा "एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नही करता" इनकी ही मूल्य मान्यता का खडन करती है। दूसरी बात, ऐसे ही एक मुमुक्षु से पूछा- पडोसी के घर मे आग लग जाये तो आप बुझायेग या नही ? कहन लगा अवश्य बुझायेगे। पूछा- क्या समझकर बुझायेगे ? कहने लगा बुझाई नही गई तो हमारा भी घर जल सकता हे। मतलब उसके घर की आग बुझाने मे तुम्हारा भी हित निहित है तब कैसे समझा जाये कि आहार देने मे पर का ही हित हाता हे। अर कहा तो यह जाना चाहिए कि दान देन से दूसरो का हित हा या न हा दने वाल का ता होता ही है। जैसे अहित के बारे मे कहा जाता है कि तीव्र कषाय के हाने पर किसी का अहित हा य न हो अपना तो होता ही है। जैसे दूसरे का मुँह काला करने से पहले अपने हाथ तो काले हा ही जाते हे अब मुँह काला कर सको या नही। कहा जा सकता कि अपना घर जलने का भय न भी हो तो लोग दूसरो के घर की आग बुझाते ही हे ? समाधान यह है कि वर्तमान मे नहीं तो भविष्य मे आपत्ति की सम्भावना से भी तो दूसरो का उपकार करते हुए देखे जाते है। अत उपेक्षा किसी भी स्थिति मे नहीं की जा सकती।

इनसे पूछा जाये कि जिस किसी को दान देना हेय है या साधुओ को ही नवधा भक्ति से दान देना हेय है। इसमे भी वर्तमान के साधुओ को दान देना हेय है या त्रिकाल मे/ के साधुओ को दान देना हेय है ? दान मात्र देना ता हेय हो नही सकता तुम्हारी भी दृष्टि

मे। कोई कहे हेय है तो हम पूछते हैं कि जिसे तुम गुरु कहते हो वह करीब नब्बे वर्ष तक बिना दान लिये और किसी क द्वारा दिये कैसे जीता रहा। न तो वह गृहस्थश्रावक था जो न्याय नीति से धन कमाता और खाता रहा हो और न वह त्यागी श्रावक एव साधु ही था जिन्हे हमेशा दान लेकर ही धर्म साधना करने का अधिकार है और न उसे अर्हंत अवस्था प्राप्त थी जिससे भोजन की आवश्यकता न पडी हो। समय मे अर्थात् उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा ग्रहण किये बिना भेष धारण करके गृह त्याग करने वाले ब्रह्मचारी भेष धारियो के विषय मे तथाकथित मुमुक्षु पण्डितो के मुँह से सुना है कि इन ब्रह्मचारियो को घर मे रहते हुये अपने पुरुषार्थ से धन कमा-खाकर साधना करना चाहिये, पराश्रित न होकर, लेकिन ऐसा स्व मान्य गुरु के विषय मे कुछ नहीं कहा।

इन्हे यह भी कहते हुए सुना गया है कि पहले साधुओ की परीक्षा करना चाहिए फिर नमस्कार करना चाहिए, आहार आदि देना चाहिए। इन्हे उस मा से सबक लेना चाहिए जिसका बेटा उद्दण्डता करके घर से भूखा भाग गया मार के भय से। पिता रास्ता देख रहे हैं कि आने दो बच्चृ को बिना मारे नहीं छोड्गा। पत्नि कहती है- पहले मुझे भोजन करा लेने देना फिर जो दिखाये सो करना। भूखा भागा है पिटने के बाद भोजन नहीं कर सकेगा। इसलिये कुन्द कुन्द देव ने श्रावक को मा की उपमा दी है पिता की नही।

90. क्या भावार्थ महान ? नहीं, व्रतो मात्र को हेय समझ कर बनना चाहे भीम समान।

कुन्द कुन्द स्वामी कह गये कि साधुओ को "द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव एव शरीर के सहनन को देखकर चलना चाहिए, लेकिन हर किसी तथाकथित मुमुक्षु के मुँह से सुना जा सकता हे जब शक्ति नही थी अर्थात जब गरमी मे पहाडो पर, ठडी मे नदी के किनारे, एव बरसात के समय पेडो के नीचे रहकर तप करने की शक्ति नहीं थी तब साधु बन क्यो गये। लगता है इन्होने कुन्द कुन्द स्वामी के साधुओ को दिये गये आदेश का भावार्थ या विशेषार्थ निकाला है। इन्हीं स पूछा जाता हे कि आपका रात्रि मे चारो प्रकार के आहार का त्याग है क्या ? उत्तर मिलता है नहीं,क्यो ? क्योकि त्याग करने की शक्ति नहीं है। पूछा जाये-शारीरिक शक्ति नहीं है या आत्मिक शक्ति ? सभी तथाकथित मुमुक्षु शारीरिक शक्ति का अभाव तो कह नहीं सकते, क्योकि इनमे से कुछ लोग ऐसे होते हैं जो कतिपय साधुओ के शारीरिक वजन से तिगुने भी होते हैं। इससे स्पष्ट है कि आत्मिक बल (शक्ति) का ही अभाव है। जिससे सभी परिचित नहीं है।

स्वाभाविक है कि शरीर मे कोई रोग विशेष आता है तो उसके कारण शरीर की शक्ति क्षीण हो जाती है अत लौकिक कार्य करने मे उत्साह नही होता। मिथ्यात्व एव

कषाय ये आत्मा के रोग हैं जिनका तीव्र उदय रहते आत्मिक शक्ति का विकास नहीं हो पाता। जिसके विकसित रहते त्याग के भाव होते हैं और त्याग कर भी देता है। दूसरे शब्दो मे यो कहा जा सकता है कि मिथ्यात्व तो रोग का कारण है और कषाय शक्ति की क्षीणता का कारण है। आचार्य कहते हैं- ''मिथ्यात्व रूपी रोग को नष्ट करने के लिये सम्यग्दर्शन एक अमोघ (रामवाण)औषधि है और शक्ति का विकास औषधि से नहीं, अपितु अणुव्रत महाव्रत रूपी हल्के और भारी भोजन से हुआ करता है। आत्मिक शक्ति मे मदाग्नि की स्थिति होने पर अणुव्रत रूपी फलाहार की आवश्कता होती है और जब उस आत्मिक शक्ति मे अणुव्रत पालते हुए क्रमश विकास होता है, तब महाव्रत रूपी गरिष्ठ आहार देने पर क्रमश आत्मिक शक्ति का विकास चरम सीमा को प्राप्त कर लिया करता है।

विचारे करे कि जो यह कहता है कि मुझ मे रात्रि मे चारो प्रकार के आहार त्यागने तक की शक्ति नहीं है और अणुव्रत महाव्रत हेय है तब क्या वह कभी आत्मिक शक्ति का विकास कर सकेगा ? नहीं। अपितु वह प्राप्त शारीरिक शक्ति का और भी ह्रास कर लेगा बहाने बनाकर। आत्मिक शक्ति का तो है ही। लौकिक कार्य करने मे जितनी शक्ति का उपयोग करता है/लगाता है। उस अपेक्षा से चौथाई शक्ति मे हो जाने वाले त्याग के कार्य मे असमर्थता व्यक्त करता है अत यह बहाना नही तो क्या है।"भीम को इतना शारीरिक बल प्राप्त क्यो था ? उत्तर मिला- पूर्व जीवन मे उन्होने साधुओ की तन, मन, धन से सेवा की थी। वर्तमान साधुओ की आहारादि से सेवा करना तो दूर सेवा करने को हेय माने वह प्राप्त शक्ति का दुरुपयोग है।

91. क्या भावार्थ महान ? नहीं, रुपये तीन की करुं मजूरी कहाँ रहेगा स्व अभिमान।

जिस समय घर मे था। उस गाव मे एक ऐसा व्यक्ति देखा। जिस कार्य मे उसे दस-पद्रह रुपये मिलते थे वह कार्य भी कर लिया करता था और जिस दिन ऐसा कार्य न मिले उस दिन वह कार्य भी कर लेता था जिसमे दो-तीन रुपये मिलते थे। एक ऐसा भी व्यक्ति था जो दस-पद्रह वाला ही कार्य किया करता अन्यथा खाली बैठा रहता था। दो-तीन रुप्रये मिले ऐसा कार्य करने मे अपना अपमान समझता था यही कारण था की वह आर्थिक दृष्टि से हमेशा परेशान रहता था, क्योकि कीमती कार्य प्रतिदिन मिले यह कोई आवश्यक नहीं है।

इन तथा कथित मुमुक्षुओ की मान्यता से ऐसा ही प्रतीत होता है कि साधु उसी समय बनेगे या बनना चाहिए जब जगल मे रहकर उसी भव से मोक्ष जाने में समर्थ हो। इससे कम शक्ति मे साधु बनना, गाव आदि मे रहते हुए स्वर्ग नहीं जाना। ऐसा कुछ करना उनकी शान के खिलाफ है। ऐसे लोगो का असयमी रहकर नरक-तिर्यंच गति मे शारीरिक एव

मानसिक दृष्टि से परेशान होना स्वाभाविक है, दूसरे मजदूर के समान। इनकी मान्यता मे एक बात और सिद्ध होती है कि ये शक्ति के अनुसार न स्वय साधना करना चाहते हैं और न दूसरो को करने देना चाहते हैं। साथ साधुओ के विषय में उनका ख्याल है कि ये शक्ति का उल्लघन करते हुए साधना करे और सक्लेश परिणाम करते हुए हमारी तरह दुर्गति प्राप्त करे।

द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव एव शरीर के सहनन (शक्ति) को देखकर ही चलना चाहिए। कुन्द कुन्द स्वामी के द्वारा दी स्वतत्रता पर अधिकांश साधु स्वच्छद हो रहे हैं। जिन्हे धर्म ध्यान मे बाधक पर वस्तु का सहारा लेकर भी पश्चाताप नहीं होता। इस तरह से चलने वाले साधुओं के समर्थक एव सेवक भी मिल रहे हैं जगह जगह। तब सभी साधुओ को एक ही डण्डे से हाकने वाले तथाकथित मुमुक्षु चिल्लाते रहे उन्हे कोई अन्तर पड़ने वाला नहीं। किंचित् सहारा लेकर भी पश्चाताप करते हुए जो साधु साधना करते हुए अपना कर्म भार हल्का कर रहे हैं, लेकिन इन्हे उनका पश्चाताप दिखता नहीं है इसलिय सभी को एक डण्डे से हाकने लगते हैं।

ऐसा ही एक तथाकथित मुमुक्षु, जैन विद्यालय मे अध्ययन किये हुए व्यक्ति की शिकायत कर रहा था एक मुनि भक्त से कि हमारे द्वारा बुलाये गये किसी पण्डित के आने पर उनका उपदेश सुनने के लिये सबसे आगे बैठ जाता है। उनसे कुतर्क करता है। ऊट पटाग प्रश्न करके उन्हे सबके सामने नीचा दिखाता है। अभी तक इतने पण्डित आये उन्हे कभी एक गिलास पानी भी नहीं पिलाया। पडितो की विदाई मे कभी पाच पैसे सहयोग के रूप मे नहीं दिये। मागने पर कहता है- मुझे तो चतुर्थ काल के पण्डित चाहिए ? मुनि भक्त कहने लगे वह तुम्हारा ही तो अनुकरण कर रहा है। जब अपने यहाँ कोई साधु आते हैं तो उनका उपदेश बडी रुचि से सुन लेते हो उस समय चतुर्थ काल का विकल्प नहीं आता, लेकिन जब उनकी सेवा, पूजा, भक्ति की बात आती है तो चतुर्थकाल के होना चाहिए, वनगामी होना चाहिए।

द्वितीय अध्याय

दोषारोपण काण्ड

92. क्या मुमुक्षु शब्द महान ? नहीं, ढोंगी साधु भी कर सकते हैं निज आत्म उत्थान।

प्रसग वश पुन दुहराये कि ईसाईयो का ऐसा मानना है कि हम जितने हिन्दुओ को एक एक करके वर्षों मे ईसाई बना पाते हैं उन्हे ब्राह्मण एक दिन मे पुन हिन्दु बना लिया करते हैं। तथाकथित मुमुक्षुओ की ठीक यही स्थिति है कि तन,मन,धन से जिन मुनि भक्तो को मुनियो के प्रति अश्रद्धालु बना पाते हैं, वर्षों के प्रयास से। लेकिन किसी पहुचे हुये साधु के वहाँ पहुचने पर उनकी वह श्रद्धा डगमगा जाती है। वैसी स्थिति में उन साधु के प्रति इन्हे ईर्ष्या हो जाना स्वाभाविक ही है। उस समय इनकी स्थिति ''खिसयानी बिल्ली खम्बा नाचे'' जैसी हो जाती है। नीतिकारो का कहना है- वैसे भी दुर्जन सज्जनो से अकारण ही द्वेष करने लगते हैं''। और दोषारोप का दौर चालू हो जाता है। इसमे कोई सदेह नहीं है कि साधुओं मे कमियाँ है, रहेगी। वे चाहते हुए भी इन्हे निकाल नही सकते। ऐसी स्थिति मे उनकी कमियाँ हर कोई निकाल सकता है, लेकिन इनकी तो उस व्यक्ति जैसी दशा है कि कोई महिला कितना अच्छा भोजन बनाये वह उसमे कुछ न कुछ कमी निकाल देता था। एक बार एक महिला ने ऐसा भोजन तैयार किया कि वह उसमे कोई कमी नहीं निकाल पाया, लेकिन आदत के अनुसार कहने लगा पूछने पर- हाँ ज्यादा अच्छा भी तो अच्छा नहीं है।

जैसे ही सघस्थ दो ब्रह्मचारियो सहित एक गाव मे आना हुआ कि दूसरे दिन पहुच गया एक तथाकथित मुमुक्षु हमारी आख बचाते हुए/हमसे कतराते हुए ब्रह्मचारी जी के पास वहाँ पहुचने का एक मात्र उद्देश्य था कि जब यहाँ तुम लोगो/साधुओ को कोई मानने वाला नहीं है, तब आप लोग आ ही क्या जाते हैं। पता नही वह इतना साहस क्यो नही कर पाया कहने का कि आप लोग यहाँ से चले जाये। विशेष रूप से तत्त्व चर्चा करने के लिये ब्रह्मचारी जी ने हमारे पास जाने के लिये कहा। कहने लगा- हम साधुओ को मानते ही नहीं। ये सब ढोगी है। उससे पूछा-कोई ढोगी का अपना गुरु माने वह कैसा है ? कहने लगा- वह भी ढोगी है। ब्र जी कहने लगे- फिर तुम हमारे पास क्यो आये ? तुम्हे तो ऐसे किसी व्यक्ति से सबध नहीं रखना चाहिए जो ऐसे ढोगियो के भक्त हैं। दूसरी बात, साधु लोग अपने भक्तो से तुम्हारी शिकायत करके सिर फुडवा दे तुम्हारा तुम क्या सोचोगे ? कहने लगा- साधु ऐसा करेगे ही क्यो। क्यो नही करेगे जब तुम्हारी दृष्टि मे ढोगी है क्योकि ढोगी कुछ भी करवा सकते हैं। यदि तुम्हे विश्वास हो कि वे ऐसा नहीं करवा सकते तो ढोगी कैसे ? बगले झाकने लगा इसके अलावा और करता ही क्या।

जब प्रवचन एव चर्चा के कारण जैन, जैनेतर मे चर्चा/प्रशसा के विषय बन गये तो कहने लगा- साधुओ को तो अपना ही कल्याण करना चाहिए। उसके इस कथन से साधु के प्रति हमदर्दी नहीं ईर्ष्या बुद्धि है। उसी से पूछा जाये कि ढोगी साधु आत्म कल्याण कर सकते हैं ? नहीं। साधुओं को ढोगी कहना और आत्म कल्याण करने की सलाह देना ये पूर्वापर विरुद्ध बाते हैं। गिरगिट जैसा रग बदलने वालों की बातो पर कौन विश्वास करेगा सिवाय पक्षपाती के।

93. क्या मुमुक्षु शब्द महान ? नहीं, रहे ईर्ष्या भाव में, वे हाथी में श्वान।

गुरु मुख से सुना था कि जितनी प्रभावना किसी साधु के किसी एक गाव से बिना कुछ बोले निकल जाने मात्र मे हो जाती है। उतनी एक अवृति विद्वान सौ वर्ष मे उपदेश देकर भी नही कर सकता। ऐसा अनुभव भी हुआ। ऐसी स्थिति मे विप्रो की तरह इन तथाकथित मुमुक्षुओ का साधुओ के प्रति ईर्ष्यालु होना स्वाभाविक है और वह अनेक रूपो मे प्रगट होने लगता है। ऐसा प्रसग उपस्थिति होने पर दौलत राम जी की पक्ति मे थोडा-सा परिवर्तन करके बोलना पडता है कि "देख दूसरो की बढती को कभी न ईर्ष्या भाव छोडूँ"। सघ के साथ हम भी ऐलक अवस्था मे सवेद शिखर जी की यात्रा पर थे। एक गाव मे पहुचे सारा गाव उमड पडा साधुओं और उनकी चर्या को देखने के लिये। उनमे जैनेतर ही थे। आहार और सामायिक के बाद जब आगे बढने लगे तो जयकारा लगाते हुए लोग गाव के बाहर तब छोडन आये। एक तिलकधारी जी को यह सब देखकर अच्छा नहीं लगा और प्रगट होन लगी ईर्ष्या कि ये साधु नहीं हाथी है हाथी। हाथी की जय बोलो। एक मुनि श्री कहने लग- यह तिलक धारी क्या कह रहा है ? हमने कहा- ठीक कह रहा है। कैसे ? "हाथी चले बाजार कुत्ते लगे हजार" बुदेलखड मे यह कहावत है। इसके अनुसार वह साधुओ को हाथी ही नहीं अपने आप का कुत्ता भी कह रहा है यह कहावत साधुओ मे हाथी जैसे गुण और ईर्ष्यालुओ मे कुत्ते जैसे दुर्गुण को देखकर कही जाती है। हाथी मे यह विशेषता होती है कि कितनी भी प्रतिकूलताये आये लेकिन वह अपने निश्चित स्थान पर पहुच के ही रहता है। मुनि श्री कहने लगे- जैसा निर्विवाद अर्थ आपने लगा लिया उस अभिप्राय से तो उसने कहा नहीं। उसने तो साधुओ की पशुओ के साथ तुलना की है। हमने कहा- आपका कहना और समझना उचित ही है, लेकिन उपरोक्त आक्रोश परिषह सहर्ष सहने करने की किसी मे सामर्थ्य न हो तो उपरोक्त कहावत के अनुसार अर्थ लगा लेने मे समता भाव पूर्ववत् बना रहेगा। तथाकथित मुमुक्षुओ की साधुओं के आने पर कुछ ऐसी ही स्थिति बनती हैं, लेकिन जैन होने के नाते अभी इन्हे इतना लिहाज तो पालना ही पड़ता है कि साधुओ को ढोगी/मिथ्यादृष्टि/द्रव्य लिगी जैसे अपमान जनक शब्दो का ही दबी जबान

से प्रयोग कर पाते हैं, हाथी जैसे अपमान जनक शब्दो का नहीं। इसके बाद भी मुनि भक्त कहीं कहीं इनके ऊपर मान हानिक का दावा पेश कर देते हैं।

ऐसे ही एक मुमुक्षु वकील ने साधु को अप शब्दो का प्रयोग किया। लोगो ने घेराबदी कर ली मारने के लिये। मामला कलेक्टर तक पहुचा। उन्होंने वकील से कहा- तुम्हारी बात मान गये कि सभी साधु ढोगी होते हैं, लेकिन एक काम करो- रात्रि के दो बजे अमुक चौराहे से अमुक चौराहे तक की लाइट बद करवा देते है, पूर्ण रूप से लोगो का, वाहनो का आनाजाना रोक देते हैं अर्थात् उक्त स्थान बिल्कुल शून्य हो जायेगा, तब तुम निर्वस्त्र होकर पैदल चल कर तय करो। उसने स्पष्ट मना कर दिया। तब कलेक्टर साहब ने उसे ऐसा लताडा की कई दिन तक वकालत करना भूल गया।

94. क्या मुमुक्षु शब्द महान ? नहीं, गांजा नहीं ईर्ष्या बोली जंगल नहीं मकान।

पुण्यहीन साधुओ के तो नही किन्तु पुण्यवान साधुओ के पहुचने की सम्भावना या सूचना मिलने पर इनमे काफी हलचल मच जाती है। पुण्यहीन साधुओ की उपेक्षा पुण्यवान साधुओ के भक्त भी कर जाते हैं, तब तथा-कथित मुमुक्षुओ को किसी के आक्षेप का कतई भय नहीं रहता, लेकिन पुण्यवान साधुओ के आगमन पर तो जैनतरो का भी आक्षेप सुनना पडता है कि कैसे जैनी हो तुम्हारे यहा साधु आ रहे हैं उन्हे लेने नहीं गये, सामने से निकल गये तुम हाथ भी नहीं जोडे, सभी के यहाँ आहार होते हैं तुम्हारे यहाँ क्यो नहीं होते। ऐसे कुछ और भी आक्षेप होने पर समझदार हुए तो चुप रह जाते हैं या छुटपुट बहाना बना जाते है कि घर मे इस समय कुछ समस्याये है। लेकिन नासमझ/उजड्ड/"घर का भेदी लका ढावे" ऐसा हुआ तो उसी के सामने साधुओ पर दोशारोपण करने लगेगा। ईर्ष्यालु हुआ तो उस साधु जैसा व्यवहार करने लगता है जो अतिशय क्षेत्र मढिया जी के पास की पहाडी पर बनी मढिया के बाहर से चिल्ला रहा था कि साधुओ को जगल मे कुटी बनाकर रहना चाहिए मकानो मे नहीं। मकानो मे रहना साधुता नहीं है आदि आदि। कह तो सही रहा था, लेकिन जिस ढग से कह रहा था उससे साधुता नहीं ईर्ष्या झलक रही थी। इस पर साथ चल रहे एक भक्त ने व्यग्य किया, लगता है-साधु नहीं गाजा बोल रहा है। हो सकता है वह जैन साधु/जैन समाज द्रोही यह कहने लगे कि हममे और इन साधुओ मे क्या अतर है जो गाव, शहर, घरो, मदिरो, धर्मशालाओ मे रहते हैं। इनके कहे अनुसार साधु जगल में भी रहने लगें तब इन्हे वैसा अच्छा नहीं लगेगा। उस समय भी कहा जायेगा कि इनमें और हमने क्या अन्तर जब ये जमीन में रहते हैं। इन्हे तो आकाश मे रहना चाहिए। यह भी कह देगा कि हमे चतुर्थ काल के साधु चाहिये। उससे पूछा जाये पचम काल मे मुनि नहीं मानते ? यदि मानते हो तो यह कहना स्पष्ट रूप बहाना है कि हमे चतुर्थ काल के साधु चाहिए।

यदि नहीं मानते हो तो पचम काल को खदेड कर चतुर्थ काल लाना पडेगा। या जहाँ भी चतुर्थकाल हमेशा चलता है वहाँ से किसी साधु को खदेडकर लाना होगा। यह भी कहते हुए नहीं चूकेगा कि नेमिनाथ की वाणी पर विश्वास नहीं करने वाले द्वीपायन मुनि के मिथ्या दृष्टि होने से वर्तमान के मुनि मात्र मिथ्या दृष्टि/द्रव्य लिगी हैं। उसे पूछा जाये कि यह मकान सफेद क्यो है वह कहेगा कौआ काला है इसलिये मकान सफेद है अर्थात् महल का सफेद होना कौए के काले होने पर निर्भर है। कहा जाये कि ऐसा तो मूर्ख भी नहीं कहेगा, लेकिन इन तथाकथित मुमुक्षु मूर्खों का कुछ भी बोल देने मे आश्चर्य नहीं है जब एक मुनि का द्रव्य लिगी होना दूसरे मुनि के द्रव्य लिगी होने पर निर्भर हो तो।

इनसे कहा जाये- सुदर्शन सेठ, वारिषेण जैसे श्रावक श्मशान मे निर्वस्त्र होकर सामायिक किया करते थे आप लोग भी किया करो वहाँ जाकर जब मुनियो से चतुर्थ काल के साधुओ का अनुकरण कराना चाहते हो तो। अन्यथा स्पष्ट रूप से दोषारोपण कहलायेगा।

95. क्या मुमुक्षु शब्द महान है ? नहीं, ईर्ष्या भाव से बोर्ड लगाओ मुनि विरोधी रहा मकान।

ऐसे ही एक ईर्ष्यालु तथाकथित मुमुक्षु को एक जैनेतर ने सूचना दी कि तुम्हारे महाराज आ रहे हैं। वह सुनते ही उसी पर बरस पडा जैसे कोई अशुभ समाचार मिल गया हो। क्रोधित होते हुए कहने लगा- सामने वाले मकान मे जाकर बोलो कि आपके महाराज आ रहे हैं। वह कहने लगा- हमारे ऊपर रोब क्यो जमाते हो। मुझे जैसी सूचना दी गई वैसा किया और बताये गये मकान मे न जाकर भूल से दूसरे मकान मे चला गया सूचना देने के लिये। सुनकर उन्होने कहा-ठीक है अपना काम कर लो किसी और से नहीं कहना। ये थे तो उन्हीं मे से लेकिन उनसे भी खतरनाक थे, चालाक भी थे। उन्होने किसी से कुछ नहीं कहा कि कोई आ रहा है। सोचा, हो सकता है कहने पर आक्षेप सुनने को मिल जाये कि आपको क्या मतलब मुनियो के आने-जाने से जब उनके प्रतिश्रद्धा ही नहीं। दूसरी बात स्वय सूचना दे और लेने न जाये वह भी अच्छा नहीं लगता। तीसरी बात, हम चाहते ही कहाँ है कि किसी को सूचना मिले और सूचना नहीं मिलेगी तब लोग वहाँ पहुचने वाले नहीं। ऐसी स्थिति मे साधु भी यहाँ टिकने वाले नहीं। एक ओर यह भी कहते हुए सुने गये हैं कि साधुओं को आग्रह की अपेक्षा नहीं रखना चाहिए। कोई लेने आये या न आये, भेजने आये या न जाये इसकी भी अपेक्षा नहीं रखना चाहिए। इसकी भावना फलीभूत हुई। भक्तो ने कहा- महाराज इस गांव में नहीं रुकना चाहिए, जब लोगों में भक्ति नहीं है,। महाराज ने भी उनकी प्रार्थना सुन ली और आगे बढ गये। आस-पास कोई ऐसा गांव नहीं था जहाँ श्रावक हों अत· उस दिन साधु भूखे ही रह गये। उपरोक्त तथाकथित मुमुक्षु ने

आगे सूचना तो दी कि मुनि महाराज आ रहे हैं, लेकिन जब ज्ञात हुआ कि समय पर नहीं पहुचे, तब उसे भी पश्चाताप हुआ कि मैंने अपने स्वार्थ हेतु यह ठीक नहीं किया। मुनि भक्तो को जब वास्तविकता का ज्ञान हुआ तो उन्होने मुमुक्षुओ से कहा- आप लोगो को अपने मकान के सामने बोर्ड लगा लेना चाहिए कि हम मुनि विरोधी है अत. मुनि से सबधित हमे कोई समाचार न दिये जाये। जैनेतरो को भी दु.ख होता है सुनकर किसी कारणवश साधू के किसी दिन आहार न हो पाये हो तो। यही कारण है कि ढुलमुल विचार धारा वाले तथाकथित मुमुक्षुओ की विचार धारा बदलते देर नहीं लगी। कट्टर विरोधियो मे भी वह कट्टरता नहीं रही। किन्हीं शत्रुओ को भी तो वेदना होती है शत्रुओ को भूखा देखकर फिर तो ये मुमुक्षु जैनो की ही सतान है।

96. क्या मुमुक्षु शब्द महान ? नहीं, जाती नहीं जी , दब जाती है इनका है एहसान।

ढुलमुल विचार धारावाली परिस्थिति वश तथा कथित मुमुक्षु बनी एक महिला के जबान बेटे का दुर्घटना से निधन हो गया। लोगो ने सलाह दी- महाराज के आहार के लिये निकलने मे पहले अर्थी निकाल ली जाये। वैसा ही हुआ। लेकिन हम उस दिन आहार के लिये नहीं गये/ निकले। लोगो ने कहा-आप तो निकलिये आपका उससे क्या सबध ? हमने कहा- घटना अति दु खद है और है तो अपने सहधर्मी। दूसरे कहने लगे- वह तो मुनि विरोधी परिवार है। हमने कहा- वह सहर्ष मुनि विरोधी बना है या बनाया गया है सहयोग देकर ऐसा निश्चित रूप से कह सकते हे आप ? नहीं अत उस परिवार की पुन मुनि धर्म के प्रति भक्ति ऐसे समय मे भी उपक्षा करक लोटाई जा सकती है क्या ? नही। भविष्य मे उनकी वृत्ति किस ओर होगी यह उनकी भवितव्यता पर निर्भर है लेकिन मुझे ऐसी स्थिति म यही करना उचित समझ मे आ रहा है। कुछ समय बाद उस परिवार का मालुम हुआ कि महाराज ने इस घटना के कारण उपवास किया हे ता उनकी साधु धर्म क प्रति आत्मीयता कही गई नही थी, अपितु तथाकथित मुमुक्षुओ के एहसान के कारण दब गई थी। वह प्रगट हो गई। उपवास के दिन तथाकथित स्थानीय मुमुक्षुओ मे भी साधु के प्रति आत्मीयता की अभिव्यक्ति हुई ऐसा मुनि भक्तो से ज्ञात हुआ, लेकिन जब घटना ग्रस्त परिवार के यहाँ साधु के आहार हो गये, तब मुमुक्षुओ की साधु के प्रति आत्मीयता पर पानी फिर गया। और साधु पर दोषारोपण लगाते हुए सुने गये कि उस परिवार को अपने पक्ष मे करने के लिये घटना का बहाना लेकर उपवास का नाटक रचा गया, क्योंकि उनके काफी दिन के प्रयास पर एक ही उपवास मे पानी फिर गया। उपवास की दुरुपयोगता भी बताई गई। कहावत है ''चोर को सारी दुनियाँ चोर दिखती है'' उसी परिवार को धन देकर

मुनि धर्म के प्रति जन्मजात श्रद्धा को दबा देने वालो के यह धन का दुरुपयोग नहीं है। कई एक तो काफी कट्टर होते है साधु की सहानुभूति का कोई असर नहीं होता।

97. क्या मुमुक्षु शब्द महान ? नहीं, बिल्ली जैसे दब जाते हैं हम पर शेर समान।

तथाकथित मुमुक्षु मुनि भक्तो पर दोषारोपण कर रहा था कि जैनतर लोग जेन साधुओ को देखकर हसते हैं, उपहास करते हे, बुरी बुरी गालियो का प्रयोग करते हैं उस समय ये मुनि भक्त कुछ नहीं करते/कहते, चुप रह जाते है/बिल्ली जैसे दव जाते हैं, लेकिन हम लोगो के ऊपर शेर जैसे टूट पडते है, मुनियो के बिरुद्ध मुख से कुछ निकलते ही। इतना ही नहीं, स्वय मुनि भक्त या स्वय मुनि किसी अन्य मुनि के विषय मे आलोचनात्मक ढग से कुछ कहे, तब भी अन्य मुनि या मुनि भक्त उनके साथ वेसा व्यवहार नहीं करते जेसा हमारे साथ करते हैं। अपनी कमी बताते हुए आगे कहने लगे- हम लोगो की दशा तो उस चोर या अपराधी जेसी है कि जो चोर के रूप मे बदनाम हो चुका है। जब कभी चोरी होती है तो उसे ही सदेह की दृष्टि से देखा जाता है। बदी बनाया जाता है। उसी प्रकार हम लोग साधुओ की आलोचना, निदा, उनमे दोषारोपण करने, उन्हे बदनाम करने मे इतने बदनाम हो चुके है कि जब कभी साधुओ की झूठी सच्ची अफवाहे फैलती है तो हम लोगो का ही सदह की दृष्टि मे देखा जाता हे। इसका समाधान यह है-

साधुओ के आचार-विचारो स जेनतर जितने दूर हे उतना तुम नही तब साधुओ के विषय मे जेनतरा क साथ हाथ क्यो मिलाया जाये/ उनका अनुकरण क्यो किया जाये अर्थात् उपहास आदि करने पर जिस प्रकार साधु भक्त जैनेतरो पर शक्ति नहीं बरत सकते उसी प्रकार हम मुमुक्षु के साथ भी न बरती जाये। अपने ही काने या अधे लडके को कोई कनमा या अधरा कहे तो दूसरो के द्वारा वेसा कहा जाने पर यह कहकर रोका जा सकता कि हमारा लडका हे कुछ भी कहे, लेकिन आप लोग वेसा नहीं-कह सकते। दूसरे भी कह सकते ह कि जब तुम ही उस वेसा कहते हो तब तो आपके रोके जान पर भी दूसरो को बल तो मिलेगा ही। मुनियो का उपहासादि करने वाले जैनतरो को वैसा करने से रोका जाने पर वे कह सकते हैं कि पहले अपने ही जेन तथाकथित मुमुक्षुओ को रोको जो साधुओ को गाली देते हैं। जैसे किसी व्यसनी जैनेतर से कहा जाये-भेया व्यसन नहीं करना चाहिए। तब उन परिचित जैनो पर आक्षेप करते हुए आक्षेप करते हैं कि पहले अपने जात भाईयो से तो व्यसन छुडवालो फिर हमसे छुडवाना।

मुनि भक्त होते हुए भी मुनियो के बारे मे कुछ कहे वह आलोचना नहीं समालोचना है। तुम्हारे ऊपर भी आक्षेप हो सकता हे कि जैन साधुओ को कुछ कह देते हो वैसा ही

जैनेतर साधुओ को भी कह सकते हो ? यदि कह सकते हो तो कहकर देखो उनके कट्टर भक्तो के सामने पहुचे हुए साधुओ के विषय मे।

आचार्य ने जैन साधुओ की धातु के घडे से तुलना की और जैनेतर साधु की मिट्टी के घडे से। मिट्टी का घडा फूटने पर जिस प्रकार किसी काम का नहीं रहता उसी प्रकार धातु का घडा नहीं। उसी प्रकार जैन साधु अज्ञानता, कषाय या प्रमादवश बडा अपराधी हो जाये तो भी जैनेतर साधुओ के समान सर्वथा बहिष्कृत नहीं किया जाता या हो जाता। तुम्हारे निकट या दूर का सबधी आचरण पतित हो जाये तो तब क्या जिनके साथ कोई सबध नहीं है, उनकी तरह "धजी का शाप" बनाकर अफवाह उडायेगे ?

98 क्या मुमुक्षु शब्द महान ? नहीं, कहां विघ्न का विधान, फिर भी लग जाता अनुमान।

इनके कार्यक्रम मे भी जब कोई विघ्न आता है, तब मुनि भक्तो पर ही दोषारोपण किया जाता है, भले विघ्न किसी अन्य कारण से हुआ हो। स्वाध्याय चल रहा था। एक श्रोता व्याख्यान सुनते-सुनते बीडी सुलगा कर पीने लगा। शास्त्र सभा मे कोई धूम्रपान करे और वक्ता की दृष्टि उस पर न पडे ऐसा कही हो सकता है। वक्ता महोदय ने डाटते हुए कहा- कौन है भाई ये ? शास्त्र सभा के बाहर जाकर क्यो नहीं कर लेते धूम्रपान। मन मे मुनि भक्तो पर सदेह करके कहना लगा- इसमे जरूर "दाल मे काला" है। बीडी पीने वाला कहने लगा- मैने तीन-चार बार प्रयास किया बाहर जाने का, लेकिन इन पडौसियो ने नहीं जान दिया। मुझे ता तलफ लगा थी बहुत जोर से इसलिये यही पीने लगा। वक्ता कहने लगा- कुछ भी हो यहाँ यह शोभा नही देता। शास्त्र समाप्ति क बाद उन्होने उसे एकान्त मे बुलाया। पूछा-सच-सच बताना, यहाँ आन और ऐसा करने के लिये किसने कहा ? उन्होने जिन्होने मुझे बाहर जाने से रोका था। आप लागो को यहाँ आते देखकर, पूछा- आप लोग यहाँ किस लिये जा रह हे ? उन्होन बताया यहाँ तत्त्व चर्चा होती है और मुझे भी प्रेरित करके ले आये। मे यहाँ का ता हूँ नही। काम धधे स बाहर से आया हूँ। आपका व्याख्यान भी ऐसा ही चल रहा था जिसे सुनकर ऐसा लगा कि यहीं पी लेने मे कोई अपराध नही। सच बोलने पर भी वक्ता का सदेह नही गया।

मदिर मे स्वाध्याय चल रहा हो और लाइट चली जाये तो मुनि भक्तो पर सदेह होने लगता हे। शिक्षण शिविर प्रारम्भ होते ही हिन्दुओ ने रामायण प्रारम्भ कर दी अखड पाठ के रूप मे। इन्हे अनुमान लगाते देर नहीं लगी कि मुनि भक्तो ने उकसाया होगा।

प्रथमानुयोग का उदाहरण देते हुए एक मुमुक्षु मुनि भक्त से कहने लगे- रावण जब बहुरूपणी विद्या सिद्धकर रहा था तब राम के पक्ष के लागा न राम से कहा यदि वह

सिद्ध करने में सफल हो गया तो उसे जीतना कठिन हो जायेगा अत ऐसा विघ्न किया जाये कि उसे वह सिद्ध न हो सके। राम ने स्पष्ट मना कर दिया कि किसी की किसी भी कार्य की सिद्धी मे विघ्न नहीं डालना चाहिए, लेकिन हम मुमुक्षु किसी भी कार्यक्रम की रूप रेखा बनाते हैं मुनि भक्त उसमे विघ्न करने कराने के योजना बना लेते हैं। ऐसा करने में साधु भी नहीं चूकते। दूर-दूर से चले आते हैं बन सके तो। कार्यक्रम को फीका बनाने के लिये। क्या यह उचित है ? मुनि भक्त ने कहा- तुम्हारे इस दोषारोपण से "एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं करता", निमित्त-नैमित्तिक कोई चीज नहीं है, प्रथमानुयोग गप्पे हैं, इन तीनो मान्यता का खण्डन हो जाता है। पहली, दूसरी मान्यता से विघ्न होने, करने, कराने का प्रश्न ही नहीं उठता। तीसरी मान्यता के अनुसर तुम्हे उदाहरण देने का अधिकार ही नहीं है।

99. क्या मुमुक्षु शब्द महान ? नहीं समवशरण के आस-पास भी लगती रहीं दुकान।

एक दत कथा सुनी थी- एक श्रगाल नदी के निचले भाग मे पानी पी रहा था और भेडिया ऊपरी भाग मे पी रहा था। भेडिया ने उसे देखते ही कहा- क्यो रे तूने पानी जूठा क्यो कर दिया ? उसने कहा- नहीं साहब आप तो ऊपर पानी पी रहे हैं, तब जूठा कैसे हो सकता है। भेडिये का अपनी गलती समझ मे आ गई। फिर भी कहने लगा- उस दिन वहाँ तू गाली क्यो दे रहा था ? उसने कहा- नही मैंने तो नहीं दी। मैं वहाँ था ही नहीं। वह कहने लगा। तू नहीं तो तेरा बाप रहा होगा ऐसा कहकर उसे वह मार कर खा गया। आगे कहे जाने वाले भिन्न भिन्न प्रकार के विचार धारा वाले मुमुक्षुओ का एक ही लक्ष्य है- मुनि मात्र पर किसी भी तरह उल्टे-सीधे दोषारोपण करके उनका बहिष्कार करना लेकिन आत्म कल्याण के इच्छुक साधुओ को "हाथी चले बाजार कुत्ते लगे हजार" इस सुयुक्ति के अनुसार अपनी लक्ष्य प्राप्ति मे लगे रहना चाहिए। महावीर भगवान के समवशरण के आस-पास अनेका दुकान लगी रहती थीं। दुकानदार महावीर प्रभु पर दोषारोपण करते हुए कहते थे- ये मायावी माया से ऊपर जा कर बैठ गया और माया से ही समवशरण रच लिया। आओ हम बतात है मोक्ष का रास्ता यह क्या बतायेगा। उसी प्रकार तथाकथित मुमुक्षुओं का गुरु (भेडिया) भी मुनियो के लिये अप शब्दो का प्रयोग करते हुए यही तो कह गया कि ये द्रव्य लिगी साधु, पैसा बटोरने वाले, मदिर, धर्मशाला, पाठशाला, गोशाला, क्षेत्र निर्माण, तीर्थउद्धार, पचकल्याण करवाने, गजरथ चलवाने जैसे अशुभ, शुभ और शुभाशुभ के आरम्भ-सारम्भ के कार्यों मे लगे रहते है। ये क्या मोक्ष मार्ग बतायेगे। बताते भी हैं तो त्याग से मोक्ष बताते हैं। कहते है- यह त्याग करो वह त्याग करो, व्रती बनो

सयमी बनो, लेकिन हम तुम्हे बिना त्याग कराया, बिना व्रती बनाये मोक्ष का मार्ग और मोक्ष बताये देते हैं। भक्त बने बिना भगवान बनाये देते हैं।

• जिन तथाकथित मुमुक्षुओ की दृष्टि मे इस काल मे मुनि है ही नहीं उनके विषय में इनका कुछ कहना बाझ के लडके विषय मे कुछ कहने के समान मूर्खता है। अरे जिस वस्तु का जहाँ जिस समय अस्तित्व ही नहीं है, उसके विषय मे उनके गुण-दोषो पर विचार करना व्यर्थ ही है।

यहाँ एक ओर तो "एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं करता" और दूसरी ओर पचम काल मे मुनि नहीं होते। यह दूसरी धारणा 'पचम काल' यह द्रव्य आत्म द्रव्य को मुनि बनने मे बाधक सिद्ध करके, पहली धारणा को मिथ्या सिद्ध कर रही है। पूर्वापर स्पष्ट विरोध। क्या करे विचारे, बिना सोचे विचारे धारणा बना लेने का परिणाम निरुत्तर होने के रूप मे भुगत रहे है।

इस समीक्षा की मार भृत बात यह है कि जिस प्रकार मुनि भक्त अपना परिचय देने मे किसी प्रकार का भय नही करता। वेम य मुमुक्षु नहीं है। जहाँ तक बच निकलन की कोशिश मे रहते है। किसी मुमुक्षु पण्डित के आन पर मुनि भक्त कतराते नही लेकिन ये मुनियो के आने पर अवश्य कतरात है।

100 क्या मुमुक्षु शब्द महान ? नहीं, वैचारिक मतभेद मे करते एक घाट जल पान।।

"इसमे काइ सदह नही हे कि वेगग्य का स्थिर बनाय रखन के लिय साधुआ का भिक्षा चर्या म भोजन करक जगल मे रहना चाहिए" एसा कुन्द कुन्द स्वामी न कहा हे हित बुद्धि से लकिन ये मुमुक्षु द्वेष बुद्धि म कहत हे। इन्ही मे से कुछ लोगो की विचारधारा भिन्न ही है। एक छाट म गाव म चातुर्मास चल रहा था। मृत्यु क कार्यक्रम मे बुलाये गये मेहमानो मे तथाकथित मुमुक्षु भी थे लेकिन य ऐमे ह इसका परिचय शायद किसी को नही था। एक स्थानी महानुभाव न उनके सामने हमारी काफी प्रशमा की एव हमारे पास दर्शनार्थ चलने का आग्रह किया। वे अपनी असलियत बताये बिना आना-कानी करते रहे स्पष्ट मना न कर सकने क कारण कि हम वहाँ नही जायेगे। विशेष आग्रह पर कहने लगे- मुनि महाराज मे इतनी विशेषता है तो वे इस छोटे गाव म क्यो रह रहे हैं, इन्हे तो किसी शहर मे रहना चाहिए अर्थात् इनके विचार से छोटे मे गाव मे रहने वाले साधु मे ये विशेषताये नहीं हो सकती जो इनके द्वारा बताई गई है। वेसे भी शहरवासी ग्राम वासियो को मूर्ख समझते भी हैं फिर इसी दृष्टि मे साधुओ को वैसा ममझने मे आश्चर्य क्या है।

इमसे कुछ हटकर शास्त्र क आधार मे एक मुमुक्षु कह रहा था कि कुन्द कुन्द स्वामी

ने गाव मे तीन दिन, कस्वावस्ती मे सात दिन, और नगर मे पद्रह दिन से अधिक नहीं रहना चाहिए फिर ये साधु इससे अधिक क्यो रुकते हैं। वह ऐसा निःस्वार्थ भावना से कह रहा हो सो भी बात नहीं अपितु हमारे उस गाव में पहुचने पर उसका रहना अथवा न रहना दोनो बराबर हो गया था। वेतन सेवी पुजारी से पण्डित बन बैठा था। गाव के हिसाब से पर्याप्त था किराये का टट्टू।

तथाकथित मुमुक्षु अपने आपको एक ही गुरु के शिष्य स्वीकार करके भी इनके आपसी मतभेद को देखते हुए बौद्ध एव वेदान्तियो के आपसी मतभेद का स्मरण होने लगता है। बौद्ध एक क्षणिक वादी बुद्ध के अनुयायी होकर भी उनके चार भेद हैं- माध्यमिक, सौतान्त्रिक, वैभाषिक ओर योगाचार। उसी प्रकार एक वेद को मानने वाले वेदान्तियो के तीन भेद है-विधी,भावना, नियोगवादी। इनके विषय मे न्याय शास्त्रों मे ही देखना चाहिए। सक्षेप मे यहा इतना ही कहना है कि ये आपस मे ही एक दुसरे का खडन करते रहते हैं लेकिन ये भिन्न भिन्न विचारधारा वाले तथाकथित मुमुक्षु आश्चर्य है कि एक घाट पर पानी पी लेते है। जो पूजा क विरोधी हे व अभिषेक के विरोधी तो हैं ही। कुछ अभिषेक के विरोधी तो है लेकिन पूजा क विरोधी नहीं हैं। कुछ तो दोना के विरोधी न होकर भी साधु विरोधी हैं। कुछ दिनो के विरोधी हान के साथ साधु विरोधी हैं। कुछ तीनो का विरोध करते हे। कुछ तीनो क समर्थक होकर भी इनके समर्थक। इनम कुछ ऐसे भी हैं जो व्रता, पुण्य दान को हय कहते है। कुछ तो व्रतो मे विश्वास रखते हैं दान देन की इच्छा भी रखते है, लेकिन मुनि विरोधी है। ऐसी एक महिला हमारे सघस्थ ब्रह्मचारी जी से कहने लगी- ब्रह्मचारी जी ! आपको कल हमारे यहाँ ही भोजन करना हे। हम कुए का ही पानी हमेशा पीते हैं, मर्यादित भोजन ही करते हैं ब्र जी ने कहा- कल आप पडगाहन के लिये दरवाजे पर खडी हो जाना। महाराज आ जायेगे तो ठीक अन्यथा हम तो आ ही जायेंगे। सुनकर वह कुछ नहीं बोली। लगता है- ऐसे लोगो का साधुओ का आहार देने पर प्रतिबध लगा कर ही सहायता दी गई हे उनके ब्रह्मचारियों पर प्रतिबध लगा कर नहीं। आश्चर्य की बात तो यह हे कि व्रतो को हेय कहने वाले भी जिसकी सहायता करत है, यदि वे व्रती है तो उस पर प्रतिबध नही लगाते कि तुम व्रत नहीं पाल सकते, मर्यादित भोजन नहीं कर सकते, पूजन, अभिषेक नहीं कर सकते इत्यादि।

101. क्या मुमुक्षु शब्द महान ? नहीं, नौकरी करना नाक कटाना ऐसा खानदान।

दो ढाई सो घर की समाज मे एक ही व्यक्ति था जो भक्तो को विकल्प पैदा कर देता था। एक भक्त कहने लगे- महाराज ! वह आपको नमस्कार नहीं करता ? हमने कहा-इसमे हमारा तुम्हारा बिगडता ही क्या है। व्यक्ति इसलिये साधु नहीं बनता कि कोई हमे नमस्कार करे। कहने लगे- हमे तो अच्छा नहीं लगता यदि कोई आपका नमस्कार न

करे। हमने कहा कोई अजैन हमे नमस्कार न करे आपको कैसा लगता है ? कहने लगे - जिसकी हम बात कर रहे हैं वह तो जैन है। हमने कहा - यदि वह अजैन होता तो आपको बुरा लगता ? नहीं, तब उसे वैसा ही समझ लो। सुनते ही जैसे उन्हे अवसर मिल गया। कहने लगे- ऐसे व्यक्ति को अभिषेक करने का अधिकार है क्या ? हमने पूछा- क्या वह भी अभिषेक करता है ? हाँ, लेकिन वह जिनका अनुकरण करता है, उनके यहाँ तो अभिषेक क्रिया वर्जित है। करता है तो उसे अधिकार नहीं है। कहने लगे - मना करने पर भी नहीं मानता। विचारणीय है कि वह किस शर्त पर खरीदा होगा। ऐसे भी मुमुक्षु हैं जो बिना अभिषेक पूजन के पानी भी ग्रहण नहीं करते। ऐसे भी मुमुक्षु हैं जो पूजन करने वाले को कुत्ते जैसा भोंकना कहते हैं। ऐसे लोगो पर भी एक घटना से विचार करे।

इन्हे पाप कार्यों से इतनी ग्लानी नहीं है जितनी पूजादि पुण्य कार्यों से एक। व्यक्ति पूजा, अभिषेक आदि से कोई प्रयोजन नहीं रखते थे। हमारे वहाँ पहुचने पर ऐसा कुछ सयोग बना कि वे साधु सेवा मे रहने लगे, प्रवचन सुनने लगे, यहाँ तक तो ठीक लेकिन पूजन भी करने लगे यह बात उनके सहपाठी तथाकथित मुमुक्षु को ठीक नहीं लगी। उनसे तो नहीं उसके लडके से कहने लगे उपहास करते हुए- कहो तुम्हारे पापा (पिता) जी पूजन कब से करने लगे। जब वे सासारिक कार्यो मे ही उलझे रहते थे तब उसने ऐसा कोई व्यग्य नहीं किया कि ये ऐसा ही क्यो करते हैं। इनकी तो उसके उन दोस्ता जेसी स्थिति है जो करोडपति बाप का बेटा होकर भी जिसने व्यसनो मे फसकर मा-बाप के जीते जी सारी सम्पत्ति बर्बाद कर दी और मरने पर आप भूखे मरने लगा। ''मरता क्या नही करता'' के अनुसार एक दुकान पर नोकरी करने लगा। बर्बाद हाते ही साथ छोड देने वाले दोस्ता से एक दिन अचानक भेट हो गई। दोषारापण करने लगे अरे यार आजकल ता तूँ दिखता ही नहीं, कहाँ रहता हे ? कहने लगा, यार नौकरी कर रहा हूँ इस समय। दोस्तो ने सहानुभूति दिखाते हुए कहा अरे नोकरी करके तो तूँने अपने बाप की, खानदान की नाक कटा दी। कही हुआ ह ऐसा खानदान मे। ओर उसे नोकरी से छुडाकर चोरी जेसे कुकृत्यो मे लगा दिया जेसे उसके खानदान मे होता रहा है। उसी प्रकार ये तथा-कथित मुमुक्षु चाहते हैं कि लोग पुण्य की अपेक्षा पाप कार्यो मे लगे रहे, क्योकि ये उनके पैतृक कर्म हैं, पुण्य कर्म करना खानदान की नाक कटाना है।

102. क्या मुमुक्षु शब्द महान ? नहीं, द्वेष बुद्धि में कहाँ है, पूर्वा पर विरोध का ध्यान।

पद्मावती की उपासना के कट्टर विरोधी उसके उपासको से कहा करते हैं कि तुम लोग कहते हो ''यदि उसे मान्यता न दी जाये तो वह हमारा अनिष्ट कर सकती है। कर टती है लेकिन हम लोगो के द्वारा मान्यता देना तो दूर उसे सरागी/कुदेव कहकर, उसका

बहिष्कार किया जाता है, फिर हमारा क्यों नहीं बिगाडती अत. उसकी उपासना मिथ्या है। मानने वाला मिथ्या दृष्टि है। उसी प्रकार तथाकथित मुमुक्षुओ का गुरु कह गया कि मूर्ख लोग णमोकार मंत्र का स्मरण करना/जाप करने को अच्छा मानते हैं, उसका आदर करते हैं। शास्त्रो का हवाला देते हैं जिसने इसकी आराधना श्रद्धा से की उसको इह लोक और परलोक मे साक्षात् सुखदायी हुआ और परंपरा से मोक्षदायी और जिसने इसकी उपेक्षा की उसे दुखदायी अर्थात् उसने उसी भव मे एव नरक निगोद मे दुख भोगे हैं, अमुक चक्रवर्ती जैसे, लेकिन हमे देखो उसका आदर करना तो दूर, हम उसे जपना पाप कहते हैं ओर जपने वालों को पापी कहते हैं, फिर भी हमारा कुछ भी अनिष्ट नहीं होता उसके अनुयायी भी तो यही आलाप रहे हैं।

एक आचार्य असाता कर्म के उदय से अस्वस्थ थे। लोग उनके स्वास्थ्य लाभ हेतु णमोकार मत्र का सामूहिक अखड पाठ कर रहे थे। पर्युषण पर्व मे बुलाये गये एक पण्डित ने लोगो से कहा- णमोकार मत्र जपने से कुछ नहीं होता। उन्हे तो अस्पताल ले जाकर उपचार कराओ। जैसे हम मुमुक्षु अपने गुरु को वहाँ ले गये थे। आचार्य को तो नहीं ले गये और न ले ही जा सकते थे, लेकिन मुनि भक्तो ने मार-मार कर ऐसी हालत बना दी कि उसे ही अस्पताल पहुचने की नोवत आ गई। यह पण्डित तो एक उदाहरण है जिसने भी इस प्रकार बोलने का दु साहस किया है अर्थात् णमोकार मत्र और इस मत्र स्वरूप किसी भी परमेष्ठी का अनादर किया उसका यही हाल हुआ। फिर केसे कहते हैं कि इस मत्र के अनादर करने से हमारा कुछ नहीं बिगडता ? परलोक के बारे मे अभी से कहा नहीं जा सकता। जिसका तत्काल कुछ नहीं बिगडता उसका उस समय पापानुबधी पुण्य का उदय समझना चाहिए। ये मूर्ख बोलते समय पूर्वा पर विरोध का बिल्कुल भी ध्यान नहीं रखते कि जब स्वास्थ्य लाभ मे णमोकार मत्र से कोई लाभ नहीं हाता, तब अस्पताल मे ले जाकर दवा से क्या लाभ होगा क्योकि वह भी स्वास्थ्य से पर है'।

एक विद्यालय मे धवला ग्रथ राज की वाचना चल रही थी। वाचना समाप्ति पर प्रतिदिन पहले गुरु पुजा होती थी ओर बाद मे जिनवाणी स्तुति लेकिन कथाकथित एक मुमुक्षु पडित एव ऐसे ही श्रोताओ को यह अच्छा नहीं लगता था। वे चाहते थे पहले जिनवाणी स्तुति हो। कोशिश भी यही करते थे, लेकिन भक्तो के आगे एक भी नहीं चलती थी। निर्णय आचार्य जी पर पहुचा। उन्होंने कहा- जिसने धवला ग्रथ लिखा है उनको पहले महत्व देना या धवला ग्रथ को ? मुमुक्षु की बोलती बद हो गई समझ रहे थे उपस्थित आचार्य की स्तुति होती है "एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं करता" इस मान्यता को सुरक्षित रखने के लिये व्यवहार धर्म को झुठलाने वाले साधु उपाध्याय एव आचार्य जो व्यवहार धर्म भी पालत हैं उन्हे न झुठलाये तो अपनी मान्यता को कायम कैसे रख सकेगे। कहना यो चाहिए कि जिनवाणी को परस्त्री कहने वाले इनकी दृष्टि मे साधु, उपाध्याय, आचाय जिनवाणी (ग्रथ) से हीन हैं।

103. क्या मुमुक्षु शब्द महान ? नहीं, नेतावत् बचाव की चिन्ता कैसे हो - धर्म उत्थान।

वर्तमान जैन समाज मे तथा कथित मुमुक्षुओ की देश मे राजनेताओ जैसी स्थिति है अर्थात् राजनेता पार्टियो मे विभाजित हे और इन्हे जितनी चिता पार्टी को मजबूत एव उन्नत विस्तृत बनाने की है उतनी देश को उन्नत, विस्तृत एव आर्थिक दृष्टि से मजबूत बनाने की नहीं है। बहुमत के आधार पर सत्ता मे आये सत्ताधारियो को सरकार की सुरक्षा के लिये जितनी चिन्ता होती है उतनी देश की सुरक्षा की नहीं होती अर्थात् जितनी मानसिकता सरकार के बचाव मे लगी रहती हे उतनी देश की उन्नति आदि मे नही लगती। सरकार को गिराने में जिस प्रकार की या जितनी मानसिकता विपक्षियो की लगी रहती हे उस प्रकार की या उतनी मानसिकता देश की उन्नति मे नही लगती। साथ ही उनके गलत कार्यो का आलोचना करते हे लेकिन अच्छे कार्यो की प्रशसा नहीं करत, क्योकि ऐसा करने लगे तो जनता केस सत्ता मे आन देगी जब सत्ताधारी ही अच्छे कार्य कर रहे हे विरोधियो की दृष्टि मे भी तब।

वतमान प्रजातन्त्र मे राजगद्दी का/कुर्सी का प्रभाव बिच्छु के स्वभाव जेसा है। एक महात्मा नदी मे बहते चले जा रहे बिच्छु को पकडकर बाहर निकाल कर जीवन दान देना चाहत थे, लकिन हाथ मे लेते ही डक मार दिया करता था। चोथी बार मे आखिर उसे पानी से बाहर निकाल ही दिया। एक व्यक्ति यह कृत्य दख रहा था। कहन लगा - क्या मूर्खता कर रहे हो। वह डक मार रहा हे ओर फिर भी उस दुष्ट को बचा रह हा। साधु ने कहा - उसका वह स्वभाव (विभाव स्वभाव) हे वेसा करना। सज्जन दुजन, चेतन-अचेतन के साथ भेदभाव नही हे। उसे तो लकडी का भी धक्का लगे तो उसे भी डक मार देता है। उसे इतना विवेक भी तो नहीं कि दुर्जन को डक न मारु नही तो वह मार डालगा। उसे दुष्ट ओर उसके कार्य को दुष्टता कहने वाले तुम कहीं दुर्भाग्य स उस पर्याय मे पहुँचे अर्थात् बिच्छू बन तो वही दुष्टता करोगे जिसकी इस समय आलोचना कर रहे हो। राजनेता भी कुर्सी पर बैठकर वही कार्य करते हैं, जिसकी वे पहले आलोचना करते थे। इनके इस कृत्य से ज्ञात हो जाता है कि विपक्षी सत्तापक्षियो की आलोचना जनता के हित मे नहीं सत्ता हथियाने के लिये किया करते हैं। स्वतत्र भारत का प्रत्येक नागरिक चाहता तो हर दृष्टि से अपनी ओर देश की कई गुनी उन्नति कर सकता था। इतना ही नही विदेशो मे भी अपनी सस्कृति, रीति-रिवाजों की छाप छोड सकता था, लेकिन वह आपसी समस्याए ही नहीं सुलझा पा रहा है।

धर्म निरपेक्ष इस राष्ट्र मे अन्य धर्म सम्प्रदायो की तरह जेन सम्प्रदाय भी जैन धर्म के प्रचार-प्रसार और उसे हर दृष्टि से उन्नत बनाने मे पूर्णतया इस समय स्वतत्र एव समर्थ है

लेकिन जैसे भारत की जनसख्या मे जैन मुठ्ठी भर हैं। इन मुठ्ठी भर जैनो मे भी जिनकी समीक्षा चल रही है वे भी जैनो की सख्या मे मुठ्ठी भर हैं। इनकी मानसिकता जैन धर्म के उत्थान मे नहीं अपने अनुयायियो को बढाने मे लगी हुई है और जो इनके अनुयायी बन चुके हैं, बहक न जाये उनकी सुरक्षा मे इनकी मानसिकता उलझी रहती है, क्योकि राजनेताओ के समान दल बदलू इनमे भी होते हैं। इसकी स्वच्छद प्रवृत्ति के कारण जो धर्म का वास्तव मे उत्थान चाहते है उनकी भी मानसिकता इनकी स्वच्छदता पर अकुश लगाने मे उलझी रहती है। श्वेताम्बरो की ओर से निश्चित नहीं हो पाये कि ये चिन्ता के विषय बन गये।

104. क्या मुमुक्ष शब्द महान ? नहीं, न देख सके आंखें अच्छाई सुन क्या सकेंगे दोनों कान।

एक मुनि भक्त कह रहे थे - महाराज हमारे मामा तथाकथित मुमुक्ष हैं। आज हमारा उनके यहाँ निमत्रण था। आज आपका प्रवचन सुनकर गई मामी जी आपकी प्रशसा कर रही थी। उन्हे मामा जी की लताड सुननी पडी। लताड सुनकर ऐसा लगा जेसे हिन्दु रामायण के अनुसार राम की सेना मे गुप्तचरी करने गये गुप्तचरो द्वारा राम की प्रशसा करने पर उन्हे रावण की लताड सुननी पडी थी कि तुम लोग भी मेरे सामने शत्रु की प्रशसा कर रहे हो। जो भी जाता हे उनक पास लौटकर उनकी प्रशसा ही करता हे। पता नहीं कोन सा जादू कर देते है दानो भाई। साधु भी तो शत्रु हैं इनके लिये फिर उनकी प्रशसा सुन कैसे सकत हे रावण के वशज। गुप्तचर अवश्य छोड देते हैं कि कहीं कोई सुराग मिल जाये आलाचना के साथ-साथ पत्रिका को भी विषय मिल जाये। जैसे राजनीति मे सत्तापक्ष की कमी विपक्षियो के लिये वरदान हाती है। यही कारण है कि वे पार्टी के एक नेता की गलती का पार्टी मात्र पर थोप दी जाती है और सभी को एक ही श्रेणी मे गिनकर जनता के सामन पार्टी मात्र को सदोष घोषित किया जाता हे। उसी प्रकार एक साधु मे कोइ दुर्गुण मिल जाये तो पर्याप्त हे मुनि मात्र का सदोषी सिद्ध कर उन्हे बदनाम सिद्ध करने मे और कही मिले या न मिले सवेद शिखर मे मिल ही जाते हैं वैसे साधु। गुणभद्र आचार्य कहते है योजनो ऊपर दूर रहने वाले चन्द्रमा की कालिमा रूपी दुर्गुण का यह छोटी सी आखो वाला प्राणी कैसे देख लेता हे। इसम चन्द्रमा की विशेषता है या मनुष्य जैसे प्राणियो के आखो की विशेषता है। आचार्य कहते हैं - चन्द्रमा की ही विशेषता है। उसी प्रकार नग्नत्व भी ऐसा ही भेष हे चन्द्रमा जैसा जिसमे अल्प भी दोष दूर से ही दिख जाता है। तथाकथित मुमुक्षुओ की प्रवृत्ति से लगता हे कि सूक्ष्मदोष भी दिख जाने मे इनकी आखो की विशेषता है नग्नत्व के गुणो की नहीं।

लोक व्यवहार मे प्राय: ऐसा देखा जाता है कि जिस परिवार मे कुछ लोग दादागिरी करने वाले होते अर्थात् जिनसे लोग डरा करते हैं उस परिवार की बहन, बहू, बेटियो को बुरी दृष्टि से देखने मे भय खाते हैं। उन परिवारो की बहन, बेटियो को भी बुरी दृष्टि से देखने में हिचकिचाते हैं जो सज्जन/प्रतिष्ठित कार्यकुशल एव व्यवहारकुशल होते हैं। उसी प्रकार तथाकथित मुमुक्ष उन साधुओ के विषय मे कुछ भी कहने मे काफी सतर्कता बरतते हैं जिनसे या जिनके भक्तो से कुछ भी अनिष्ट होने की सम्भावना होती है भले ही वे शिथलाचार की चरम सीमा पर क्यो न हो। उन साधुओ के विषय मे भी काफी सोचा विचारी करते हैं जिनका आचरण निर्दोष होता है। शेष साधुओ के लिये निडर एव मुखर होते हैं। राजनीति मे राजनेताओ की भी ऐसी ही स्थिति होती है।

105. क्या मुमुक्षु शब्द महान ? नहीं, एक ओर हैं श्रीमति जी एक ओर श्रीमान।

कुछ लोग ऐसे भी होते है, जो आपस मे सहोदर होने के साथ-साथ सहधर्मी भी होते हैं। कुछ आपस् मे सहोदर तो हैं लेकिन सहधर्मी नही होते। कुछ ऐसे भी होते है जो आपस मे सहधर्मी तो होते हैं, लेकिन सहोदर नही होते। अधिकाश ऐसे भी होते हैं जो आपस मे न सहधर्मी होते हैं न सहोदर। 'सहोदर' यह उपलक्षण हैं। इससे पारिवारिक और भी सबधो को ग्रहण कर लेना चाहिये। प्राय सहोदर का पक्ष प्रबल होता है, सहधर्मियो के पक्ष की अपेक्षा। जिन लोगो की यहाँ समीक्षा चल रही है उनके पथ को जन्मे अभी अधिक समय नही हुआ हे अत उनके साथ अभी रोटी-बेटी व्यवहार दोनो ही चालू है।

जैसे इस भारत देश मे अनेक पार्टियॉ हैं। एक ही परिवार मे विभिन्न पार्टियो के समर्थक लोग मिल जाते हे। बडा भाई किसी अन्य पार्टी मे है तो छोटा किसी अन्य मे और पिता किसी अन्य मे। यहाँ तक की पति-पत्नि, मॉ-बेटे भी परस्पर मे विरुद्ध पार्टी के समर्थक देखे जाते हैं। कुछ निर्दली भी होते है। अधिकाश ऐसे भी होते है जिन्हे राजनीति से कोई प्रयोजन ही नहीं होता। ऐस भी हात हे कि जिस समय सत्ता जिस पार्टी के हाथ मे आती है उसी का समर्थन करने लगते हैं।

वर्तमान जैन परिवारो की ठीक यही स्थिति है। कोई मुनि समर्थक तो कोई सदस्य मुनि विरोधी/निन्दक। अधिकाश ऐसे भी होते है जिन्हे न मुनि समर्थन से प्रयोजन होता है और न निन्दा से, कुछ लोगो की दशा - *"गगा आई तो गगा के दास और यमुना आई तो यमुना के दास या गगा गये तो गगा के दास और यमुना गये तो यमुना के दास"* जैसी है अर्थात् साधु आते हैं तो उनके आगे-पीछे हो जाते है और तथाकथित मुमुक्ष पण्डित आते हैं तो उनके भी आगे-पीछे होने लगते हैं।

राजनेताओ के विषय मे सुना गया है कि वे उन चुनाव क्षेत्रो मे खुलकर विरोधियो का विरोध नहीं करते जहाँ से इनके निकट सबधी चुनाव लड़ रहे हों। वस्तुत. उन्हे जिस पार्टी के हैं उसका कट्टर/समर्पित राजनेता नहीं कहा जा सकता। उसी प्रकार प्रसग मे भी समझ लेना चाहिये। पति मुनि भक्त थे और पत्नि मुनि निन्दक थी। मुनि भक्तो के बीच बैठे पति महोदय उस समय वहाँ से उठकर चले जाते थे जिस समय मुनि भक्त पत्नि के गुरु की आलोचना करने लगते थे और मुनि निन्दको बीच बैठी पत्नि उस समय उठकर चली जाती थी जब मुनि निन्दा करने लगते थे। मेरी समझ से तो दोनो को लगता होगा निन्दा सुनकर कि हमारे ऊपर व्यग्य किया जा रहा है। इससे ज्ञात होता है कि दोनो अपने-अपने पक्ष के कट्टर/समर्पित समर्थन नहीं हैं। कभी-कभी लोग विधर्मी पति-पत्नि को राजा श्रेणिक एव रानी चेलना कहकर उपहास किया करते थे। करते भी तो रहते हैं एक दूसरे को अपने ही पक्ष मे करने का प्रयास। यह भी तो कहते हैं कि उस समय तो चेलना सफल हुई थी अब कौन होता है। इतना अन्तर अवश्य है कि वे तो नग्नत्व की उपासक थीं, लेकिन इस समय निदक भी हैं। वे एक ही थीं ये अनेक है। नग्नत्व विरोधी श्रेणिको की भी यही दशा है अर्थात् ये भी बहुत है। वे तो ज्ञानी मुनि का सत्सग पाकर सुधर गये थे, लेकिन इनका सुधार भगवान जाने होगा भी की नहीं इस जीवन मे।

एक मुनि भक्त ने सुनाया महाराज श्री ! मैरे मामा साधुओ पर दोषारोपण करते हुए कहने लगे - मुनियो को आहार नहीं देना चाहिये। हमने उसी समय उनके मुँह पर खीच कर चॉटा मार दिया। हमने कहा तुम्हारे पिता-माता वगैरह ऐसा कहते तब क्या करते ? कहने लगे - वैसा ही व्यवहार होगा कोई भी हो कहकर तो देखे। वस्तुत देव गुरु शास्त्र के प्रति जिसकी नि स्वार्थ भक्ति होती है वहाँ लोक व्यवहार मे भी पक्षपात नहीं होता अर्थात् सबध गोण हो जाते है। जो मुनियो के कट्टर अभक्त होते हैं उनकी भी ठीक यही स्थिति होती है, लेकिन जो ढुलमुल विचारो के हुआ करते है, वे अपने विरोधियो का खुलकर विरोध नही कर पाते।

106. क्या मुमुक्षु शब्द महान ? नहीं, ऊपर से एक भीतर संतरे समान।

व्यक्तिगत हो या सामाजिक धार्मिक कार्यो मे आपस मे विवाद होते हुए देखे जाते है और सासारिक कार्यो मे भी विवाद की स्थिति बनती है। ऐसा भी देखा गया है कि सामूहिक रूप से होने वाले या किये जाने वाले धार्मिक कार्यों के करने वालो मे आपस मे किसी कारणवश सघर्ष हो जाये तो वहीं सघर्ष कहीं-कहीं या कभी-कभी सामूहिक रूप से होने वाले लौकिक कार्यों मे व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से रोडे अटका देता है अर्थात् विघटन की स्थिति पेदा हो जाती है उसी प्रकार लौकिक कार्यों मे हुआ मन-मुटाव

साम्हिक रूप से हो रहे धार्मिक कार्यो मे फूट पैदा कर दिया करता है। ऐसा भी देखा जाता है कि धार्मिक कार्यों मे विघटन बने रहते हुए भी सासारिक कार्य सामूहिक रूप से चलते रहते हैं और कहीं-कहीं सासारिक कार्यो मे विघटन होते हुए भी धार्मिक कार्य सामूहिक रूप से होते रहते है।

जैन समाज मे किसी भी कारण को लेकर जितने भी फिरके है उन सभी मे कहीं न कहीं मुमुक्ष मिल ही जाते है या बन गये हैं। इस समाज मे चरित्रहीनता के कारण एक बहिष्कृत फिरका भी है। सख्या प्रदर्शन के लिये तथाकथित मुमुक्षुओ ने उन्हे भी अपना लिया है। जैसे हिन्दुओ मे हीन दृष्टि से देखे जाने वाले लोगो को भी किसी प्रकार का भेदभाव किये बिना अपना लिया है। अपना रहे हैं ईसाई लोग। मुमुक्षुओ ने उन्हे हृदय से अपनाया है या सख्या प्रदर्शन के लिये यह बात उस समय स्पष्ट हो जाती हैं जब एक लुहरी सेन पण्डित को भगवान के माता-पिता बनन से रोक दिया था। बेटी व्यवहार की दृष्टि से भी उन्हें हीन दृष्टि मे देखते है अर्थात् उनसे सबध नहीं करना चाहत।

सभी फिरको मे म तथाकथित मुमुक्षु बनकर भी सभी ने मै परवार हूँ, खडेलवाल हूँ इत्यादि पूर्व आग्रह का छाड दिया हो सो भी बात नही। जहॉ-कही जब-कभी कोई छोटे-बड धार्मिक आयाजन करन, करवाने की बात आती हे तो सभी फिरके के मुमुक्षु एक हो जात हे। लेकिन जब बटी व्यवहार की बात आती हे सामने तो वहाँ परवार समाज के परवार समाज म खडेलवाल के खडेलवाल मे ही सबध प्राय होते है चाहे मुनि भक्त हो या अभक्त दाना एक हो जात हे। एक व्यक्ति म कहा-अमुख परिवार म भाई भाई मे अच्छी एकता हे। कहन लग मतर जेसी दशा हे बाहर म एक अन्दर स अलग-अलग। एस ही आचरण म एक श्रद्धा म अलग अलग।

107. क्या मुमुक्षु शब्द महान ? नही, फॅस जाते चगुल मे इनके, नही जानते यदि विधान।

इस समय जेन समाज म व लाग कितन होगे जा न तो तथाकथित मुमुक्षु की श्रणी मे ही आते हे ओर न साधुआ की सवा मे ही मतलब रखते है ? उत्तर यही है कि ऐसे लोगो की सख्या इस समय अधिक ही हे। अर्थ (पेसा) को ही महत्त्व देने वाल लोगा को अर्थ का प्रलोभन दकर उनस कुछ भी कराया या कहलवाया जाना सहज बात है। उन्ह अपने पक्ष मे मिला करके। राजनीति मे भी यही होता है। वस्तुत इन मुमुक्षुओ को आवश्यकता होती हे बुद्धिजीवी/शिक्षित वर्ग के लोगो की। वर्तमान मे लाकिक शिक्षा ओर उसकी प्राप्ति क उद्देश्य स प्राय सभी परिचित हैं कि उसे मात्र पढनेवाला व्यक्ति पढकर नास्तिक न बने यह उसक भाग्य पर निर्भर करता हे।

नौकरी कर रहे या सेवानिवृत्त लोग प्राय आर्थिक समस्या से निर्वृत नहीं हो पाते, यदि परिवार बडा या सकट ग्रस्त हो और आय सीमित हो तो। ऐसे लोग इनके चगुल मे फस जाते हैं। फिर इन्हे स्व-पर हित से प्रयोजन नही होता प्रयोजन होता है मात्र धन से।

आर्थिक समस्या से पीडित मरकारी नौकरी करने वाला, मुनि श्री से निवेदन कर रहा था कि आप छोटा-मोटा कोई आयोजन कराये मुझे भी बुलवा लिया करें सहयोगी के रूप मे ही सही। मैं भी विधान करना जानता हूँ। मरी आर्थिक स्थिति कमजोर है नौकरी से काम नहीं चल पाता। ऐसी अनुनय विनय किसी तथाकथित मुमुक्षु प्रमुखो से करने की आवश्यकता नहीं है, क्योकि उन्हे ऐसे ही लोग चाहिये। अत ये ही अनुनय विनय करते हैं कि आप हमारी सस्था की ओर से प्रचार कीजिये। तैयार हो जाये तो चार माह मे तैयार कर लेते हैं कि तुम्हे कहाँ-कहाँ क्या-क्या बोलना है। राजनैताओ को भी तो सदाचारी नहीं बुद्धि जीवियो की ही आवश्यकता है।

सरकार का सोचना हे 'शठे शाठ्य' यह नीति अपनाये बिना दुष्टो पर अकुश नहीं लगाया जा सकता है अत सरकार द्वारा ऐसे ही लोगो को रक्षा कर्म के लिये नियुक्त किया जाता है जो नारकी जेसा निर्दयी हो। अपराधी स दस-पॉच लाते एव दस-बीस गाली देकर ही बात करे। यही कारण है कि य अपराधियो के द्वारा भी पीटे जाते हैं। तथाकथित मुमुक्षुओ को बेशर्म लोगो की ही आवश्यकता होती है जो पिट-कुटकर भी अपनी बात कहने से नही चूकते और एसे ही लोग सफल प्रचारक माने जाते है। जैसे छल-छद से धन कमाने वाला कमाउ पूत माना जाता है।

'फूट डालो राज्य करो' की नीति मे चलने वाले अग्रजो स पीछा छुडवाने वाले दो प्रकार के नेता थे - एक नरम दल वाले आर दूसरे गरम दल वाले। नरम दल वाले गरम दल वालो को समझाया करत थे कि खून खराबा करके स्वतत्रता नहीं चाहिये। गरम दल वालो का मानना था कि ये बिना ठोके पीटे मानने/भागने वाले नहीं है। तथाकथित मुमुक्षुओ की स्वच्छदता पर अकुश लगाने वाले दोनो प्रकार के लोग है। गरम दल वाले लोगो का मानना हे कि य बिना ठाके पीटे या ठाकन की धमकी दिये बिना रास्त पर आन वाल नही है।

108 क्या मुमुक्षु शब्द महान ? नहीं, सत्रह से भी काम चलेगा जो जनजन की लेता जान।

पचास मे मे सत्तरह नम्बर लेने वालो को सरकार न जनता की सेवा के लिये हरिजनो को डॉक्टरी का प्रमाण पत्र दे रखा है। प्रधान मत्री मुख्यमत्री जेस पद पर आसीन राजनेताओ के स्वास्थ निरीक्षण के लिये हर समय डॉक्टर मोजूद रहते हैं लेकिन व पूर्णतया याग्य हाते हे सत्रह नम्बर वाल नही। जिनकी वोट क बल पर य पदासीन हान ह

उनकी सेवा अयोग्य डॉक्टरो से कराने वाले ये नेता गरीब जनता का हित चाहते हैं या अपनी स्वार्थसिद्धि। जिन्हें कारण वश योग्य डॉक्टर नहीं मिल रहे हो उन्हे तो मजबूरी वश अयोग्य डॉ की ही सेवा/चिकित्सा स्वीकारनी होगी मरना पडे या जीना। हो भी ऐसा ही रहा है।

जिनको शास्त्रो का क्रमश अध्ययन कराये बिना पण्डित जैसी उपाधि से विभूषित करके जैन समाज के बीच मार्गदर्शन के लिये भेज दिया जाता है उनमे सत्रह नम्बर तक की योग्यता भी नहीं होती। इन्हे वस्तुत कम्पाउडर ही समझना चाहिये। विगत पयुर्षण से पूर्व की बात है सघस्थ ब्रह्मचारी का उपदेश सुनकर लोग बहुत प्रभावित हुए। पर्युषण पर्व मे आने की अनुमति माँगने लगे। हमारे पास चार-पॉच पत्र भी आये। जब इन्होने पत्र देकर आने से इकार कर दिया तब उन्होने प्रार्थना की कि आप नहीं आयेगे तो हमे तथाकथित मुमुक्षु पण्डितो को मजबूरी मे बुलाना पडेगा। वहाँ पत्र डालने या फोन करने की देर है स्वीकृति मिलने मे देर नहीं है। अयोग्य डॉक्टर की तरह अयोग्य पण्डित मिल जाते है और ये ऐसा मार्गदर्शन/उपचार करते हैं कि मिथ्यात्व रूपी रोग अनन्त भवो तक अपनी जडे जमा लेता है।

109. क्या मुमुक्षु शब्द महान ? नहीं, दवा दिया दवा देकर के न रोगों का किया निदान।

एलोपेथिक इलाज मे रोग को औषधि देकर निकाला नही अपितु दवा देकर दबाया जाता है। आयुर्वेद मे जितना पथ्य का महत्व है दवाओ का नहीं और उपरोक्त इलाज मे दवाए ही महत्व पूर्व है पथ्य प्राय महत्वहीन है। आयुर्वेद मे देर है अधेर नहीं और एलोपेथिक मे अधेर है देर नही। जैन धर्म त्याग प्रधान धर्म है आयुर्वेद उपचार की तरह। शारीरिक रोग से पीडित कौन व्यक्ति नही चाहता है कि मैं जल्दी ठीक हो जाऊँ और कुछ परहेज भी न करना पडे। इस विषय मे एलोपेथिक ने काफी उन्नति की है जो उपचार के नाम से रोगियो के साथ एक प्रकार का छल है। जिसे रोगी स्वय नहीं समझ पा रहे हैं। अधिकाश डॉ भी नहीं समझ पा रहे है और कुछ जान के अनजान हैं। इस इलाज का सारे विश्व पर ऐसा प्रभाव है कि आयुर्वेदाचार्य भी अछूते नहीं हैं। आयुर्वेद के नाम पर एलोपेथिक दवा की गोलियाँ पीसकर, पुडियाँ बनाकर रोगियो को देकर उनके साथ धोका किया करते हैं ऐसा एक डॉक्टर से ही ज्ञात हुआ। रोगियो का हित चाहने वाला वैद्य कभी रोगियो के अनुसार नहीं चलता। ऐलापेथिक इलाज रोगियो की इच्छा के अनुसार चलता है। जिस किसी ने भी इस इलाज का अविष्कार किया होगा वह या तो जिव्हा लपटी रहा होगा या रोगियो के अनुसार चलने वाला धन का लालची। जिव्हा लोलुपी उसी वैद्य या डॉक्टर को अच्छा मानता है जो परहेज नहीं करवाते। ऐसे मरीजो की बहुलता होने से भीड

भी वहीं लगती है। आजीविका का साधन बना लेने वालो की रोगियो को अनुसार चलना स्वाभाविक ही है।

जैन धर्म का सच्चा अनुयायी उपदेशक कभी श्रोताओ के अनुसार नहीं चलता/बोलता, अपितु शास्त्रानुकूल बोलता है। जिनकी यहाँ समीक्षा चल रही है उनका धर्मोदेश के नाम पर एलोपेथिक इलाज है जिसमे परहेज (त्योग) नाम की कोई चीज नहीं है। ऐसे श्रोताओ का इस समय बहुमत है जो त्याग नाम से ही चिढते हैं। मात्र उपदेश सुनकर या स्वाध्याय करके यह समझ रहे हैं कि मिथ्यात्व रूपी रोग निकल गया। आचार्यों के उपदेश को आयुर्वेद के माध्यम से उपचार समझना चाहिये, लेकिन अधिकाश उपदेशक साधुओ की दृष्टि मे भी परहेज करना महत्वहीन हो गया। पण्डितो के द्वारा किये जाने वाले ऐलोपेथिक इलाज से वैद्यो की तरह प्रभावित हैं। उपदेश मे भले ही त्याग करने की बात करे, लेकिन भक्तो द्वारा की जाने वाली आहार आदि से सेवा के समय उनकी स्थिति एलोपेथिक की गोलियो की पुडियॉ बनाकर देने वाले वैद्यो के समान है अत इन्हे भी तथाकथित मुमुक्षु ही मानना/कहना चाहिये। यह तरीका विकारो को दबाने का है निकालने का नहीं।

110 क्या मुमुक्षु शब्द महान ? न, हीं 'दुर्घटना से देर भली' आयुर्वेद विधान।

'दुर्घटना से देर भली' आयुर्वेद इसी तुक बदी के आधार पर चलता है। 'देर से दुर्घटना भली' आराम जल्दी लगना चाहिये भले ही तत्काल या देर से दुर्घटना (मृत्यु) हो जाये। एलोपेथिक मे दूसरी तुक बदी लागू होती है।

एक वेद्य ने अपनी बीती सुनाई - कहने लगे - रोगी देखने के लिये एक गाव पहुँचा। नाडि दखकर दवा की पुडिये बनाने लगा। मरीज ने कहा - पुडिया नहीं आप तो इन्जेक्शन लगाइये मैने कहा मे वैद्य हूँ, डॉक्टर नहीं, अत पुडिया ही दे सकता हूँ। वह मरीज तेयार ही नहीं हुआ पुडिया लेने के लिये ओर मुझे वहाँ से खाली ही लौटना पडा। उसी दिन से मैने काम धधा छोड इन्जेक्शन लगाना सीखने के लिये चल दिया। हमने कहा - तब क्या आप इस इलाज को अच्छा मानते है ? नहीं। फिर एक ही मरीज से उपेक्षित होकर वह तरीका क्यो अपना लिया, क्योंकि इस चिकित्सा कला को आजीविका का साधन बना लिया है आपने भी। आपको तो चाहिये कि जब इस थोथे इलाज से मरीज मात्र को गुमराह किया जा रहा हो तो वास्तविक इलाज की परम्परा को सुरक्षित रखने के लिये आयुर्वेद इलाज पर जोर देना। उसके प्रति लोगो का विश्वास बनाये रखना। जिनका विश्वास उठ गया है उनमे विश्वास पैदा करना।

दिन मे तो छोडिये रात्रि में भी चारो प्रकार के आहार का त्याग कठिन माना जा रहा है। परिस्थिति को देखते हुए कठिन मानना फिर भी ठीक है, लेकिन तथाकथित मुमुक्षुओ के द्वारा, जिन्हे आचार्यो ने 'इच्छा निरोध तप.' की सज्ञा दी है ऐसे अनशन, अवमोदर्य आदि क्रियाओ को जड़ की क्रियाए कहकर उन्हे करना व्यर्थ कहा जा रहा हो और करने वालो को मूर्ख कह कर उपहास किया जा रहा हो ऐसी स्थिति मे साधुओ का कर्तव्य होता है कि अनशन आदि क करने पर जोर दें। लोगा का त्याग के प्रति विश्वास हट गया है, हटता जा रहा है उसे स्थिर करे। यह तो स्पष्ट ही है कि जो त्याग पर विशेष जोर देते हे उनकी उपेक्षा हो रही है। इसका परिणाम यह हुआ है कि साधु भी त्याग कराने के नाम पर लापर वाह हो गया फिर उपरोक्त वैद्यो मे और इनमे क्या अन्तर रहा। पापो, व्यसनो को छोडे बिना ही इनकी सेवा से इनके भक्त भगवान बन जायेग ? नही।

111. क्या मुमुक्ष शब्द महान ? नही, श्रोता ग्राहक, दस दिन चलती ज्ञान दुकान।

नेता निर्दली भी होते है लेकिन ऐस नता वे ही सफल हाते हे, जो विशेष योग्य एव प्रभावी होते हैं। जो ऐस नहीं हैं असफल ही होते ह। किसी दल (पार्टी) से जुडा हुआ नेता कितना भी कमजोर क्यो न हो दल के आधार पर सफलता प्राप्त कर लिया करता है। इतना अवश्य हे कि उस पार्टी क नियमो के अनुसार चलना हाता हे निर्दली के समान सर्वथा स्वतत्र हाकर नहीं। पयुपण पव क समय पण्डितो की नेताओ जेसी दशा होती हे। जो अच्छा वक्ता हाना हे उसे किसी सगठन मे जुड रहन की आवश्यकता नही हाती लेकिन जा कमजार वक्ता हात ह किसा सगठन म जुड पडिता की सूची म अपना नाम लिखाना पडता ह कि हम भी प्रवचन की याग्यता रखत ह अत हमें भी पर्युषण पर्व म आमत्रित स्थान पर भजा जाय लकिन य स्वतत्र पण्डिता के समान प्राप्त मजदूरी मे पूरा हाथ साफ नही कर पात। सगठन के नियमा के अनुसार बालना हाता हे उनस हटकर नहीं। इनकी स्थिति उन नाचन वाला क समान हाती ह जा किसा क नाटक मच पर नाचना हे उस जो इनाम मिलता ह उसका आधा पेसा ही मिलता हे आर आधा नाटक मडली को। इतना लाभ अवश्य होता हे कि पार्टी से जुड नेता पार्टी क नाम स जनता से हथिया कर अपना जेब/घर भर लेते हैं उसी प्रकार य पण्डित सस्था के नाम से समाज म बटोर लेते हे। तथा-कथित मुमुक्षु सफाइ दते हे कि हम समाज स कुछ नही लेत नि स्वार्थ सेवा करते ह। मात्र आने-जान का खच लेते हे, लकिन एक पण्डत का हमन स्वय देखा हे कि नगद तो नही लिया चार किलो घी दिया तो ले गया।

कमजोर पडितो की कमजारी पहली बार बुलान म मालुम नही पडती। पडने पर दुबारा नहीं बुलाया जायगा। भजन वाला पर डाट पडगी कि तुमन कसा पडित भेजा उसने

हमारी नाक कटा दी।

वर्ष मे तीन सौ पचपन दिन पडितो की ऐसी कोई विशेष आवश्यकता नहीं है। जैसे अधिकाश लोगों को चतुर्मास के अलावा अन्य समय मे साधुओ की ऐसी कोई आवश्यकता विशेष नहीं होती। पता नहीं वर्ष के शेष दस दिनो मे कैसी रुचि जाग्रत होती है धर्म लाभ लेने की कि कैसा भी मरियल पडित आ जाये किसी भी पक्ष का आ जाये निर्वाह कर लेते हैं। मानो तीन सो पचपन दिन की पूर्ति दस दिनो मे कर लेना चाहते हो। प्रतिस्पर्धा के कारण भी पर्व के दस दिनो मे कमजार पडित कीमती हो जाता हे। एक पक्ष का पण्डित आ रहा हो तब दूसरे पक्ष का न आये यह तो बडे शर्म की बात है अत पहले से ही प्रयास प्रारम्भ हो जाता है किसी कारण पहले वर्ष कोई पण्डित किसी पक्ष का न आया तो। पडित किसी भी पक्ष के हो उनकी विदाई की व्यवस्था सामाजिक चन्दे से ही हुआ करती है। किसी ने उससे लाभ लिया हो अथवा न लिया हो। लेने की इच्छा न हो चन्दा तो देना ही होगा।

112 क्या मुमुक्षु शब्द महान ? नहीं, माथे पर तिलक नहीं कैसे हो पहचान।

यह तो पहले ही बता आये हैं कि जहाँ-कहीं देखा जाता हे कि समाज के यदि सौ घर हे ता दा-चार-छह इनक भी मिल जायेगे और वे भी कहीं कहीं। जहाँ पुण्यवान हे वहाँ वे एक पण्डित के आने-जाने एव विदाई के खर्च का बोझ उठा भी लेते हैं। कही-कही अल्प सख्यक हाकर भी इनका वर्चस्व भी होता हे अत किसी भी पण्डित को बुलाना इनके ऊपर ही निभर रहता हे। इस विषय मे भी य मायाचारी से काम लेते है। समाज से कहते रहेगे कि इम वष अमुक जगह से पण्डित आयेगा और ऐन मौके पर आ जाता है तथाकथित मुमुक्षु पण्डित। अब ऐसे समय मे उसे भगाया इसलिये नहीं जा सकता कि दूसरा बुलाना सम्भव नही है। मुमुक्षु पण्डित भी शर्त रखकर आते हैं कि आपके यहाँ कोई विपक्षी पण्डित तो नही आ रहा हे क्योकि उनकी विद्वत्ता के आगे इन्हे बगले झाकनी पडती है/नीचा देखना पडता है बरसाती मेढक हुए तो।

नये सीखा तथाकथित मुमुक्षु पण्डित अवसर वाद से काम नहीं ले पाते। यदि सभा मे मुनि भक्त ओर अभक्त दोनो ही प्रकार के श्रोता हुए तो उसे किसका पक्ष लेते हुए उपदेश करना चाहिये। होशियार पण्डित तो नारद के समान होते हैं - जब कौशल्या के कहने पर राम का पता लगाने के लिये अयोध्या से लका पहुँचे। सोचने लगे - किसी राम के भक्त से रावण के विषय मे पूछू तो वह पीटेगा और रावण के भक्त म राम के बारे मे पूछू तो वह मारेगा क्योकि पहचान के लिये किसी के माथे पर तिलक तो लगा नहीं था कि यह रावण का अनुयायी हे या राम का। वक्ता हो एव श्रोता, मुनि भक्त हो या अभक्त इनकी पहचान

तो उनके आचार-विचारो को समझने पर ही होती है, सूरत-शक्ल से नहीं। तथा-कथित मुमुक्षु पण्डितों को मुनि आलोचना के ही सस्कार डाले जाते हैं अत. वह सस्कार वश मुनि भक्त श्रोताओ सहित सभा में मुनि विरुद्ध उदगार उगलने लगता है, तब पिटने की नोबत आ जाती है या पिट ही जाता है।

एक भक्त कह रहा था - महाराज ! तथाकथित मुमुक्षु आप मुनियो को ढोंगी कहते हैं, ऐसी स्थिति मे आप और हम भक्तो को क्या करना चाहिये ? हमने कहा - पहली बात तो यह है कि "चोर को सारी दुनियाँ चोर समझ मे आती है" के अनुसार जो स्वय जैसा होता है वह दूसरो को भी वैसा समझ लेता है। दूसरी बात साधु आक्रोश परिषह विजयी होते हैं, अत कोई कुछ भी कहे अन्तर नहीं पडता। हमारे मुँह पर तो कहने नहीं सामने आने से ही डरते हैं व्यतरो की तरह। एक बहन कह रही थी - महाराज ! हमारे कुटुम्ब मे पहले एक गर्भवती महिला ने आत्मदाह कर ली थी उसका परिणाम मैं भुगत रही हूँ। बीमार बनी रहती हूँ। एक समय (जोर) काम करती हूँ दूसरे टाइम आराम करती रहती हूँ। स्वप्न मे एक लडके को खिलाती हूँ। सुबह जब उठती हूँ तब लगता है सारा शरीर सुस्त पड गया है लेकिन आश्चर्य की बात यह है कि जब से आप यहाँ आये तब से बिल्कुल स्वस्थ हूँ। एक दिन आप पास के गाव चले गये थ उस दिन पुन वहीं स्थिति आपके वापिस होने पर पुन स्वस्थ हूँ। हमने कहा - व्यतर दिगम्बर भेष से ही डरते हैं।

113 क्या मुमुक्षु शब्द महान ? कभी-कभी आ जाता बिसरी बातों का ध्यान।

जब हमारे अन्दर धर्म के विषय मे, जानने की जिज्ञासा हुई, तब मुझे इतनी भी अक्ल नही थी कि पण्डितो मे भी भद होता है। उसी वर्ष वे अक्ल पण्डित बुलवाया गया था, इसका ज्ञान भी कैसे हो सकता था अत पहुँच जाता था उसके द्वारा लगाई गई क्लास मे। पर्युषण के दश दिनो मे काफी कुछ ज्ञान हो गया। तत्त्व का नही, अपितु अल्प सख्यक समाज मे एक अलगाव वादी तत्त्व अपनी जडे जमा रहा है। 'रोटी-बेटी व्यवहार' ऐसी सामाजिक व्यवस्था के रूप मे भी तारण पथी एव श्वेताम्बरो की तरह, समाज से अलग हो जायेगा ऐसी सम्भावना से नकारा नही जा सकता, मतभेद के कारण।

उस समय स्थायी मुमुक्षु तो पिटा ही आगत पण्डित को भी पिटने की नोबत आ गई साथ ही बीच मे से भागने की भी, क्योकि वह चिरकाल से आ रही कुछ सामाजिक व्यवस्थाओ को झुठला रहा था। सुबह जिस समय प्रतिवर्ष प्रभात फेरी निकलती थी वह उस समय क्लास लगाकर बेठ जाता था। कहता था - उसमे सुबह से घट-डेढ घट बर्बाद करन स क्या लाभ। उतने समय मे स्वाध्याय करके ज्ञान बढाया जा सकता है। अन्य समय

की अपेक्षा सुबह से स्वाध्याय मे मन भी लगता है, समझ में भी जल्दी आता है। बीच में यह भी कह देता था कि निमित्त-नैमित्तिक कोई चीज नहीं है। इनकी दशा तो उस रोते हुए बालक के समान है कि ध्यान बट जाने पर रोना भूल जाता है और याद आ जाये तो फिर से रोने लगता है। इसी प्रकार ये अपनी भूल मान्यता समय-समय याद आ जाये तो उगलने लगते हैं। वहाँ पूजन स्वय तो नहीं करता था, फिर भी वह उसे सर्वथा हेय कहने का साहस नहीं कर पाया, लेकिन इतना अवश्य कह देता था कि पूजन मे इतना समय बर्बाद क्यो करते हो। उसने पुरुषो से यह कभी नहीं कहा कि धन कमाने मे इतना समय बर्बाद क्यो करते हो और न महिलाओ से कहा कि खाने-बनाने मे इतना समय क्यो बर्बात करती हो, उतने समय मे ज्ञान बढाया जा सकता है स्वाध्याय करके। भोजन की क्रिया एव धन कमाने की क्रिया को हेय कैसे कह सकता था, क्योंकि दस दिन पेट भरने एव उतने ही दिन की मजदूरी मिलने की समस्या खडी हो जाती। नहीं चाहते हुए भी लोगों का क्लास मे पहुँचने का यही भी कारण था कि दस दिन मजदूरी तो देना ही होगी इसलिये कशकर ही काम लिया जाये दस दिन खिलाने को तो बुलाया नहीं। मुनि भक्तो से परेशान होकर भागा-दौडी करते रहते थे इस मदिर से उस मदिर, क्योकि दस दिन के लिये बुलाया गया यह टट्टू फोकट का खा और बाध न ले जाया। ओवरटाइम का अलग चाहिये यदि रोका गया तो। पर्व के दिनो मे प्राय जेन लोग बाल नहीं बनवाते। लेकिन पडित की दाढी-मूँछ हमेशा चिकन रहती थी। एक दिन एक ने पूछ लिया - पण्डित जी बात क्या है कि आप की दाढी-मूँछ नहीं बढती ? कहने लगे - तत्त्व चर्चा करो इन अनात्मीय बातो से क्या प्रयोजन।

परिशिष्ट

समीक्षा पढकर के यह आक्षेप किया जा सकता है कि समीक्षा का अर्थ होता है - समीक्ष्य के गुण-दोषों, अच्छाई, बुराई दोनो पर विचार प्रस्तुत, लेकिन इस समीक्षा मे दोष ही दोष दर्शाये गये हैं गुण नही ? इस आक्षेप का समाधान तो पहला यह है कि शराब के नशे मे व्यक्ति बुरे कार्य भी करता है और अच्छे भी। माँ को पत्नि भी कह देता है और माँ को माँ भी। जिस समय माँ को माँ कह रहा है इसका मतलब यह नहीं है कि वह प्रशसनीय है। एक तथाकथित मुमुक्षु पण्डित साथियो के साथ एक क्षेत्र पर पहुँचे। होली का दिन था। चर्चा के बीच कहने लगे - महाराज जी ! इस त्यौहार के विषय मे आपका क्या विचार है ? हमने कहा - मूढता के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। कहने लगे - हम आपकी बात से पूर्ण सहमत हैं। यही कारण है कि प्रतिवर्ष हम लोग आज की तिथि मे अपने निवास स्थान को छोडकर किसी क्षेत्र पर पहुँच कर तत्त्व चर्चा मे ही समय निकाला करते है। अत इसका परिणाम यह होता है कि मूढता से भी बच जाते है और फिजूल खर्च एव विवाद से छुटकारा मिल जाता है। हमने कहा - आत्मश्रद्धान मात्र को सम्यग्दर्शन कहने वालो को मूढ त्योहारो से बचने और न बचने से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। बात बदलते हुए एक मुनि भक्त की शिकायत करने लगे कि जिनवाणी को ही नही मानते। कहने लगे - कहते है - जिनवाणी है ही नहीं। हमने कहा - हम किसी की तरफ से कहे कि जिन ही नही है तो आप उसका क्या उत्तर देगे। आप जिस हेतु से जिन को सिद्ध करेंगे उसी से जिनवाणी भी सिद्ध हो जायेगी। विचारणीय है कि एक ओर मूढता से बचकर भी दूसरी ओर मिथ्यात्व का पोषण करते हो तब शराबी के समान प्रशसनीय नही हो सकते।

यह तो सभी जानते है कि श्वेताम्बर सम्प्रदाय बारह वर्ष के अकाल की देन है अर्थात इससे पहले इनका कोई अस्तित्व नही था। फिर इनका कुछ था कहने का सवाल ही नही उठता। उसी समय मे इनका पापानुबंधी पुण्य जोर मारता रहा है समय-समय पर। अत अपने अस्तित्व से पूर्व अपना अस्तित्व, वर्चस्व रहा है ऐसा सिद्ध करने के लिये क्षेत्रों पर, मदिरो पर कब्जा जमाते रहे पैसो के बल पर। अनेक मुद्दो मे उनका एक मुद्दा यह भी होता है कि अमुक प्रतिष्ठित व्यक्ति हमारे सम्प्रदाय के रहे हैं इसलिये यह मदिर हमारा है। आज भी जहाँ कही भूगर्भ से मूर्तियाँ निकलती है उन पर अपना अधिकार जमाने के लिये यही एक मुद्दा होता है कि यह घर या जगह हमारे समाज के व्यक्ति की है अत यह सब हमारा है। प्रसग मे कहना यह है कि जिसकी समीक्षा चल रही है वह श्वेताम्बर आम्नाय का व्यक्ति था। इस समय इसके अनुयायी जहाँ-कही भी मदिर धर्मशाला पाठशाला या किसी ट्रस्ट का निर्माण करते हैं उसके साथ उसका नाम अवश्य जोड देते है। अभी नही तो आगे

चलकर श्वेताम्बर स्पष्ट रूप से कहकर अधिकार जमायेंगे कि यह व्यक्ति हमारे सम्प्रदाय का था अतः ये मंदिर आदि हमारे हैं अतः इन तथाकथित मुमुक्षुओं को चाहिये कि वे जहाँ-कहीं से इनका नाम हटायें। यदि दिगम्बरत्व को सुरक्षित रखना हो तो।

'एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं करता' इस मान्यता को सुरक्षित रखने के लिये हर हथकंडे अपनाये गये। यह कहने में अतिशयोक्ति नहीं होगी कि प्रत्येक मिथ्या मतों का सहारा लेकर श्रद्धाहीनता का परिचय तो दिया ही चारित्र हीनता एवं ज्ञानहीनता का भी परिचय दिया।

इनका कुतर्क है कि पाप को तो हम अनादि काल से छोड़ते आ रहे हैं, किन्तु अब पुण्य छोड़ना है इनसे पूछना चाहिये कि जिससे ये पुण्य एवं पुण्य की क्रियाएं छुड़वाते हैं उनका पाप, पाप के कार्य पूर्ण रूप से छूट गये हैं या नहीं ? साथ ही पुण्य के कार्य को छोड़कर ऊपर उठने की योग्यता रखता है या नहीं ? अन्यथा तो जिसके पाप की क्रिया अभी छूटी नहीं है और न संकल्प पूर्वक छोड़ने का संकल्प ही है और न छोड़ने की योग्यता ही रखता है उससे पुण्य की क्रियाएं छुड़वा देने पर उसकी क्या गति होगी ? वही जो 'संभोग से समाधि' बताने वाले की हुई है (नरक)

जब 'एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं करता' इस मान्यता पर इस प्रकार का आक्षेप हो कि तब तो तुम्हें प्रतिदिन मंदिर जाकर मूर्ति को नमस्कार, पूजन, प्रक्षालन, अभिषेकादि करने की भी आवश्यकता नहीं है एवं द्रव्य दृष्टि से प्रत्येक पदार्थ शुद्ध है तो माँस आदि अभक्ष्य भक्षण में परहेज नहीं होना चाहिये। कहीं ऐसे आक्षेप होते रहे तो इन्हें मुसलमानों से भी हाथ मिलाने की आवश्यकता न पड़ जाये और साकार से निराकार भगवान को मानने एवं शाकाहार से मांसाहार करने वालों का एक अलग फिरका खड़ा न हो जाये इन्हीं तथाकथित मुमुक्षुओं में से क्योंकि नास्तिकता को बोलने वालों एवं भक्ष्या भक्ष्य का अविवेक बढ़ता चला जा रहा है अतः ऐसा होना असम्भव नहीं है।

पूजन को हेय कहने वालों को अधिकार ही कहाँ है पूजन करने का। इस आक्षेप से यह कहकर पीछा छुड़ा लेते हैं कि हेय बुद्धि से पूजन कर लेते हैं। प्राचीन विद्वानों द्वारा रचित पूजायें इन्हें पसंद नहीं है अतः अपनी ओर से सिद्धान्त विरुद्ध पूजायें रच ली गई हैं। प्राचीन पूजाओं में कहीं कहीं परिवर्तन करके अपने अनुकूल बनाकर इनके साथ स्व रचित पूजनों को मिलाकर छपवा ली गई हैं क्योंकि खाली इनके द्वारा रचित पुस्तकों को लोग उपेक्षा करते हैं। लोगों को मुफ्त में तो देते ही हैं साथ ही जोर भी देते हैं कि इसी पुस्तक से सदा पूजन किया करें। इतनी अधिक मात्रा में इनका प्रकाशन हो चुका है कि छोटे से छोटा और बड़े से बड़ा गाँव, शहर नहीं है जहाँ इनकी पहुँच न रहे। लोग भी इतने मूढ़ हैं कि

उन्हे पूजन करत समय उसका अर्थ लगाकर पढने और समझने की जिज्ञासा ही नहीं है। एक मुनि भक्त ने बताया-महाराज जी ! हमारे यहाँ समाज ने प्रतिबन्ध लगा रखा है कि उपरोक्त पूजन की पुस्तको से कोई इस मदिर मे पूजन नहीं कर सकता। हमने कहा - ऐसा ही नियम जगह-जगह लग जाये तो कितना अच्छा हो। जिससे हमारी प्राचीन समीचीन पूजा पद्धति चिरकाल तक जीवित रह जाये। अधिकाश जगह लोग इस कारण से उपरोक्त प्रतिबन्ध नहीं लगाते कि अलग मदिर न बनाने लगे। हो भी रहा है प्रतिबध लगाने पर।

यह तो पहले ही लिख आये है कि तथाकथित मुमुक्षुओ के यहाँ भी तथाकथित मुमुक्षु पण्डितो के द्वारा भी तथाकथित (आगम विरुद्ध) प्रतिष्ठाए होती है और वे भी हेय समझकर। अभी तक इनके द्वारा जितनी मूर्तियाँ प्रतिष्ठित की गई हैं वे पूज्य नहीं है, उनकी आगमविधि से पुन प्रतिष्ठा होनी चाहिये। इतना ही नहीं जब से प्रतिष्ठाचार्यो ने इन प्रतिष्ठाओ को आजीविका का एव धन बटोरने का साधन बना लिया है, तब से उनके द्वारा प्रतिष्ठित मूर्तियाँ भी पूज्य नही है उनकी भी पुन प्रतिष्ठा होना चाहिये। जिनसेन प्रतिष्ठा पाठ मे हमने स्वय पढा है। पढकर ऐसा लगा कि निर्दोष तिथि वर्ष मे एक ही बार मिल जाय यह भी कठिन बात है लेकिन उपरोक्त प्रतिष्ठाचार्य जब चाहे तिथि निकाल लेते है और आयोजन मे होने वाले देवकृत एव प्रकृतिकृत उपसर्ग होने पर जैन धर्म का उपहास कराते है। इसके साथ ही कपोल कल्पना के आधार पर भावि तीर्थंकर मानकर जिसकी मूर्ति बनाकर प्रतिष्ठा कर ली है उसकी एव सीमधर प्रतिमाओ की प्रशस्ति मिटाकर पुन प्रतिष्ठा होना चाहिये वर्तमान किसी तीर्थकर के रूप मे।

लेख सरल लेखक सरल लिखते लेख सुलेख।
देख मुमुक्षुओ की दशा, लिखा गया यह लेख॥